[illegible] मगहा

[illegible] ॥१०

[illegible] भगमा [illegible] [illegible] निधमा

(दरट) नुमा [illegible]

स्वपरसमयपारावारपारीण-शासनसम्राट्-तीर्थरक्षाप्रवण-परोपकारैकार्पितकरण-तपागच्छाधिराज-सूरिचक्रचक्रवर्ति-



आचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरः

जन्म सं. १९२९ कार्तिक शु. १.

दीक्षा सं. १९४५ ज्येष्ठ शु. ७.

गणिपद सं. १९६० कार्तिक कृष्ण ७.

पन्यासपद सं. १९६० मार्गशीर्ष शुद ३.

सूरिपद सं. १९६४ ज्येष्ठ शुद ५.

पूज्यपाद सिद्धान्तवाचस्पति न्यायविशारद विद्वद्वर्य
आचार्य महाराजाधिराज



श्रीमान् विजयोदयसूरिः

जन्म सं. १९४४ दीक्षा सं. १९६२ पन्यासपद सं. १९६९ महोपाध्यायपद सं. १९७२
पौष शु. १२ वैशाख शु. ६. अषाढ शुद ९. मागसर वद ३.

आचार्यपद सं. १९७२ वैशाख वद २

कादि अन्यदर्शनकारो ज्यारे शब्दने आकाशनो गुण मानता हता त्यारे जैनसिद्धान्त उद्घोषणाथी जाहेर करी रह्युं हतुं अने करे छे के शब्द ए भाषावर्गणाना पुद्गलो छे. ते आज फोनोग्राफनी कलाए साबीत करी बताव्युं जे शब्द पुद्गल होवाथी ज पकडाय छे. द्रव्य अलग रहे अने गुणमात्र पकडाय ते बनी शके नहि, तेमज डॉ० बोझ के जेमणे जाहेर करेलो वनस्पत्यादि स्थावरोमां जीवत्व साबीत करनारी युक्तिओ सांप्रतकालमां केटलाक लोकोने नवीन भासे छे, परन्तु ते युक्तिओ प्राचीन आप्तांग भगवन्तोए श्रीआचारांग-दशवैकालिकवृत्ति षड्दर्शनसमुच्चय वृत्ति आदिमां फरमावेल अनुमान आदि प्रमाण युक्तिओनो एक लेशमात्र छे. तेमज पार्थिवादि वैज्ञानिको जुदा जुदा द्रव्यं परिवर्तनना कारणभूत अनेक जातना अणुओ छे तेम प्रथम कहेता अने हवे तेओज जाहेर करे छे के एकज प्रकारना परमाणुओ जुदा जुदा प्रकारे परिणाम पामी जुदी जुदी पार्थिवादि द्रव्य वर्गणा बनावे छे. ज्यारे श्री सर्वज्ञदेवनो अचल सिद्धान्त डंको वगाडीने अनादिकालथी घोषणा करी रह्यो छे के परमाणुओ अनन्तकाले अनन्तवाराएं रूपे परिवर्तन पामवानी अनन्ती शक्तिओ छे.

प्रवाच्यसिद्धान्त अतिशयसम्पन्न सर्वमत प्रसिद्ध ते जैनदर्शन चार विभागे वस्तोनुं प्रतिपादन करे छे- १ द्रव्यानुयोग-जे षड्द्रव्यो, कालने जीवाजीवमां अन्तर्भाव करवाथी पांच अथवा धर्मास्तिकायादिने अजीवमां दाखल करवाथी जीव अने अजीव ए बे द्रव्यो. दरेकनुं यथास्थित सत्यस्वरूप, तेना गुणो-प्रभावादि-पर्यायो अनेक परिणामो, भिन्नभिन्नकाले जुदी जुदी परिवर्तनाओ दरेक समये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यनुं स्वरूप, इत्यादि तत्त्व निर्णायक सम्यक्त्वशुद्धि तथा कर्मनिर्जराना हेतुभूत विचार बतावे-

वार्मां समर्थ छे.२ चरणकरणानुयोग मुनिमार्ग, साधु श्रावक ध-
र्मनो आचार, क्रिया, शुभभावमां केवी रीते वर्तवुं. अशुभभावमां-
थी केवी रीते निवर्तवुं, हेयोपादेय कर्तव्याकर्तव्यादि विवेक, पाप-
बन्धनो त्याग शी रीते थाय, इत्यादि संवरना अने निर्जराना विचा-
रोने बतावे छे, ३गणितानुयोग–जीवाजीवादि द्रव्योनी संख्या,
परस्पर अल्पबहुत्व, कायस्थिति, भवस्थिति, संस्थानादि, ज्योतिश्चक्र-
ना चारादिनुं गणित, द्वीप, समुद्र, नरक, विमानादिकनुं मान तथा
तेनी गणत्री विगेरे विचारो दर्शावे छे. ४ धर्मकथानुयोग—महा-
पुरुषोनी जीवनप्रणालिका, तेमांथी मळती उत्तमनीति, सदाचरण,
पूर्वकालीन इतिहास, दीर्घदृष्टि विचारथी पूर्वापरकालनो अनुभव,
उपदेशक्रम मन्देनो आदरभाव, प्रमादावस्थिना परिचयी थतो
अपसदाचार मन्देनो गर्वां साधु, श्रावकोना आचार तन्ये पडतो उत्त-
म प्रकार, विगेरे विचारो समजावे छे. आ चारे अनुयोगो पैकी
आगमोनी अपेक्षाए सूत्रकृतागमां द्रव्यानुयोग प्रधान छे.[1]आचा-
रांगमां चरणकरणानुयोग, जंबूद्वीपपन्नत्तिआदिमां गणितानुयोग,
ज्ञाताधर्मकथांगादिमां धर्मकथानुयोग प्रधानतया वर्ते छे.आ नव-
तत्त्वप्रकरण पण जोके मुख्यतया द्रव्यानुयोगप्रधान छे, तो पण
बीजा अनुयोगोना वर्णनमां ते अपग परतु नथी. कारण भक्ति
मुक्ति परिहार पविपर्द आस्त्रवा आदिना प्रकारवडे आश्रवत्यागादि
उपादेयवडे संवर-निर्जरा आदिना वर्णनथी चरणकरणानुयोग
पण तेमां छे. कल्पस्थ्यादिद्वार, जीवस्थानमां अल्पबहुत्वादि वर्णन
विगेरेथी गणितानुयोग. भक्ति मुक्ति आचरनार तथा दरिद्री
भव करनार जन्मछेदमां सिद्धिपद पामनार महापुरुषोना वर्णनद्वारा

१ चारे अनुयोगोना जुदा जुदा संबन्धी विचार माटे
जुओ आदेशो दशवैकालिक पेज ३-४

धर्मकथानुयोग पण तेमां संगत ज छे अने तेथीज आ ग्रन्थ मह-त्पद भोगवनारो छे.

जैनदर्शनमां नवतत्त्वग्रंथ एटलो बधो प्रसिद्ध अने महिमा-शाली छे के जेना परिचयमाटे कांइ पण बोलवुं के लखवुं ते एक "लंकावासि मानवोनी आगल सुवर्णवर्णन तुल्य"छे. सूत्रथी सिद्धा-न्त भणवाना अनधिकारी श्रावक वर्गमां पण उत्तमपंक्तिना श्रा-वको नवतत्त्वज्ञानथी सुशोभित थइ रह्या छे जे माटे सकल आग-मोमां पूज्यतमश्री भगवती आदिमां श्रावकोनी ज्ञानसमृद्धिनुं व-र्णन करतां " अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आ-सवसंवरणिज्जरकिरियाहिगरणबंधप्पमोक्खकुसला " वि-शेषणान्तर्गततया नवतत्त्वोनी मुख्यता दर्शावी छे, वली सक-लतत्त्वसंग्रह सूत्र समवायांगबीज-श्रुतरत्ननिधानस्कन्ध-दृष्टिवाद-ना शरणथी पुष्ट-तत्त्वोरूप पत्र फुल अने मुक्तिफलवाळो चतुर्थोपाङ्ग श्री पन्नवणा सूत्र कल्पवृक्ष पण आ तत्त्वोना मूल उपरज रूढ थयेलो छे.

जुओ श्री पन्नवणावृत्तिकार पूज्य आचार्य भगवान् मलय-गिरिजी महाराजना वचन " सर्वे च ते भावाश्च सर्वभावा 'जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः । तथाहि—अस्यां प्रज्ञापनायां षट्त्रिंशत् पदानि, तत्र प्रज्ञापनाबहुवक्तव्य-विशेषचरमपरिणामसंज्ञेषु पञ्चसु पदेषु जीवाजीवानां प्र-ज्ञापना । प्रयोगपदे क्रियापदे चाश्रवस्य 'कायवाङ्मनःक-र्मयोग आश्रव' इति वचनात्। कर्मप्रकृतिपदे बन्धस्य प्ररूप-णा। समुद्घातपदे केवलिसमुद्घातप्ररूपणायां संवरनिर्जरा-मोक्षाणां त्रयाणां, शेषेषु तु स्थानादिषु पदेषु क्वचित्कस्य-चिदिति " श्रमण भगवान् जगद्बन्धु परमात्मा श्री महावीर प्र-भुना चरमोपदेशरूप अपृष्टव्याकरण श्रीउत्तराध्ययनसूत्रना मोक्ष-

मार्गने दर्शावनार अठावीशमा मोक्षमार्गगति अध्ययनमां पण आज तत्त्वोनो उद्देश छे-जूओ गाथा १४-१५ "जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवो तहा । संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव ॥१॥ तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं । भावेणं सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥२॥" तेमज अनूनापूर्वदशपूर्वधर भगवान् श्रीउमास्वातिवाचकनिर्मित तत्त्वार्थसूत्रप्रासाद पण आज तत्त्वोना पाया उपर रचायेल छे. 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' 'जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्' उपरना वचनोमां पुण्यतत्त्व[1] पापतत्त्वनो बन्धतत्त्वमां अन्तर्भाव करेल होवाथी नवसंख्यामां विरोध नथी, प्रशमरति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रान्तर्गत तीर्थंकरोपदेश, योगशास्त्रवृत्ति धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति, समयसारप्रकरण इत्यादि अनेक ग्रन्थोमां आ तत्त्वोने उद्देशी वर्णन करवामां आव्युं छे,

तत्त्वोनो स्वतन्त्र बोध लेवा माटे आ नवतत्त्वप्रकरण अति प्रसिद्ध छे. जो के आ प्रकरण उपर संस्कृतमां अवचूर्णि टीका-विवरण विचारसारोद्धार विगेरे, भाषामां टबा बालावबोध विगेरे अने एनाज अनुवाद तरीके भाषामां पद्यबन्ध विविधरचनो रासो चोपाइओ-जोड छन्दोबद्ध अनुवाद गद्यबन्धविचार विगेरे घणुंज लखायुं छे, छतां पण कालानुभावथी बहोळे भागे संस्कृतभाषानु अज्ञान, प्राचीनशैलीनो अनवबोध इत्यादि कारणने लइने संस्कृतछाया-शब्दार्थ अर्थ विगेरेनी खामी अत्यन्त हती ते केटलेक अंशे आ पुस्तकथी पूरी पडशे एम धारी आ पुस्तक प्रसिद्ध करवामां आव्युं छे. संस्कृत छाया-शब्दार्थ- विस्तरार्थ, मास्तर चंदुलाल नानचन्द पासे लखा-

१ पुण्यपापयोः बन्धेऽन्तर्भावान्न भेदेनोपादानम्, (तत्त्वार्थवृत्तिः)

थयो छे, जो के-- आ लघु प्रकरण उपर प्रस्तावनानी आवश्यकता न ज होय तो पण अमारा उपर अनुग्रह करी 'पंचकल्याणकपूजादिसंग्रह' विगेरेना प्रणेता मुनि महाराजश्री पद्मविजयजी महाराजे 'किंचित्प्रास्ताविक' तथा तदन्तर्गत घणोज उपयोगी अनेक ग्रंथोना सार रूप सम्यक्त्वविचार लखी आप्यो छे, आगम रहस्य नवतत्त्वोनो बोध आपनारा जयशेखरसूरिकृत नवतत्त्व, देवगुप्तसूरिकृत नवतत्त्व ते उपर अभयदेवसूरिकृत नवतत्त्वभाष्य देवानन्दसूरिकृत सप्ततत्त्वप्रकरण विगेरे अनेक प्रकरणो छे, तथापि ते सर्व करतां आ प्रकरण घणुं प्रसिद्ध थएलुं अने अध्ययन अध्यापनमां तेनो घणोज प्रचार थएलो होवाथी आनेज प्रसिद्ध करवामां आव्युं छे, बीजा प्रकरणो पैकी तथा ग्रन्थान्तर्वर्ति नवतत्त्वविचारो पैकी केटलाक अमोए नवतत्त्वसाहित्यसंग्रह नामना पुस्तकमां गुर्जरानुवाद साथे प्रसिद्ध कर्या छे. नवतत्त्वना प्रणेतानो [illegible] करवा हजु सुधी कांइ निर्णय थइ शक्यो नथी

नवतत्त्व टबावाळी एकज प्राचीन प्रतिमां मळती एक गाथा

" इय नवतत्तविआरो । अप्पमइनाणजाणणाहेउं ॥
संखित्तो उद्धरिओ । लिहिओ सिरिधम्मसूरीहिं ॥ १ ॥

देखतां आचार्य श्रीधर्मसूरि महाराज आ प्रकरणना कर्ता होय तेम जणाय छे, परंतु ते महाराजनो समय निर्णय करवो मुश्कल छे! वृत्ति-अवचूरि वाळा टीकाकारो आ गाथा जणावता नथी जेथी जणाय छे के मूळ प्रचारित गाथाओ अन्यकृत होवी जोइए अने तेना प्रणेता तेओ तेमनी पूर्वे थयेला होवा जोइए तेवुं इतिहास उपरथी अनुमान थाय छे, वळी बीजा एक जूनी प्रतना पुस्तकमां " इति श्री वादिदेवसूरिविरचितं नवतत्त्वप्रकरणम् " ए प्रमाणे लखाण जोवामां आव्युं हतुं ते उ-

पछी स्याद्वादरत्नाकरग्रन्थनिर्माता जे अपूर्व ग्रंथमां स्त्रीनिर्वाण सिद्धिमाटे लगभग ४२ हजार श्लोक प्रमाणनो भाग हतो महाराज सिद्धराजनी सभामां कुमुदचन्द्र जेवा दिगम्बर वादीओने जीतनार अढार देशमां अमारिना प्रवर्त्तक परमार्हत महाराज कुमारपाल नृपप्रतिबोधक कलिकालसर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्राचार्य महाराज विगेरेना विद्यागुरु भगवान वादिदेवसूरि महाराज आ प्रकरणना रचयिता होय तेम पण अनुमान थाय छे. उपरनी गाथा तथा वाक्य ए बन्ने तरफ विचार करता एक वाक्यता विषयक एवुं पण अनुमान थइ शके के मूल गाथा२७ना कर्त्ता श्रीवादिदेवसूरि महाराज अने प्रक्षिप्त गाथाओना संग्राहक श्रीधर्मसूरि महाराज होय ! ! !

आ प्रकरणनी मूल गाथाओ-टीका-अवचूर्णि-बालावबोध विगेरेनी प्राचीन प्रतिओना आधारे २७ जणाय छे. केटलीक टबावाली प्रतिओ विगेरेना आधारे गाथाओनी संख्यानो नियम नथी.ते २७ मूल गाथाओ पैकी३ गाथाओ जीवतत्त्वमां,४ अजीवतत्त्वमां,२ पुण्यतत्त्वमां, ४ आश्रवतत्त्वमां, १ संवरतत्त्वमां, १ निर्जरा अने बंधतत्त्वमां, अने१०मोक्षतत्त्वमां, मोक्षतत्त्वनी अंदर श्री साधुरत्नसूरिकृत अवचूर्णिमां २ गाथाओ अधिक छे जे अपेक्षाए मूलगाथाओ २९ थायछे, छतां पण पठन पाठनमां२९गाथाओ प्रचलित होवाथी अमोए पण तेज संख्या राखी छे २७ थी२९थी बाकीनी गाथाओ प्रासंगिक अर्थ याद राखवामाटे महापुरुषोए उत्तराध्ययन-कर्मग्रन्थविगेरेनी प्रक्षेपकरेली जणायछे अने आवीज रीते प्रक्षेपगाथाओ मेळवीने १४० गाथाना नवतत्त्व(बृहन्नवतत्त्व)वाली प्रतिओ पण देखायछे जे उपरथी अमोए पण ते १४० मूळगाथाओ आ पुस्तकने अन्ते अलग प्रसिद्ध करीछे.

पुस्तकना विषयमाटे संक्षेपमां आगळनी प्रस्तावनामां लखाय ल होवाथी तथा स्वतंत्र विशाल विषयानुक्रमणिका राखेल होवाथ अहीं तेनी चर्चा करता नथी. जो के पुस्तकनुं शुद्धिपत्रक दाखल कर्युं छे, तोपण दृष्टिदोष या अनुपयोगभावथी अशुध्ध रहु होय त ते वाचकवर्ग क्षन्तव्य गणी सुधारी वांचशे अने अमोने सूचना क रशे तो बीजी आवृत्तिमां सुधारवामां उपयोगी थशे,

आग्रन्थमां भारतमेदिनीमार्त्तण्ड स्वपरसमयपारावारपारीण न्यायालोक टीका (तत्त्वप्रभा)-खंडनखाद्यटीका (न्यायप्रभा)--न्यायसिन्धु-अनेकान्ततत्त्वमीमांसा विगेरे न्यायग्रन्थो, बृहद्हेमप्रभा-लघुहेमप्रभा-परमलघुहेमप्रभा व्याकरणग्रन्थो, प्रतिमामार्तण्डादि औपदेशिकग्रन्थो विगेरेना निर्माता थीतीर्थरक्षणादिमाटे अखंड अमोघ परिश्रम करी श्रीसंघ उपर अनुपम अनुग्रह करनार शासनसम्राट् तपोगच्छाधिराज सकलसूरिसार्वभौम,भट्टारक आचार्यमहाराजश्रीमान्विजयनेमिसूरीश्वरजीना पट्टालंकार सिद्धान्तवाचस्पति-न्यायविशारद- आचार्य महाराजश्रीमान् विजयोदयसूरीश्वरजीमहाराजे घहोळो सुधारो, वहोळो वधारो, टिप्पण, सूचना, परिशिष्ट विगेरे करी आपी अमारा उपर तेमज वाचक वर्गउपर अगाध उपकार कर्यो छे, ! ॥

छेवटे आ नवतत्त्वविस्तरार्थ केटलो उपयोगी छे ?ते प्रश्ननो उत्तर वाचक वर्ग उपर राखी वाचकवर्गप्रत्ये सविनयनम्रपणे " आद्यन्त आ ग्रन्थने वांची यथार्थ तत्त्वज्ञान मेळवी सम्यक्त्वप्राप्ति-दृढता संपादनकरी सिद्धिपद मेळवो" तेवी प्रार्थना करुं छुं

सं० १९८०
कार्तिक शुक्ल
पूर्णिमा

श्री संघचरण सेवक-
श्री जैन ग्रन्थप्रकाशक सभा.

॥ श्री ॥

॥ नवतत्त्वसाहित्यग्रन्थोनी सूचि ॥

(प्राकृत संस्कृत साहित्य)	ग्रंथकारनुं नाम.
१ नवतत्त्व प्रकरण मूळ	
२ नवतत्त्व विचार	२ श्रीधारसागर
३ बृहन्नवतत्त्व	
४ नवतत्त्वविचार सारोद्धार गा० ८	
५ नवतत्त्वसार प्रकरण [बृहद्]	५ आचा० श्रीजयशेखरसूरि
६ नवतत्त्वसार	
७ नवतत्त्ववृत्ति	७ श्रीअंबप्रसाद सं १३६०
८ " "	८ श्रीदेवेन्द्रसूरि
९ " "	९ श्रीकृष्णदेवसूरि
१० " "	१० श्रीसाधुसुन्दरगणि
११ " विवरण	११ श्रीवर्धमानसूरि
१२ " "	१२ श्रीदेवचन्द्र
१३ " अवचूरि	१३ श्रीसाधुरत्नसूरि
१४ " "	१४ श्रीमानविजयगणि
१५ " "	
१६ " मोटीगाथा ११३ अवचूरि	१६ तपागच्छाचार्य श्रीविजयनेमिसूरिशिष्य शि० वा० पा० वि० श्रीविजयोदयसूरि

१ आ लीस्ट अमोए प्राचीन भंडारोना लीस्टो तथा जैन-ग्रन्थावलिना आधारे आप्युं छे,

२ नवतत्त्व संबंधी प्रकरणो प्रशमरति-योगशास्त्रवृत्ति-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित-धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति-विगेरे अनेक ग्रन्थोमां आवे छे,

१७ नवतत्त्वप्रकरण	१७ श्रीदेवगुप्तसूरि
१८ " भाष्य	१८ श्रीअभयदेवसूरि
१९ " " वृत्ति	१९ श्रीयशोदेवोपाध्याय (हर्षवर्धनगणी
(प्राकृतभाषा साहित्य)	
२० नवतत्त्व बालावबोध	२० श्रीसोमसुन्दरसूरि शि०श्री
२१ " "	२१ श्रीपार्श्वचन्द्र
२२ " (कुलक)बालावबोध	२२ श्रीमेरुतुंगसूरिसन्तानीय
२३ " टबो	२३ श्रीमानविजयगणी
२४ " "	२४ श्रीमणिरत्नसूरि.
२५ " "	
(भाषा साहित्य)	
२६ नवतत्त्व रास	२६ श्रीऋषभदास
२७ " "	२७ श्रीभावसागर
२८ " "	२८ श्रीसौभाग्यसुन्दर
२९ नवतत्त्व जोड	२९ श्रीविजयदानसूरि
३० नवतत्त्व स्तवन	३० श्रीभाग्यविजयजी
३१ " "	३१ श्रीविवेकविजयजी
३२ " चोपाइ	३२ श्रीकमलशेखर
३३ " "	३३ श्रीसौभाग्यसुन्दर
३४ " "	३४ श्रीवर्धमानमुनि
३५ " "	३५ श्रीलुम्पकमुनि
३६ नवतत्त्व छन्दोबद्धभाषा	३६ श्रीज्ञानसारमुनि
३७ " सार	
३८ समयसार प्रकरण	३८ श्रीदेवानन्दसूरि
३९ " वृत्ति	

॥ किञ्चित्प्रास्ताविकम् ॥

જે વિષયુક્ત શુદ્ધ દેવના ન મળીઓ ગુણ જેહના,
જિનધર્મ શાસન તીર્થરક્ષણ દક્ષ બોધિ દેહના.
ઉપદેશ દે અવિચ્છિન્નને ધ્યાનથી નિત મેહના,
"શુભંકરસૂરીશ" વંદું ભૂષણ વિમલ શીલરત્નગેહના ૧.

અર્હત્ શાસન રસિક પ્રિયભવ્યજીવો! આપ શાસ્ત્રો શ્રીવીતરાગ મહાત્માની શુભાશિષ વડે, આ વિશ્વમાં સુવિશદ રીતથી પરિપૂર્ણ અનુભવિત મોક્ષમાં પરિભ્રમણશીલ-ભવ્ય જીવોના હિતને કરેલી ઉપદેશ મેઘાદિ પ્રકારોમાંથી તેને નિઃશ્રેણિ સમાન દર્શનજ્ઞાન ચારિત્રમાં દર્શનપદની મુખ્યતા જણાવી છે. શ્રીજિનેશ્વર તે જ વાતને ઉપદેશે છે કારણ કે —**दंसणभट्ठो भट्ठो, दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं । सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ॥ १ ॥** મિથ્યાત્વમોહનીય અને અનંતાનુબંધિ-ચતુષ્કના ઉદયે કરી સંસારી આત્માને અનાદિ સંસારમાં અનન્તીવાર ભટકવું પડ્યું છે. તેમ છતાં જ્યારે આત્મવીર્યની પ્રબળતા તથા ભવ્યત્વ દશાને, પરિપાક કરી, સાત પ્રકૃતિઓના ક્ષયોપશમ વિગેરે કારણો પામી યથાપ્રવૃત્તિકરણાદિ ત્રણ કરણ કરવાપૂર્વક સમ્યગ્ દર્શનરૂપ આત્માને પ્રાપ્ત કરે છે. જે પ્રાપ્ત થયેથી **"तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं"** (શ્રી વીતરાગ પ્રભુએ પ્રરૂપેલ તત્ત્વ તેજ સત્ય અને શંકારહિતપણે સ્વીકારવા લાયક છે) એવા પ્રકારનું શ્રદ્ધાન પ્રગટે છે. અને તે જીવને અર્ધ પુદ્ગલ પરાવર્ત કાળથી અધિક સંસાર હોતો નથી. એજ કારણને અનુસારે મહાત્માઓ કહે છે કે—જે જીવ-સમ્યગ્દર્શનથી પતિત થયો, તે દર્શનસપ્તકાદિ જ્ઞાનચારિત્રથી પણ પતિત થયો સમજવો. એમ કે સમ્યક્ત્વ વગરના મિથ્યાત્વી ધાર્મિક જીવોને યથાર્થ જ્ઞાનચારિત્ર સંભવતા નથી. તેમજ દ્રવ્યચારિત્ર (મુનિવેષાદિ) રહિત જીવો મરુદેવા માતાદિની માફક મુક્તિપદ પામી શકે, પરંતુ સમ્યગ્ દર્શનથી રહિત આત્માઓ અંગારમર્દકાચાર્ય-વિનયરત્ન વિગેરેના દૃષ્ટાન્તે નિર્વાણ સૌખ્ય મેળવવા અસમર્થ નીવડે છે. તેમજ તેજ સમ્યગ્દર્શનના પ્રતાપે કૃષ્ણ અને શ્રેણિક મહારાજા જેવા જીવો પણ વિરતિ વિના (અવ્રતિ શ્રાવક, અને દેશવિરતિ શ્રાવક) પેઠે સમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રાવક તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામેલ છે. એ ઉપરથી સાબીત થાય છે કે—સમ્યગ્દર્શન નિર્મળ મેળવવામાં મુખ્ય કારણ

છે, અને તેથી તે મુક્તિને આકર્ષણ કરવામાં આકર્ષિણી વિદ્યા સમાન
વાય, એ નિર્વિવાદ છે. ઇત્યાદિ ભાવને જાણે પ્રકટજ ન કરતા હોય
પૂજ્યપાદ શ્રીમદ્ ઉમાસ્વાતિવાચકમહારાજાએ પણ શ્રીતત્ત્વાર્થસૂત્ર
'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' આ આદ્ય સૂત્રમાં સ
ગ્દર્શનનુંજ પ્રથમ ઉપાદાન કરેલ છે.

જોકે અન્યત્ર 'नाणकिरियाहिं मोक्खो' આવાક્યમાં દર્શનપદનું અગ્રહણ હે
થી તેની (દર્શનની) શી જરૂર છે? એવી વગર સમજણની શંકા ન કરવી.
ણકે અન્વય વ્યતિરેકથી દર્શન અને જ્ઞાનનું સહચારિપણું છે–એટલે જ્યાં
ન ત્યાં દર્શન, અને જ્યાં દર્શન ત્યાં જ્ઞાન હોય છે. દર્શન વિનાનું જ્ઞાન
અજ્ઞાન કહેવાય છે કારણ કે 'आद्यत्रिकमज्ञानमपि भवति मिथ्या
संयुक्तम्" એ પ્રમાણે પ્રશમરતિમાં કહેલ છે. તેથી દર્શનનો જ્ઞા
અન્તર્ભાવ કરીને –"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" એમ કહેલ છે.

હવે સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ શું ! તે જણાવવું, જોઇએ

१ "दंसणमिह सम्मत्तं । तं पुण तत्तत्थसद्दहणरूवं
(દર્શન તે સમ્યક્ત્વ જાણવું. અને તે તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાન રૂપ છે
२-जिनोक्ततत्त्वेषु रुचिः । शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते- । (શ્રી વીત
પ્રભુએ કહેલ તત્ત્વોને વિષે શુદ્ધ રૂચિ એટલે શ્રદ્ધા તે સમ્યક્ત્વ કહેવાય
३-तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनमिति (તત્ત્વભૂત પદાર્થોનું–યથાર્થ શ્ર
ન તે સમ્યક્ત્વ જાણવું.) એ પ્રમાણે અનેક ગ્રંથોનું રહસ્ય છે.
પણ સૂક્ષ્મદષ્ટિયે વિચારતાં જે તત્ત્વાર્થ વિષયક શ્રદ્ધાન તે સમ્યક્ત્વરૂપ ક
નું કાર્ય, અને મિથ્યાત્વાદિના ક્ષયોપશમ વિગેરેથી પ્રકટ થયેલ,
ક્ષને અનુકૂલ પ્રશમ સંવેગાદિ ચિહ્નવાળો ઉત્તમ આત્મપરિણામ તે સમ્યક્
આ બાબત પૂજ્યપાદ શ્રીભદ્રબાહુસ્વામિ મહારાજા કહે છે કે– "से
संमत्तेपसत्थसंमत्तमोहणीअकम्माणुवेअणोवसमक्खयसमुत्थे पसम
येगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते " આ લક્ષણ સર્વત્ર વ્ય
છે અને તેથીજ મનઃ પર્યાપ્તિ નહિ થવાને લઇને માનસિક અધ્યવસા
શ્રદ્ધાન ન હોવા છતાં પણ અપર્યાપ્તિકજીવોમાં તેમજ સિદ્ધ પરમાત્મા
પણ તે (સમ્યક્ત્વ) ઘટી શકે છે. એ પ્રમાણે જ્યારે સમ્યક્ત્વ હોય ત્યા
કહેલ સ્વરૂપવાળું શ્રદ્ધાન પ્રકટે છે. અને તેથી તે શ્રદ્ધાન સમ્યક્ત્વ
સંભવતું નથી. એવા પ્રકારની વ્યાપ્તિ એટલે શ્રદ્ધાનવાળા જીવોને
સ્ય સમ્યક્ત્વ હોય છે. એ નિયમ જણાવવા માટે શ્રદ્ધાન એ સમ્યક્

કાર્ય છે તો પણ તેને વિષે સમ્યક્ત્વ રૂપ કારણનો ઉપચાર કરીને શ્રદ્ધાનને સમ્યક્ત્વ કહેવામાં આવે છે.

૧-પ્રશસ્ત આત્મપરિણામરૂપ સમ્યક્ત્વ પણ તત્ત્વને પ્રતિપાદન કરનાર શાસ્ત્રના જ્ઞાનદ્વારા પ્રકટ થાય છે. કહ્યું છે કે—" जीवाइनवपयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं । " જ્યારે-તત્ત્વજ્ઞાનથી સમ્યક્ત્વ પ્રકટે છે, તો પછી " भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेवि सम्मत्तं " આ વચનથી તત્ત્વજ્ઞાન ન હોય, તો પણ જે ભાવથી શ્રીવીતરાગપ્રભુએ કહેલ પદાર્થ સ્વરૂપની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે તે જીવ સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહેવાય.એ વાત કેવી રીતે સંભવે? આ સંબંધમાં મહાપુરૂષોનું સમાધાન છે કે अयाणमाणे वि ઇત્યાદિ વચન જ્ઞાનના અભાવને કહેનાર નથી પરંતુ વિસ્તારપૂર્વક તત્ત્વજ્ઞાનની અપેક્ષાએ અજ્ઞાન (અલ્પજ્ઞાન) અર્થને જણાવનાર છે. એટલે જે જીવ-વિસ્તારથી તત્ત્વોને જાણતો નથી, તો પણ જો ભાવથી શ્રીવીતરાગ પ્રણીત તત્ત્વોની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે, તો તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહેવાય છે—જેમ બહુ લક્ષ્મીવાળાની અપેક્ષાએ ઓછી ઋદ્ધિવાળો નિર્ધન કહેવાય. તથા તુચ્છ જીર્ણ વસ્ત્રવાળો માણસ પણ જેમ વિશિષ્ટ વસ્ત્રોના અભાવે વસ્ત્ર રહિત કહેવાય, તેવી રીતે ભલે તત્ત્વોનું વિસ્તારથી જ્ઞાન ન હોય, તો પણ "तमेव सच्चं निस्संकं जंजिणेहिं पवेइयं",તથા"इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे. मच्चेणं पमम्हे पलपरमट्ठे सेसे अणट्ठे ઇત્યાદિ શુભ પરિણામ જન્ય શ્રદ્ધાનવાળા જીવને સમ્યગ્દૃષ્ટિ કહી શકાય અને જો તેમ ન માનીએ તો દર્શનના અભાવે જ્ઞાન,અને જ્ઞાનના અભાવે ચારિત્ર પણ ન સંભવે અને તેથી મોક્ષ પણ કેવી રીતે પ્રાપ્ત થશે ? માટે ઉપર કહેલ સ્વરૂપવાળા શ્રદ્ધાન યુક્ત જીવને સમ્યક્ત્વ હોય. એમ અંગીકાર કરવાથીજ વિસ્તાર જ્ઞાનરહિત માષતુષ આદિ મુનિ મહાત્માઓની આગમોમાં મુક્તિ કહેલી ઘટે છે.

જ્યારે સમ્યક્ત્વ (તત્વશ્રદ્ધાન) એ મુક્તિનું પરમકારણ છે એમ સાબિત થઇ ચુક્યું, ત્યારે હવે નવતત્વોનું સમ્યક્ત્વમાં મહોપકારિત્વ શી રીતે છે? તે જણાવવું અવસરોચિત છે.

પૂજ્યપાદ સર્વજ્ઞ પ્રભુશ્રીતીર્થંકર મહારાજાએ સકલ જીવોપકારિણી સુધાસમાન વાણીદ્વારા કેવળ(?) શ્રી જૈનદર્શનનું તત્વજ્ઞાન દ્રવ્યાનુયોગ,ચરણકરણાનુયોગ,ગણિતાનુયોગ, અને ધર્મકથાનુયોગ એમ ચાર "અનુયોગ ગર્ભિત વર્ણવ્યું. અને તેજ સ્વરૂપે પૂજ્ય શ્રી ગણધર મહારાજાએ બીજબુદ્ધિના પ્રતાપે શ્રી આચારાંગાદિ સૂત્રો ગુંથ્યા, કેટલાક ઈ. સમય વીત્યાબાદ કાલાનુસારે મતિ મંદતાદિ કારણોને દેખી સમગ્ર સાધુમંડલના

ઉપકારાર્થે પૂજ્યપાદ જગદ્‌ગુરૂ શ્રીઆર્યરક્ષિત સૂરિ મહારાજાએ દરેક સિદ્ધાન્તોમાં પૃથક્ પૃથક્ અનુયોગ દાખલ કર્યા જેમકે—શ્રીસૂત્રકૃતાંગાદિમાં દ્રવ્યાનુયોગ. શ્રીસૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિ તથા શ્રીચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ વિગેરેમાં ગણિતાનુયોગ. શ્રીઆચારાંગાદિમાં ચરણકરણાનુયોગ, શ્રીજ્ઞાતાસૂત્ર,ઉપાસકદશાંગ, વિપાકસૂત્ર, ઉત્તરાધ્યયન વિગેરેમાં ધર્મકથાનુયોગ. તે ચારે અનુયોગોમાં પણ વિશેષે કરી સમ્યગ્દર્શનને માટે દ્રવ્યાનુયોગ ઉપયોગી છે, કહ્યું છે કે—" दविय दंसणसोही " દ્રવ્યાનુયોગમય સિદ્ધાન્તોનો પણ સાધુવર્ગ સિવાય અન્યવર્ગ લાભ લઈ શકતો નથી. કારણ કે-દરેક સિદ્ધાન્તના અભ્યાસમાં કારણભૂત યોગોદ્વહનની ક્રિયા છે. જેમાં સાધુવર્ગજ અધિકારી છે, તો પણ દરેક વર્ગને તેઓમાં કહેલ ભાવોનો બોધ થાય, તે સારૂ પરોપકાર ધુરીણ પૂર્વાચાર્ય ભગવંતોએ-તત્ત્વાર્થ-ધર્મસંગ્રહણિ પ્રવચનસારોદ્ધાર પંચસંગ્રહ,-કર્મપ્રકૃતિ - લોકપ્રકાશ, વિગેરે ગ્રંથો રચ્યા. પરન્તુ તે ગ્રન્થો ઘણાજ વિસ્તીર્ણ ગંભીરાર્થવાળા, ગહનગુમ્ફિતગમ્ય અને સંસ્કૃત પ્રાકૃત ભાષાબદ્ધ હોવાથી વિશેષબુદ્ધિવાળાઓનેજ ઉપકારક છે. તેથી મન્દબુદ્ધિવાળા જીવોના ઉપકારાર્થે તેજ પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ જીવવિચાર-નવતત્ત્વ દંડક (વિચારષટ્‌ત્રિંશિકા) સંગ્રહણી-ક્ષેત્રસમાસ-વિચારપંચાશિકા આદિ પ્રકરણગ્રન્થો બનાવ્યા. આ તમામ પ્રકરણોમાં પણ સમગ્ર જૈનદર્શનપ્રસિદ્ધ તત્ત્વોનો સંક્ષિપ્ત સંગ્રહ અને ગહન શૈલીશૈલીનો બોધ વિગેરે સાધન સંપન્ન આ જીવતત્ત્વ પ્રકરણ જ છે, જો કે પ્રકરણ ગ્રન્થો પરિમિતગાથાઓવાળા હોવાથી પાઠ કરવામાં સુખે લાભ લઈ શકાય તેવા છે. તો પણ અલ્પબુદ્ધિવાળા હોવાથી કેવલ ગાથાઓ પાઠ કરી જાય, તત્ત્વોની સમજણ વિગેરે જેવો સંગીન લાભ મળી શકતો નથી. માટેજ પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ તે તે પ્રકરણો ઉપર વૃત્તિ-અવચૂર્ણીઓ વિગેરે બનાવી તેપણ સંસ્કૃતભાષામાં હોવાથી જીવોના બોધને માટે પ્રાચીન મહાપુરૂષોએ બાલાવબોધ ટબા વિગેરે અર્પી રાખ્યા છે તેમાં પણ પ્રાચીનશૈલી અને ભાષાની પરિવર્તનાને લઈને સાંપ્રતકાલીન જીવો પૂરેપુરો લાભ લઈ શકતા નથી વળી પ્રસંગાનુપ્રસંગ પ્રાપ્ત પદાર્થોના બોધને માટે અનેક ગ્રન્થોની મદદ લેવી પડે છે ઇત્યાદિ અનેક હેતુઓને અવલંબી આ પ્રસ્તુત વિસ્તારાર્થ તથા તેના પરિશિષ્ટરૂપ નવતત્ત્વવિસ્તરસંગ્રહ પ્રકાર બહારમાં આવ્યા છે.

હવે પૂર્વે કહેલ સમ્યગ્દર્શન પામવાની પ્રક્રિયા કહેવાય છે. સમ્યક્ત્વ પામનાર જીવ પરિણામ અવશ્ય ત્રણ કરણો કરે છે. ૧-યથાપ્રવૃત્તિકરણ ૨-અપૂર્વકરણ. ૩ અનિવૃત્તિકરણ યથાપ્રવૃત્તિ કરણનું સ્વ.૫--જન્મ જરા અને મરણરૂપ જ.

ઉત્તરોત્તર અતિ ભયંકર સંસાર સમુદ્રમાં મિથ્યાત્વમોહનીયાદિ કર્મોની પ્રેરણાથી અનંત પુદ્ગલ પરાવર્તકાલ સુધી અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષ્મનિગોદના ભવોમાં અનેક-અસહ્ય દુઃખોનો અનુભવ કરતા કરતા અકામ નિર્જરાદિ હેતુના સંનિધાનથી વ્યવહાર રાશિમાં આવેલા જીવને કાલાદિકારણને અનુસારે તથાભવ્યત્વના પરિપાક થવાથી પ્રકટ થયેલ અધ્યવસાયોનું નામ યથાપ્રવૃત્તિકરણ કહેવાય છે. આ અધ્યવસાયો સાગરોપમ કોડા કોડી પ્રમાણ દીર્ઘ કર્મ સ્થિતિનો નાશ કરનાર છે. તેથી તેના પ્રતાપે પાંચમા આયુષ્યકર્મ સિવાય જ્ઞાનાવરણીયાદિ સાત કર્મો પૈકી પ્રત્યેક કર્મને પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગે ન્યૂન એક કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિવાળા કરે છે. એટલે શેષ સ્થિતિનો નાશ કરી અન્તઃ કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિ કરવી, એ પ્રથમકરણનું કાર્ય છે "અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ સ્થિતિવાળા જે વિશિષ્ટ અધ્યવસાયો તે યથાપ્રવૃત્તિ કરણ અને ઉત્તરોત્તર સમયે પૂર્વ પૂર્વ સમયની વિશુદ્ધિ કરતા અનંતગુણી વિશુદ્ધિ એ તેનું કાર્ય એવો પણ અભિપ્રાય અન્યત્ર સમજાય છે.

આયુકર્મની અલ્પ સ્થિતિ હોવાથી અત્ર પ્રસંગે તેનું વર્જન કરેલ છે. તથા ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સ્થિતિનો નાશ કરવાનું કારણ એ કે—જેમ વસ્ત્રની ઉપર લાગેલ ચીકણો ડાઘ જ્યાં સુધી તેના ઉપર ચોંટેલ ધૂળને દૂર કરવામાં ન આવે ત્યાં સુધી દેખાય નહિ, તેમ ઉપર કહેલ પ્રમાણે કર્મ સ્થિતિનો હ્રાસ થયા વિના અન્તરંગ ગ્રંથિસ્થાન પ્રકટ થતું નથી.

પ્રશ્ન—જો ૩૦ કોડા કોડી ઈત્યાદિ યાવત્ ૭૦ કોડા કોડી સાગરોપમ પ્રમાણ કર્મસ્થિતિને બાંધીએ, તો તે કર્મ તેટલા કાલ સુધી ભોગવવું જોઈએ. અને તમે તો અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ અધ્યવસાયોના સમૂહ રૂપ યથાપ્રવૃત્તિ કરણે કરી ઘણી સ્થિતિનો નાશ કરવાનું કહો છો, તો તે વાત કેવી રીતે માની શકાય? અને જો તેમ માનીએ તો બાંધેલ સ્થિતિ પ્રમાણે તે કર્મ તેટલા કાલ સુધી ભોગવવામાં ન આવવાથી 'કૃતનાશ' ૧ અને બાકીની સ્થિતિનું તે કર્મ ભોગવ્યું નથી, તો પણ આ સમયમાં ભોગવે છે, તેથી 'અકૃતાગમ' ૨ આ બે દોષો કેમ નહિ પ્રાપ્ત થાય?

ઉત્તર—અધ્યવસાયની તાકાત ઘણી તીવ્ર છે, કે જેને લઈને જો આત્મ અધ્યવસાય તેવા હોય તો તેવા યોગે અન્તર્મુહૂર્ત જેટલા ટુંકાકાળમાં આત્મા ઘણાને ઘણા કર્મદલિકો ઓછાં કરે છે. અને જેમ

॥ પ્રસ્તાવના ॥

અધ્યવસાયના પ્રતાપે શ્રીમરૂદેવામાતા વિગેરેના દ્રષ્ટાન્તે અલ્પકાલમાં મોક્ષપદ પણ મેળવી શકે છે એમજ અધ્યવસાય વિશેષથી અનિકાચિત એવા સર્વ કર્મોના સ્થિતિરસની અપવર્તના-ઘટાડો થાય છે. તથા જ્ઞાનપૂર્વક ક્ષમા પ્રધાન તીવ્ર તપશ્ચર્યાના યોગે નિકાચિત બંધવાળા કર્મોના સ્થિતિરસનો પણ ઘટાડો થઇ શકે છે, કહ્યું છે-**"सव्वपगईणमेवं, परिणामवसाउवक्कमो होज्जा। पायमनिकाइयाणं, तवसाओ निकाइयाणं पि ॥"** અર્થ-ઘણું કરીને અનિકાચિત બંધવાળી સર્વ કર્મ પ્રકૃતિયોનો એટલે તેઓના સ્થિતિરસનો એ પ્રમાણે પરિણામના યોગે ઘટાડો થઇ શકે છે. તાત્પર્ય એ છે કે-જેમ ઘણા કાલ સુધી ચાલે તેટલું પણ અનાજ પણ ભસ્મકવ્યાધિના યોગે કોઇ માણસ અલ્પ સમયમાં ખાઇ જાય. એટલે તે ધાન્યની વર્તમાન સ્થિતિનો નાશ થયો નથી. પરંતુ વ્યાધિના બલથી ઘણું ધાન્ય થોડા કાલમાં ખવાય ગયું, તેવીજ રીતે લાંબી મુદત સુધી ભોગવવા લાયક કર્મો પણ પરિણામના યોગે થોડા સમયમાં ભોગવાય છે તથા જેમ આમ્રાદિને ખાડામાં નાખી ઉપર ઘાસ વિગેરેથી ઢાંકી રાખીએ, તો તે કેરી અલ્પ સમયમાં પરિપક્વ થાય છે. તેવી રીતે તેવા પ્રકારના અનિકાચિત કર્મો પણ અધ્યવસાયાદિ સામગ્રીના યોગે અલ્પકાલમાં ભોગવાય, એમાં કોઇ જાતનો વિરોધ નથી. અને તેથીજ અબાધાકાલના જઘન્યોત્કૃષ્ટ ભેદો તથા ઉદ્વર્તના અપવર્તના કર્મની વિચાર તથા ગુણ રચના ઘટે છે, કર્માનુભાગ [illegible] તો આગળ જણાવું જોઇએ કે કર્મના **"पयइठिइरसपएसा तं चउहा"**-૧ પ્રકૃતિબંધ, ૨ સ્થિતિબંધ, ૩ રસબંધ, ૪ પ્રદેશબંધ એમ ચાર પ્રકારે છે, તેમાં **"[illegible]"** વચનો પ્રદેશકર્મની અપેક્ષાએ અને [illegible] સ્થિતિ રસની અપેક્ષાએ જાણવી. કારણકે [illegible] બે પ્રકારના કર્માનુભાગ હોય છે. ૧ પ્રદેશકર્માનુભાગ, ૨ વિપાકકર્માનુભાગ, તેમાં પ્રદેશકર્મની [illegible] કર્મ અવશ્ય ભોગવવું પડે છે. અને રસથી [illegible] વિકારે થાય છે એટલે કે [illegible] [illegible] [illegible] કારણકે શુભાદિ પરિણામના [illegible] તે કર્મના રસની અપવર્તના થાય છે આવી રીતે એ કે શુભ પરિણા-[illegible] [illegible] થાય છે. તો પણ તેમાં [illegible] [illegible] નથી. કારણકે તેમ [illegible] પરિણામથી એ રસઘાત [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] છે. [illegible] નથી. [illegible]

તિ પણ રસાધીન હોવાથી રસના નાશથી સ્થિતિનો નાશ અવશ્ય થાય છે, વળી જે કર્મ જેવી રીતે બાંધ્યું, તે કર્મ તેવી રીતે જ અવશ્ય ભોગવવું પડતું હોય, તો અશુભ કર્મોનો ક્ષય નહિ થવાથી તપોવિધિ જિનપૂજાદિ વિધાનો વ્યર્થ કરે. પરંતુ તેમ તો છે જ નહિ, તેમજ તે ભવમાં મુક્તિગામી જીવોને પણ પૂર્વકર્મ તે તે સ્થિત્યાદિસ્થિતિમાં ભોગવવાં નવીન નવીન કર્મોનો બંધ થવાથી મુક્તિ થવી ન જોઈએ. માટે કોડાકોડીસાગરોપમપ્રમાણ દીર્ઘસ્થિતિવાળું કર્મ પણ નીરસપણે પ્રદેશથી ભોગવાય છે, એમ માનવું જ જોઈએ અને તેવી જ અસંખ્યાતાભવે પણ તેવાપ્રકારના વિચિત્ર અધ્યવસાયથી ભિન્ન ભિન્ન ગતિને આપનાર બાંધેલ કર્મ તે ભવમાં પણ ભોગવાય હોય તો પણ પ્રાયઃકરીને શુભાધ્યવસાયની તીવ્રતાથી સર્વ કર્મોનો ક્ષય થઈ શકે છે, તથા જે કર્મ બંધસમયે જેવા પ્રકારની રસાપવર્તનાને યોગ્ય પરિણામથી બાંધ્યું હોય, તે કર્મ તેવીરીતે નીરસ ભોગવાય છે કારણકે—કર્મબંધના કારણભૂત અધ્યવસાયસ્થાનકો ક્ષયાદિવિષયમાંના કોઈપણ કારણથી ઉત્પન્ન થતાં ક્ષયોપશમાદિની માફક વિચિત્ર હોવાથી સ્થિતિરસનો ઉપઘાત (ઘટાડો) કરી શકે છે, તાત્પર્ય કે અસંખ્યેય લોકાકાશના પ્રદેશ પ્રમાણ તે અધ્યવસાય સ્થાનકોમાં કેટલાએક સોપક્રમ (જેના સ્થિતિ રસનો ઘટાડો થઈ શકે એવા) કર્મબંધમાં કારણ છે. અને કેટલાએક અધ્યવસાયસ્થાનકો નિરુપક્રમ કર્મબંધને ઉત્પન્ન કરનાર છે. જેથી જે કર્મ જેવા અધ્યવસાયથી બાંધ્યું હોય તે કર્મ તેવીરીતે અનુભવાય આયુષ્યની પેઠે વસ્તુ સ્થિતિ હોવાથી કૃતનાશ, અકૃતાભ્યાગમદોષો અવકાશ પામતા નથી, વળી એકજ વિષયમાં કારણભેદથી કાલભેદ દેખાય છે, જેમ ઘણા શિષ્યો એકજ શાસ્ત્રનો સાથે અભ્યાસ કરતા હોય ત્યાં પણ તેમાં બુદ્ધિની તરતમતાથી ભેદ પડે છે. તથા જેમ અમુક યોજનના લાંબા માર્ગમાં ઘણા માણસો એક સાથે ચાલતા હોય, ત્યાં તેઓની ગતિની તરતમતાથી ઇષ્ટસ્થલે પહોંચવામાં કાલભેદ થાય છે (કોઈ વહેલો પહોંચે અને કોઈ મોડો પહોંચે) તેવીજરીતે ઘણા જીવોએ સમાન સ્થિતિવાળું કર્મ બાંધ્યુ હોય તેમાં પણ પરિણામની તરતમતાથી અનુભવકાલ જુદો જુદો દેખાય છે ઇત્યાદિ ઘણોજ વિશાલ વિચાર વિશેષ જીજ્ઞાસુ જીવોએ અન્યગ્રંથોથી જાણવો.

આ યથાપ્રવૃત્તિકરણ તથા આગળ કહેવામાં આવનાર બન્ને કરણો પૈકી દરેક કરણ અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણસ્થિતિવાળું જાણવું તથા ત્રણે કરણનો સમય કાલ પણ અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ છે પરંતુ તે દરેકના કરતા મોટું જાણવું, આ યથાપ્રવૃત્તિકરણ ભવ્ય તથા અભવ્ય બન્ને પ્રકારના જીવોને હોય છે,

કર્મસ્થિતિની અ વર્તના કરવાના સંબંધમાં ધાન્યના પ્યાલા
દૃષ્ટાન્ત શાસ્ત્રમાં બતાવ્યુ છે કે–જેમ એક માણસ પ્યાલામાં થોડું થો
અનાજ નાંખતો જાય, અને વધારે વધારે કાઢતો જાય, એમ કરતાં કર
કેટલેક કાલે તે પ્યાલામાં ઘણું અનાજ ઘટવાથી થોડું ધાન્ય બાકી રહે છે. તે
ભવ્યજીવ અનાભોગસ્વરૂપ આ કરણે કરી દીર્ઘ સ્થિતિનો નાશ અને અ
લ્પસ્થિતિનો બંધ કરે છે, એ પ્રમાણે કોઇક ભવ્ય જીવ આ કરણે કરી ક
ર્મસ્થિતિનો લાઘવ કરી ગ્રન્થિસ્થાનની નજીકમાં આવે છે આ કરણ
બીજું નામ " પૂર્વપ્રવૃત્ત " છે. કારણકે શેષ કરણોથી પૂર્વ–પ્રથમ પ્રવ
છે ઉપર કહેલ તે ગ્રન્થિસ્થાન સુધી અભવ્યજીવો પણ પ્રથમ કરણવડે કર્મસ્થિ
તિનો લાઘવ કરી અનંતીવાર આવે છે, પરંતુ તેઓ તેને ભેદી શકતા ન
કારણકે તેઓ રાગાદિપરિણામને પાછા હઠાવવાના કારણભૂત વિશિષ્ટઅધ્યવ
સાયરહિત છે અને તેથીજ એટલે મિથ્યાત્વમોહનીયની સર્વોપશમના ન કરી શકવા
ઔપશમિક સમ્યક્ત્વ પામીશકતા નથી. અને તે સ્થલે તેઓ સંખ્યેય અથ
અસંખ્યેય કાલસુધી રહે છે તેમાં કેઇ અભવ્ય જીવ જૈનમુનિ મહાત્માઓ
ની ચક્રવર્તિ વિગેરે રાજાઓએ કરેલ શ્રેષ્ઠ પૂજા, સત્કાર, સન્માનાદિ જોઇ
અથવા શ્રીતીર્થંકર ભગવંતની અનુપમઅતિશયાદિ ઋદ્ધિના દેખવાથી, અથ
સ્વર્ગસુખની અભિલાષાદિ પ્રયોજનથી પ્રવ્રજ્યા ગ્રહણ કરી દ્રવ્યથી સાધુપણ
ઉ રીતે પોતની મોટાઈ વિગેરેની અભિલાષાથી પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાકલાપ
આચરે છે. અને તેથી તે ઉત્કૃષ્ટથી નવમા ગ્રૈવેયક સુધી પણ જઇ શકે
સાચુંજ છે કે દ્રવ્યચારિત્રનો મહિમા પણ અપૂર્વ છે. આ બાબત પંચાશ
ટીકામા કહ્યું છે કે—सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववा
ओ । भणिओ जिणेहिं सो नय, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१
जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने। तेसिं पि य उ
ववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा ॥ २ ॥ અને કોઈ અભવ્ય જી
નવમાં પૂર્વસુધી માત્ર સૂત્રપાઠ ભણે છે, તેથી જ તે શ્રુતસામાયિક પા
શકે છે. કહ્યું છે કે—तित्थंकराइपूअं, दट्ठूणण्णेण वावि कज्जेण
सुयसामाइयलाभो, होज्ज अभव्वस्स गंठिम्मि ॥१॥ (ગંઠિમ્મિ
ગ્રન્થિસ્થાનના નજીક પ્રદેશમાં) તે અભવ્યો પૂર્વધરલબ્ધિના અભાવે અ
ર્થ જાણતા નથી. અને તેથી જ તેમનું શ્રુત તે દ્રવ્યશ્રુત છે. વલી કો
મિથ્યાત્વી ભવ્યજીવ ગ્રન્થિદેશમાં રહી કાંઇક ઊણા દશપૂર્વસુધી દ્રવ્યશ્રુત મે
વે છે. તેથીજ ' મિથ્યાત્વિગૃહીત કાંઇ ઊણા દશપૂર્વ' સુધી શ્રુત પણ મિથ્યાશ્રુ

હોય છે. ત્યાંથી ભજના છે કહ્યું છે કે– चउदस दसय अभिन्ने, नियमा सम्मं तु सेसए भयणा । ગ્રંથિસ્થાનની નજીકમાં આવેલા કેટલાએક ભવ્યજીવો પણ રાગાદિ આવરણથી દબાયા ત્યાં પાછા વળે છે, તેમજ પૂર્વની માફક દીર્ઘસ્થિતિવાળાં કર્મો બાંધે છે. અને કેટલાએક અન-સ્થિત પરિણામિ ભવ્યજીવો તેજ સ્થળે રહે છે. તેઓ અનવસ્થિત પરિણામ-વાળા હોવાથી કર્મોની સ્થિતિ ઓછી તેમજ વધારે પણ બાંધતા નથી. અને જેઓને અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તનકાળમાં મોક્ષ નિશ્ચિત છે, એવા ચારે ગતિ-ના સંજ્ઞિપર્યાપ્તપંચેન્દ્રિયજીવો કુહાડાની તીક્ષ્ણધારસમાન અપૂર્વકરણનામના નવીન અધ્યવસાયોનાસમૂહે કરી ગ્રન્થિનો ભેદ કરે છે. જેમ કોઇ મોટા નગરમાં જવાની ઇચ્છાથી ત્રણ માણસો પોતાના ગામથી સાથે નીકળ્યા ચાલતા ચાલતા તેઓ ચોરોના ઉપદ્રવવાળી અટવીમાં આવી પહોંચ્યા. ત્યાં આવતાં તેઓને બે ચોરોએ રોક્યા. એક માણસ ભયપામી પાછો હઠી ગયો. બીજા માણસને ચોરોએ પકડ્યો. ત્રીજો માણસ બળવાન હોવાથી તેઓને હરાવી અટવીનો પાર પામી ઇચ્છિતનગરે પહોંચ્યો. દૃષ્ટાન્તની ઘટના આ પ્રમાણે ઉ– ત્રણ માણસ તે સંસારી જીવો, અટવી તે સંસાર, માર્ગ તે કર્મોની દીર્ઘ-સ્થિતિ, ચોરોના રહેઠાણવાળું ભયંકર સ્થાન તે ગ્રન્થિસ્થાન, બે ચોર તે રાગદ્વેષ, ચોરોથી ભયપામી પાછોવળેલ માણસ તે ગ્રંથિદેશમાં આવી પરાણ-ર્વિશુદ્ધના જોરે પાછો ફરી ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિનો બાંધનાર જીવ, તેમજ ચોરોના પંજામાં આવેલ માણસ તે રાગાદિથી ત્રાસ પામેલ ગ્રંથિની નજીકમાં રહેલ જીવ, વિશિષ્ટપરિણામના અભાવે તે જીવ ગ્રંથિને ભેદતો નથી. અનવસ્થિતપરિ-ણામવાળો હોવાથી પાછો પણ વળતો નથી. તથા ઇચ્છિતનગરે પહોંચેલ પરા-ક્રમિ માણસ તે અપૂર્વકરણે કરી રાગદ્વેષને દૂર કરી સમ્યગ્દર્શન પામનાર જીવ જાણવો. તથા આ કરણમાં અનેકજીવાશ્રયોની અપેક્ષાએ દરેક સમયે અસં-ખ્યેય લોકાકાશના પ્રદેશરાશિપ્રમાણ અધ્યવસાયસ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે. તથા પૂર્વપૂર્વસમયની અધ્યવસાયવિશુદ્ધિથી આગળ આગળના સમયની અનંતગુણી વિશુદ્ધિ હોય છે. તેનો યથાર્થભાવ દર્શાવનાર બે પુરૂષની નિસરણી ઊર્ધ્વ-પ્રકૃતિરીકાથી જાણવી. પુનઃ આ કરણવિષે વિશિષ્ટ અધ્યવસાયોના અભાવે સ્થિતિ ઘાતાદિ પ્રવર્તતા નથી. તેમજ આ કરણવર્તિ જીવ દ્વિસ્થાનક રસ-વાળા અશુભકર્મોને અને ચારઠાણીયા રસવાળા શુભકર્મોને બાંધે છે. તથા સ્થિતિબંધ પણ પૂર્વ પૂર્વસમયની અપેક્ષાએ પલ્યોપમના અસંખ્યેય ભાગે હીન આગળ આગળના સમયે કરે છે. એ પ્રમાણે ગ્રન્થિસ્થાનની નજીકમાં પ્રથમ કરણે કરી ભવ્યાત્મા કેવી રીતે આવે તે સંક્ષેપમાં કહ્યું–

હવે ૨-અપૂર્વકરણ- જે અધ્યવસાયોના યોગે પહેલાં નહિ કરેલાં એવા- ૧ સ્થિતિઘાત, ૨ રસઘાત, ૩ ગુણશ્રેણી, ૪ અભિનવસ્થિતિબંધ- આ ચાર પદાર્થો થઈ શકે- તેવા નવીન અધ્યવસાયોનું નામ અપૂર્વકરણ છે. જીવને પોતાના દુષ્કર્મથી ઉત્પન્ન થયેલ કઠોર અને મજબુત, તેમજ લાંબા કાળની ઉગેલ ગુપ્તવાંસની ગાંઠ જેવી દુઃખે કરી ભેદી શકાય એવી અને પૂર્વે નહિ ભેદાએલ રાગદ્વેષના પરિણામ રૂપ ગ્રંથિ છે. આ ગ્રન્થિનો ભેદ કરવો તે અપૂર્વકરણનું ફલ છે. હવે ગ્રન્થિ ભેદવા માટે આ કરણમાં પ્રવેશ કરવાની સાથે પ્રથમસમયથી માંડી સ્થિતિઘાતાદિ ચાર ક્રિયાઓ કરેછે.

૧. સ્થિતિઘાત- સીધીલાઇન રૂપ સત્તામાં રહેલિ અંતઃકોડાકોડિસાગરોપમ પ્રમાણ સ્થિતિ સંબંધિ ઉપરના ભાગમાંથી વધારેમાં વધારે સેંકડો સાગરોપમ પ્રમાણ અને ઓછામાંઓછા પલ્યોપમના અસંખ્યેયભાગ પ્રમાણ સ્થિતિખંડને ઉકેરે છે. એટલે તે ભાગમાં રહેલા કહેલ પ્રમાણ સ્થિતિવાળા કર્મદલિકોને ત્યાંથી ઉઠાવે છે. અને તેઓને નીચેની પ્રથમ સ્થિતિ જેમાં રહેલા દલિકો અનુભવાતા નથી, તે સ્થિતિમાં ગોઠવે છે. આ ક્રિયા અન્તર્મુહૂર્તમાં પૂરી થાય છે. તે વાર પછી પ્રથમસ્થિતિ ખંડની અનંતર રહેલા- જઘ૦-વા-ઉત્કૃ૦ સ્થિતિખંડને અંત૦માં ઉકેરે છે. અને પૂર્વની માફક દલિક પ્રક્ષેપ કરે છે. એ પ્રમાણે અપૂ૦ના કાલમાં હજારો સ્થિતિખંડના દલિકો ઉઠાવી નીચેની સ્થિતિમાં દાખલ કરે છે, તેમ કરતા અપૂ૦ના પ્રથમ સમયની સ્થિતિમાંથી સંખ્યેય ગુણહીન સ્થિતિ થાય છે. એટલે તેટલા પ્રમાણ સ્થિતિવાલા દલિકો તે ભાગમાંથી ખાલી થાય છે.

૨ રસઘાત- અશુભ પ્રકૃતિઓના સત્તામાં રહેલ રસાણુઓના અનંતભાગ કરી તેમાંના એક ભાગ સિવાય બાકીના રસાણુઓને અંત૦કાલમાં નાશ કરે તેવારપછી પહેલા ત્યાગ કરેલ અનંતમા ભાગના અનંત ભાગો કરવી એકભાગ સિવાયના શેષભાગના રસાણુઓને અંતર્મુહુર્ત કાલમાં નાશ કરે. એપ્રમાણે- વિવક્ષિત સ્થિતિઘાતના કાલમાં હજારો રસઘાત થાય છે. અને હજારો સ્થિતિઘાતો અપૂર્વ કરણમાં થાય છે.

૩ ગુણશ્રેણિ- ઉપરની સ્થિતિમાંથી ઉઠાવેલ દલિકોને પૂર્વ પૂર્વ સમય કરતાં ઉત્તરોત્તર સમયોમાં અસંખ્યેયગુણ વૃદ્ધિએ દાખલ કરવા તે.

૪ અભિનવસ્થિતિબંધ- આકરણમાં શરૂઆતથીજ માંડી દરેક સમયે પહેલાં નહિ કરેલ એવો પલ્યોપમના અસંખ્યભાગે હીન સ્થિતિબંધ કરવો તે.

(સ્થિતિઘાતાદિ સ્વરૂપ સમજવામાં કપુનાશન-પુસ્પુનાશનિનું દૃષ્ટાન્ત સુગમ છે)
આ કરણમાં પણ દરેક સમયે અસંખ્યેય લોકાકાશ પ્રદેશ પ્રમાણ અધ્યવ-
સાય સ્થાનો છે. આ રીતે ચાર કાર્ય કરવાદ્વારા ગ્રન્થિ ભેદ કરી ત્રીજા
અનિવૃત્તિકરણમાં પ્રવેશ કરે છે

૩ અનિવૃત્તિકરણ- આ કરણમાં વર્તનારા ત્રિકાલવર્તિ જીવોની સમાન
સમયમાં પરિણામવિશુદ્ધિ 'અનિવૃત્તિ'- ફેરફારવિનાની એક સરખી હોય છે
તેથી આ કરણનું અનિવૃત્તિ એવું નામ છે. સમાન સમયમાં એટલે ઉપર
કહેલ પરિણામવિશુદ્ધિ ઉત્તરોત્તર સમયોમાં પૂર્વના જેવી હોતી નથી. કારણ
અનંતગુણી કહેલ છે. પરંતુ વિવક્ષિત કોઇપણ સમયમાં ત્રણે કાળના જીવોની
પરિણામવિશુદ્ધિ એક સરખી હોય છે. તેમજ બીજી રીતે એપણ અર્થ થા-
ય છે કે- જે અધ્યવસાયો સમ્યક્ત્વ પમાડ્યા સિવાય પાછાહટે નહી, એટલે
જેઓના પ્રાપ્ત થવાથી અવશ્ય સમ્યક્ત્વ પામે, તે અનિવૃત્તિકરણ કહેવાય.
ઉપર કહ્યા પ્રમાણે ત્રણે કરણોની અનુક્રમે જ પ્રાપ્તિ થાય છે. જેને માટે
કહ્યું છે કે- "जा गंठि ता पढमं, गंठि समइच्छओ भवे बीअं ।
अनियट्टिकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे ॥ १ ॥"
આ અનિવૃત્તિકરણના જેટલા સમયો છે. તેટલાજ તેના અધ્યવસાયો અને
તેઓ પૂર્વ પૂર્વ સમયની વિશુદ્ધિથી ઉત્તરોત્તરસમયોમાં અનંત ગુણવિશુદ્ધિ-
વાલા જાણવા. તથા જેમ અપૂર્વકરણમાં શરૂઆતથી જ સ્થિતિઘાતાદિ ચાર
કાર્યો કરે છે. તેરીતે અહીં પણ તે કાર્યો કરે છે. અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણસ્થિ-
તિવાલા આ કરણના કહેલા સંખ્યાતા ભાગોમાંથી ઘણા ભાગો વ્યતીત થાય
અને એક સંખ્યાતમો ભાગ બાકી રહે ત્યારે મોટી લાંબા રૂપ મિથ્યાત્વની
સ્થિતિસંબંધિ નીચેનો અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણ ઉદયાવલિકાનો ભાગ છોડી દઇ
ઉપરભાગમાં અંતર કરણ કરે છે. અંતરકરણનો અર્થ એ છે કે- અન્તર્મુહૂ-
ર્તકાલસુધી ભોગવવા લાયક એવા મધ્યભાગમાં રહેલા દલિકોને પ્રથમસ્થિતિ
અને દ્વિતીયસ્થિતિમાં દાખલ કરવાના કારણભૂત જે ક્રિયાવિશેષ અથવા અ-
ધ્યવસાય તે અંતરકરણ કહેવાય. આ અંતરકરણની નીચેની સ્થિતિનું નામ
પ્રથમસ્થિતિ તથા ઉપરની સ્થિતિનું દ્વિતીયસ્થિતિ નામ છે. તથા આગળ
પામવા લાયક અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણસ્થિતિવાલા ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શનને મિ-
થ્યાત્વના પુદ્ગલો વિઘ્ન ન કરે તે સારૂ અંતર્મુહૂર્તકાલ પ્રમાણ અંતરકરણ
કરેછે- આ અંતરકરણ કરે ત્યારે મિથ્યાત્વની સ્થિતિના બે વિભાગ પડે છે
તેમાં ૧ પ્રથમસ્થિતિ અંતર્મુહૂર્તપ્રમાણવાલી છે. ૨ દ્વિતીયસ્થિતિ અંતઃકો-

કોડાકોડી સાગરોપમપ્રમાણ જાણવી. તથા પ્રથમ સ્થિતિમાં વર્ત્તમાન જીવ ઉદી-
રણા પ્રયોગથી તે (પ્રથમસ્થિતિ) ના દલિકોને ખેંચી જે ઉદયાવલિકામાં
દાખલ કરે, તેનું નામ ' ઉદીરણા ' અને દ્વિતીયસ્થિતિમાં રહેલ દલિકોને તેજ
(ઉદીરણા) પ્રયોગવડે ખેંચી ઉદયાવલિકામાં દાખલ કરે તે 'આગાલ' કહેવાય
આગાલ તે ઉદીરણાનો એક ભેદ છે. ઉદય અને ઉદીરણાવડે પ્રથમસ્થિતિનો
અનુભવ કરતો કરતો જ્યારે તે સ્થિતિ બે આવલિકા પ્રમાણ શેષ રહે ત્યારે
આગાલરૂપ ઉદીરણા પ્રવર્ત્તતી નથી તે પહેલાં તે અને ગુણશ્રેણિ પ્રવર્ત્તે. તે
વખતે માત્ર મિથ્યાત્વનો સ્થિતિઘાત અને ઉદીરણા જ ચાલુ છે. જ્યારે
પ્રથમસ્થિતિ આવલિકા કાલ પ્રમાણ શેષ રહે ત્યારે મિથ્યાત્વનો સ્થિતિઘાત
રસઘાત અને ઉદીરણા પણ બંધ પડે છે તે આવલિકામાં રહેલ દલિકોને
ઉદયવડે જ અનુભવે છે, તેમાં પ્રથમસ્થિતિમાં વર્ત્તમાનજીવ મિથ્યાત્વદલિકોને
અનુભવે છે, તેથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિ જાણવો. મિથ્યાત્વની પ્રથમસ્થિતિકાલના
ચરમસમયે એટલે અનિવૃત્તિકરણના છેલ્લા સમયે બીજી સ્થિતિમાં રહેલા
દલિકોને મદનકોદ્રવના દૃષ્ટાન્તે અનુભાગની તરતમતાવાળા ત્રણપુંજ કરે,

કહ્યું છે : " **स कालं बीयठिइं, तिहाणुभागेण देसघाइत्थ ।**
सम्मत्तं सम्मिस्सं, मिच्छत्तं सव्वघाइत्थ ॥ १ ॥ "

અર્થઃ— તે કાલે એટલે જે સમયથી અનન્તર ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પા-
મશે તે સમયે અથવા પ્રથમ સ્થિતિના છેલ્લા સમયે મિથ્યાત્વમાંજ રહેલો
જીવ. બીજી સ્થિતિમાં રહેલા કર્મદલિકોને અનુભાગવડે ત્રિધા શુદ્ધ, અર્ધ
શુદ્ધ, અશુદ્ધ એમ ત્રણ પ્રકારના કરે છે તેમાં શુદ્ધદલિકો તે સમ્યક્ત્વ-
મોહનીયનો પુંજ જાણવો. અને તે દેશઘાતિપ્રકૃતિ છે. કારણકે તે પ્રકૃતિમાં ર-
હેલ રસ વિશિષ્ટ શ્રદ્ધાનરૂપ દેશને રોકે છે પરન્તુ સામાન્ય શ્રદ્ધાનને રોકતો
નથી. તથા અર્ધશુદ્ધ દલિકો તે મિશ્રમોહનીયનો પુંજ અને અશુદ્ધ દલિક તે
મિથ્યાત્વમોહનીયનો પુંજ જાણવો. તે બન્ને પણ સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ છે. કારણકે
તેઓનો સર્વથા શ્રદ્ધાનનો ઘાત કરનાર રસ હોય છે. તથા **चरमसमय-
मिच्छदिट्ठि से काले उवसमसम्मदिट्ठि होहीइ ताहे बिइयठिइं
तिहाणुभागं करेइ, तं जहा सम्मत्तं, सम्ममिच्छत्तं मिच्छत्तं
चेति.** આ ચૂર્ણિ કર્મપ્રકૃતિની છે. તેની ચૂર્ણિનો અભિપ્રાય છે, અને
કે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પામ્યા પછી ત્રણ પુંજ કરે એમ મલયગિરિસૂરિ
નો અભિપ્રાય છે તે આ. પ્ર. ચૂ.— **पढमं सम्मत्तं उप्पाडिंतो मिच्छ-
त्तस्स तिन्नि कप्पे करेइ । उवसमसम्मत्तं पडिवन्नो मिच्छद्दिट्ठी मि-**

पुंजो करेइ सुद्धं, मीसं, असुद्धं चेति" હવે પ્રથમસ્થિતિના અનુભવકાળમાં કરણત્રિક કરનાર સંસારિજીવ મિથ્યાત્વદળિકોનો અનુભવ ચાલુ હોવાથી મિથ્યાદૃષ્ટિ હોય છે કારણ પ્રથમ સ્થિતિના દળિકોને જ્યારે સંપૂર્ણ અનુભવી રહે, ત્યારે અંતરકરણના પ્રથમ સમયે સેનાધિપતિને દુર્જયશત્રુના જયથી માફક અપાર આનંદના કારણભૂત ઔપશમિક સમ્યક્ત્વ અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પ્રાપ્ત કરે છે જેમાં સાતે પ્રકૃતિ (અનં૰ચતુષ્ક દર્શનમોહત્રિક) નો પ્રદેશોદય તથા રસોદય પણ હોતો નથી. અને એ હેતુથી તેને શ્રીતત્ત્વાર્થસૂત્રની વૃત્તિમાં અપૌદ્ગલિક સમ્યક્ત્વ કહેલ છે, અને તેજ હેતુથી ક્ષાયિકદર્શન, ઔપશમિકદર્શન તે ભાવસમ્યક્ત્વ કહેલ છે. એ પ્રમાણે અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ શરૂઆતમાં ઔપશમિક દર્શન જ પામે, એ અભિપ્રાય કર્મગ્રંથકારનો છે. કારણકે તેઓ ઉપર કહેલા કમ્મપયડી શતકચુર્ણીઆદિના પાઠોથી ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન પામવાના પૂર્વ સમયે અથવા પામ્યાબાદ ત્રિપુંજ કરે એમ સમ્મત છે. અન્યત્ર પણ કહ્યુ છે કે- "कम्मगंथेसु धुवं. पढमोवसमी करेइ पुंजतिअं । तच्चडिओ पुण गच्छइ सम्मे मीसंमि मिच्छे वा ॥१॥" અને સિદ્ધાન્તકારના અભિપ્રાયે કોઇ અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ વિશિષ્ટ અધ્યવસાયાદિ સામગ્રીના યોગે અપૂર્વકરણે ત્રિપુંજ કરે, તે વખતે સમ્યક્ત્વમોહનીય પુંજના ઉદયમાં વર્તમાન તે જીવ ક્ષાયોપશમિક દર્શન પામે છે. અને કોઈ અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ ત્રણ કરણ કરવા પૂર્વક અંતરકરણના પ્રથમ સમયે જો ઔપશમિક દર્શન પામે, તો તે જીવ ત્રિપુંજ ન કરે કારણકે તેની અશક્તિ છે. અને તેનો ઉત્કૃષ્ટથી છ આવલિકાકાલ, તથા જઘન્યથી એક સમય કાલ બાકી રહે ત્યારે તે વમીને અવશ્ય મિથ્યાત્વ જ પામે. આ બાબત શ્રીકલ્પભાષ્યમાં કહ્યુ છે કે-आलंबणमलहन्तो जह सट्ठाणे न मुंचए इलिया । एवं अकयतिपुंजो. मिच्छंचिय उवसमोवइ ॥ १ ॥ સમ્યક્ત્વના પ્રતિપાતકાલમાં કોઇ પ્રકૃષ્ટવિશુદ્ધિવાળો જીવ દેશવિરતિ અથવા સર્વવિરતિ પણ પામે છે કહ્યુ છે કે- उवसमसम्मद्दिट्ठी अंतरकरणे ठिओ कोइ । देसविरइंपि लहेइ. कोइं पमत्तापमत्तभावंपि सासायणो पुण न किंपि लहेइ ॥ આ સ્થળે એટલું જાણવું કે- સૈદ્ધાન્તિક મતે જેમ પ્રથમ સમ્યક્ત્વના લાભમાં ત્રણ કરણ કહ્યા, તેમ દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિના લાભમાં ત્રણ કરણ કરવામાં આવતા નથી, કારણકે- અપૂર્વ કરણના પ્રથમસમયેજ તે બેમાંના એકનો લાભ હોવાથી અનિવૃત્તિકરણ અપ્રયોજક છે તથા તેનો લાભ થયા પછી અંતર્મુહૂર્તસુધી વધતો પરિણામી જીવ હોય છે. તેમજ જો નિરુપયોગ ભાવે સ્થિતિભાવનો

ત્યાગ કરે, તે જીવ કરણ ક્રિયા કર્યા વિનાજ ફરી વિરતિ પામે છે. અનેજે ઉપયોગ અવસ્થામાં વિરતિરહિત થાય, અને તેવીજરીતે મિથ્યાભાવને પામે તે જીવ જઘન્યથી અંતર્મુહુર્ત્તકાલમાં અને ઉત્કૃષ્ટથી લાંબે કાળે પણ પૂર્વે કહેલ કરણોની ક્રિયા કરીનેજ ફરી વિરતિ અંગીકાર કરી શકે, એ પ્રમાણે **કર્મપ્રકૃતિવૃત્તિ**-માં કહેલ છે, સૈદ્ધાન્તિકમતે- જે જીવો પામેલ સમ્યગ્દર્શન વમી ફરી સમ્યગ્દર્શન પામ્યા તે જીવોમાં કોઇ જીવોમાં કોઇ જીવ ઉત્કૃષ્ટથી છઠ્ઠી નરક સુધી પણ જઇ શકે છે, પરંતુ કાર્મગ્રંથિકમતે તે જીવ વૈમાનિક દેવજ થાય. એમ **શ્રીપ્રવચનસારોદ્ધારવૃત્તિમાં** કહેલ છે. વલી કર્મગ્રંથકારના મતે સમ્યગ્દષ્ટિજીવ જ્યારે મિથ્યાભાવ પામે ત્યારે કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ બાંધે પણ તેઓને તેવો રસ બંધન કરે. અને સૈદ્ધાન્તિકમતે ગ્રંથભેદ કરનાર જીવ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ન કરે. આ સમ્યગ્દર્શનના મહિમાને જણાવતાં શાસ્ત્રકાર મહારાજા કહે છે કે-જે જીવને અંતર્મુહુર્ત્ત જેટલો અલ્પકાલ પણ જો સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થયું હોય તો તે જીવને લાંબા કાલ સુધી સંસારચક્રમાં પરિભ્રમણ હોતું નથી. તો પછી લાંબી સ્થિતિવાલા સમ્યગ્દર્શનધારિ જીવોને અલ્પસંસાર હોય, તેમાં શું આશ્ચર્ય હોય ? તથા ચક્રવર્તિરાજા પણ સમ્યગ્દર્શનના અભાવે ભિક્ષુક જેવો ગણાય છેઃ અને તે દર્શનના પ્રતાપે ભિક્ષુક પણ તેથી અધિકગણાય છે. તથા સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતા દરેક વસ્તુ અનેકવાર પ્રાપ્ત થાય છે, પરન્તુ સમ્યગ્દર્શન પામવું દુર્લભ છે, અને તેજ હેતુથી તેને રત્નની ઉપમા આપેલી છે, કેમકે સર્વ સંપત્તિઓનું નિધાન અને જ્ઞાનનું કારણ પણ એક સમ્યગ્દર્શન છે. એ પ્રમાણે મોક્ષરૂપી કલ્પવૃક્ષના બીજ સમાન સમ્યગ્દર્શનનું સંક્ષેપમાં સ્વરૂપ જણાવ્યું. સમ્યગ્દર્શનને પામેલ જીવ પરમપૂજ્ય શ્રીતીર્થંકર ભગવંતોએ પ્રતિપાદન કરેલ અને પૂજ્યશ્રી ગણધર મહારાજાદિ પુર્વાચાર્યોએ સૂત્રરૂપે ગુંથેલ આગમોમાં કહેલ અર્થો યથાર્થજ છે, એમ માને છે. કદાચ તેતે આવકાર કર્મોના દોષોને લઇને પોતાને આત્મસ્વરૂપ કર્મસ્વરૂપ વિગેરે ગહન અર્થો ન સમજાય, તોપણ અસત્યના કારણભૂતાદિનો રાગ નાશકાર જિનેશ્વર ભગવંતો વિપરીત ભાવ કહે જ નહિ, એવી શ્રદ્ધા રાખે છે.

હવે "તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન તે સમ્યગ્દર્શન" એમ પૂર્વે કહ્યું તેમાં વાસ્તવિક તત્ત્વો કેટલા છે ? અને તે બાબતમાં અન્યદર્શન કારોએ માનેલ ન્યુન- વા અધિક તત્ત્વો સત્યકોટીમાં દાખલ થઇ શકે છે કેમ ? આ સંબંધી વિચાર કરીએ- સંખ્યાની અપેક્ષાએ સ્યાદ્વાદમતાવલંબિ રસિક આર્હતો શ્રીભગવતી આદિ

॥ પ્રસ્તાવના ॥

[illegible]ની સઘળીએ પ્રમાણસિદ્ધ નવતત્વો માને છે. [illegible]
શ્રીસમયસારપ્રાભૃત વિગેરેમાં માનતત્વો કહેલ છે, તોપણ તે [illegible]
નથી, કારણકે પુણ્યતત્વને દ્રવ્યાશ્રવ અને પાપ તત્વને [illegible]
અહીં આશ્રવમાં પુણ્ય, પાપનો અંતર્ભાવ કરીને તેમ કહેલ છે. [illegible]
અંતર્ભાવ કરવાથી તો પાંચ અને બે તત્વો પણ કહેવાય છે પરંતુ [illegible]
વિવક્ષાએ તત્વો નવ જ છે, નવ એ અબોધસંખ્યા છે. [illegible]
કારણ એ કે- જેને કોઈપણ સંખ્યાએ ગુણવાથી [illegible] તેના (ગુ[illegible]
સંખ્યાના) [illegible] તે અબોધસંખ્યા કહેવાય. જેમ ૯ સંખ્યાને
[illegible] સંખ્યાએ ગુણવાથી [illegible] એનો સરવાળો કરવાથી ૯ અને ગુણ[illegible]
[illegible] પણ નવની જ છે. એવી રીતે ૯ ને [illegible] પણ સંખ્યાએ ગુણ[illegible]
ગુણાકારના આંકનો સરવાળો ગુણ્યસંખ્યાનો જેટલે જ થઈ તેથી ૯ એ અ[illegible]
સંખ્યા છે. પરંતુ [illegible] ૭ વિગેરે સંખ્યા અભેદ ન કહેવાય. કારણકે [illegible]
કોઈપણ સંખ્યાએ ગુણવાથી ગુણાકારના આંકનો સરવાળો જેટલી ગુણ્યસં[illegible]
[illegible] થતી નથી. જેમ (૭ × ૮ = ૫૬) ૫ + ૬ = ૧૧) ઇત્યાદિ ગુ[illegible]
[illegible] પણ નવતત્વો ઘટી શકે છે. તેમજ મિથ્યાદર્શનો કે જેટલા [illegible]
[illegible] વિગેરે તેઓની [illegible] માન્યતાને અનુસારે [illegible]
[illegible] તત્વો પ્રરૂપે છે, જેમ [illegible] (નૈયાયિક) ૧૬ પદાર્થો, કપિલ ૨૫
તત્વોને, બૌદ્ધ ૧૨ આયતનોને, વૈશેષિક ૭ પદાર્થ માને છે વિગેરે
પરંતુ [illegible] તેઓ તત્વરૂપ નથી કારણકે તત્વની વ્યાખ્યા એ છે
કે- "[illegible]" એવું [illegible] પદાર્થનું યથાર્થ સ્વરૂપ તે તત્વ
કહેવાય ઇત્યાદિ તત્વનું લક્ષણ તથા સ્વરૂપ તેઓના માનેલ તત્વોમાં ઘટ[illegible]
[illegible] ઇત્યાદિ તત્વસ્વરૂપ કોઈ રીતે નથી ઘટતું. તેનો વિસ્તાર
"[illegible]" નામના ગ્રંથથી જાણી લેવો.

[illegible] ૧ [illegible] છે કે- [illegible] એ કહેલું કારણ છે તેથી
[illegible] કહેલ [illegible] જાણવું જોઈએ.

[illegible]— [illegible] નવતત્વનું [illegible] સ્વરૂપ [illegible]
[illegible] કરેલ [illegible]
[illegible] સ્વરૂપ [illegible] કરેલ છે [illegible]

૧ [illegible]— [illegible]
[illegible]
[illegible]

ત્યાગ કરે, તે જીવ કરણ ક્રિયા કર્યા વિનાજ ફરી વિરતિ પામે છે. અનેજે ઉપયોગ અવસ્થામાં વિરતિરહિત થાય, અને તેવીજરીતે મિથ્યાભાવને પામે તે જીવ જઘન્યથી અંતર્મુહુર્ત્તકાલમાં અને ઉત્કૃષ્ટથી લાંબે કાળે પણ પૂર્વે કહેલ કરણોની ક્રિયા કરીનેજ ફરી વિરતિ અંગીકાર કરી શકે, એ પ્રમાણે **કર્મપ્રકૃતિવૃત્તિ**માં કહેલ છે, સૈદ્ધાન્તિકમતે- જે જીવો પામેલ સમ્યગ્દર્શન વમી ફરી સમ્યગ્દર્શન પામ્યા તે જીવોમાં કોઇ જીવોમાં કોઈ જીવ ઉત્કૃષ્ટથી છઠી નરક સુધી પણ જઈ શકે છે, પરંતુ કાર્મગ્રંથિકમતે તે જીવ વૈમાનિક દેવજ થાય. એમ **શ્રીપ્રવચનસારોદ્ધારવૃત્તિમાં** કહેલ છે. વલી કર્મગ્રંથકારના મતે સમ્યગ્દૃષ્ટિજીવ જ્યારે મિથ્યાભાવ પામે ત્યારે કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ બાંધે પણ તેઓનો તેવો રસ બંધન કરે. અને સૈદ્ધાન્તિકમતે ગ્રંથભેદ કરનાર જીવ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિબંધ ન કરે. આ સમ્યગ્દર્શનના મહિમાને જણાવતાં શાસ્ત્રકાર મહારાજા કહે છે કે–જે જીવને અંતર્મુહુર્ત્ત જેટલો અલ્પકાલ પણ જો સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થયું હોય તો તે જીવને લાંબા કાલ સુધી સંસારચક્રમાં પરિભ્રમણ હોતું નથી. તો પછી લાંબી સ્થિતિવાલા સમ્યગ્દર્શનધારિ જીવોને અલ્પસંસાર હોય, તેમાં શું આશ્ચર્ય હોય ? તથા ચક્રવર્તિરાજા પણ સમ્યગ્દર્શનના અભાવે ભિક્ષુક જેવો ગણાય છે: અને તે દર્શનના પ્રતાપે ભિક્ષુક પણ તેથી અધિક ગણાય છે. તથા સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતા દરેક વસ્તુ અનેકવાર પ્રાપ્ત થાય છે, પરન્તુ સમ્યગ્દર્શન પામવું દુર્લભ છે, અને તેજ હેતુથી તેને રત્નની ઉપમા આપેલી છે, જેવડે સર્વ સંપત્તિઓનું નિધાન અને ગાનનું કારણ પણ એક સમ્યગ્દર્શન છે. એ પ્રમાણે મોક્ષરૂપી કલ્પવૃક્ષના બીજ સમાન સમ્યગ્દર્શનનું સંક્ષેપમાં સ્વરૂપ જણાવ્યું. સમ્યગ્દર્શનને પામેલ જીવ પરમપૂજ્ય શ્રીતીર્થંકર ભગવંતોએ પ્રતિપાદન કરેલ અને પૂજ્યશ્રી ગણધર મહારાજાદિ પુર્વાચાર્યોએ સૂત્રરૂપે ગુંથેલ આગમોમાં કહેલ અર્થો યથાર્થજ છે, એમ માને છે. કદાચ તેને આવરક કર્મોના દોષોને લઇને પોતાને આત્મસ્વરૂપ કર્મસ્વરૂપ વિગેરે ગહન અર્થો ન સમજાય. તોપણ અસત્યના કારણભૂત રાગ દ્વેષ નાશકાર જિનેશ્વર ભગવંતો વિપરીત ભાવ કહે જ નહિ, એવી શ્રદ્ધા રાખે છે.

હવે "તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન તે સમ્યગ્દર્શન" એમ પૂર્વે કહ્યું તેમાં વાસ્તવિક તત્ત્વો કેટલાં છે ? અને તે આગમમાં અન્યદર્શન કારોએ માનેલ ન્યુન વા અધિક તત્ત્વો સાતેકોટીમાં દાખલ થઇ શકે છે કેમ? આ સંબંધી વિચાર કરીએ– મોક્ષાની અપેક્ષાએ સ્યાદ્વાદમતાવલંબિ રસિક આત્મા શ્રીભગવતી આદિ

સાની સાક્ષીએ પ્રમાણસિદ્ધ નવતત્ત્વો માનેછે. જોકે-શ્રીયોગશાસ્ત્રવૃત્તિ અને શ્રીસમયસારપ્રકરણ વિગેરેમાં સાતતત્ત્વો કહેલછે, તોપણ તે વ્યામોહને માટે નથી, કારણકે પુણ્યતત્ત્વને શુભાશ્રવ અને પાપ તત્ત્વને અશુભાશ્રવ તરીકે ગણી આશ્રવમાં પુણ્ય, પાપનો અંતર્ભાવ કરીને તેમ કહેલ છે. એક બીજામાં અંતર્ભાવ કરવાથી તો પાંચ અને બે તત્ત્વો પણ કહેવાય છે. પરંતુ યથાસ્થિતભાવે તત્ત્વો નવ જ છે, નવ એ અભેદસંખ્યા છે. અભેદસંખ્યાનું લક્ષણ એ કે- જેને કોઇપણ સંખ્યાએ ગુણવાથી સરવાળો તેના (ગુણ્યસંખ્યાના) જેટલોજ થાય, તે અભેદસંખ્યા કહેવાય. જેમ ૯ સંખ્યાને ૪ આ સંખ્યાએ ગુણવાથી ૩૬ આ બેનો સરવાળો કરવાથી ૯ અને ગુણ્યસંખ્યા પણ તેટલી જ છે, એવી રીતે ૯ ને કેઇ પણ સંખ્યાએ ગુણવાથી ગુણાકારના અંકોનો સરવાળો ગુણ્યસંખ્યાનો જેટલોજ થશે તેથી ૯ એ અભેદસંખ્યા છે. પરંતુ બીજી ૭ વિગેરે સંખ્યા અભેદ ન કહેવાય. કારણકે તેને કોઇપણ સંખ્યાએ ગુણવાથી ગુણાકારના અંકના સરવાળા જેટલી ગુણ્યસંખ્યા થતી નથી. જેમ ૭ + ૮ = ૫૬) ૫ + ૬ – ૧૧) ઇત્યાદિ યુક્તિથી પણ નવતત્ત્વો ઘટી શકે છે, તોપણ મિથ્યાદર્શનકારો જેવાકે અક્ષપાદ, કપિલ, બૌદ્ધ, વૈશેષિક વિગેરે પોતાની સાંપ્રદાયિક માન્યતાને અનુસારે જુદા કલ્પિતતત્ત્વો પ્રરૂપે છે, જેમ અક્ષપાદ (નૈયાયિક) ૧૬ પદાર્થોને, કપિલ ૨૫ તત્ત્વોને, બૌદ્ધ ૧૨ આયતનોને, વૈશેષિક ૭ પદાર્થોને માને છે. વિગેરે પરંતુ વાસ્તવિકરીતે તેઓ તત્ત્વરૂપજ નથી કારણકે તત્ત્વની વ્યાખ્યા એ છે કે–' तस्य भावस्तत्त्वं ' તેનું એટલે પદાર્થનું યથાર્થ સ્વરૂપ તે તત્ત્વ કહેવાય. ઇત્યાદિ તત્ત્વનું લક્ષણ તથા સ્વરૂપ તેઓના માનેલ તત્ત્વોમાં ઘટતું નથી. તે લક્ષણાદિ તત્ત્વસ્વરૂપલક્ષણમાં કેવી રીતે નથી ઘટતા, તેનો વિસ્તાર 'ષડ્દર્શનસમુચ્ચય' નામના ગ્રંથથી જાણી લેવો.

સજ્જનો ! જાણ્યુંજ હશે કે- પરિચય એ પ્રતીતિનું કારણ છે તેથી પ્રસ્તુત ગ્રંથોના પરિચય પરત્વે જણાવવું જોઇએ.

શ્રીનવતત્ત્વવિસ્તરાર્થ— જેમાં નવતત્ત્વોનું ટુંક સ્વરૂપ તથા તેઓને શ્રીઆગમની અતિ સંક્ષેપે કહેલ ક્રમે દાખલ કરવાનું પ્રયોજન, તથા ઉત્તરભેદોનું સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરેલછે તેમાં-

જીવતત્ત્વે— જીવોના અનેક ભેદોનુંસ્વરૂપ, લક્ષણ, શ્રીતત્ત્વાર્થાદિપ્રમસ્ત સિદ્ધિ અનુસારે પર્યાપ્તિનું વિસ્તારસ્વરૂપ, દશપ્રાણોનું સ્વરૂપ દેવોની આદિ જીવોમાં વિભાગ, રહસ્ય, પરિશિષ્ટ—

૨ અજીવતત્ત્વે—મૂલોત્તરભેદોનું સ્વરૂપ, પરિણામિઆદિ દ્વારોની ઘટના પરિશિષ્ટ—

૩ પુણ્યતત્ત્વમાં— ૧૭-૨૫-૪૨ ભેદનું સ્વરૂપ, પરિશિષ્ટ દર્શાવેલ છે.

૪ પાપતત્ત્વમાં— ૮૨ભેદનું સવિસ્તરસ્વરૂપ, પરિશિષ્ટ પ્રતિપાદન કરેલ છે.

૫ આશ્રવતત્ત્વમાં—ઇન્દ્રિય, (૫) કષાય, (૪) અવ્રત. (૫) યોગ (૩) (૨૫) ક્રિયાઓનું સ્વરૂપ છે

૬ સંવરતત્ત્વમાં— સમિતિ (૫), ગુપ્તિ (૩), પરિષહ (૨૨) યતિધર્મ (૧૦), ભાવના (૧૨), ચારિત્ર (૫)નું સવિસ્તરસ્વરૂપ દાખલ કરેલ છે.

૭ નિર્જરાતત્ત્વમાં— ૬ બાહ્યતપ, ૬ અભ્યંતરતપનું સવિસ્તરસ્વરૂપ છે.

૮ બંધતત્ત્વમાં— ૮ કર્મોનું ભેદ પ્રભેદ સહિત વિસ્તારથી સ્વરૂપ છે.

૯ મોક્ષતત્ત્વમાં— સત્પદ પ્રરૂપણાદિ નવદ્વારોનું સવિસ્તર વર્ણન છે. તથા છેવટે પ્રક્ષિપ્ત ગાથા સહિત શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણની મૂલ ગાથાઓ દાખલ કરેલ છે વિશેષ સ્વરૂપના જિજ્ઞાસુજીવોએ અનુક્રમણિકા જોવી.

૧ શ્રીનવતત્ત્વસાહિત્યસંગ્રહ. ભાગ ૧-૨-૩-૪-જેમાં ચારભાગ પૈકી **પ્રથમભાગમાં**— પાંચ ગ્રંથરત્નો દાખલ કરેલ છે, તે આ પ્રમાણે— ૧-વાચકવર્ય શ્રીમદુમાસ્વાતિમહારાજાએ રચેલું શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ. ૨-શ્રી જયશેખરસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ. ૩-શ્રીદેવગુપ્તસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ. ૪-તેના ઉપર શ્રીનવાંગીવૃત્તિકાર શ્રીમદભયદેવસૂરિપ્રણીત ભાષ્ય સાર્થ. ૫-શ્રીદેવેન્દ્રસૂરિપ્રણીત નવતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ.

દ્વિતીયભાગમાં – શ્રીનવતત્ત્વપ્રકરણ ઉપર-૧-શ્રીપ્રાચીન આચાર્યપ્રણીત અવચૂર્ણિ-૨-શ્રીસાધુરત્નસૂરિપ્રણીત અવચૂર્ણિ-૩-શ્રીદેવેન્દ્રસૂરિપ્રણીત વૃત્તિ-૪-શ્રીનવતત્ત્વની પ્રક્ષિપ્તગાથાઓ-૫-તે ગાથાઓની ઉપર- શ્રીતપોગચ્છાચાર્યજગદ્ગુરૂ **શ્રીમદ્વિજય નેમિસૂરીશ્વર** પટ્ટપૂર્વાચલ નભોમણિ શ્રીમદ્વિજયોદયસૂરિપ્રણીતઅવચૂર્ણિ- આ પાંચ ગ્રંથરત્નો દાખલ કરેલ છે.

તૃતીયભાગમાં—૧-કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રસૂરીશ્વરપ્રણીત સપ્તતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ ૨-શ્રીવિજયાનંદસૂરિપ્રણીત સપ્તતત્ત્વપ્રકરણ સાર્થ, આ બે ગ્રંથરત્નો દાખલ કરેલ છે.

ચતુર્થભાગમાં— ૧-શ્રીભાગ્યવિજયજીએ રચેલ તથા ૨-શ્રીવિવેકવિજયજીએ રચેલ-શ્રીનવતત્ત્વસ્તવન ૩-શ્રીજ્ઞાનસારમુનિકૃત બાલાવબોધ—નવતત્ત્વપ્રકરણ ૪-પ્રાચીન ગુર્જરભાષામય શ્રીનવતત્ત્વવિચાર. આ ચાર ગ્રંથો દાખલ કરેલછે વિસ્તારથી જાણવાની ઇચ્છાવાળા જીવોએ અનુક્રમણિકા જોવી.

આ પ્રસંગે મારે અવશ્ય જણાવવું જોઈએ કે—આ શ્રીનવતત્ત્વના પ્રસ્તાવમાં પ્રાસંગિક વિશેષ સંપૂર્ણજ્ઞાન સંપાદન કરાવવામાં સાધનભૂત શ્રીઆચારાંગનિર્યુક્તિ, શ્રીઉત્તરાધ્યયન, કર્મગ્રંથ, બૃહત્સંગ્રહણી વિગેરે ગ્રંથોની પ્રસિદ્ધ ગાથાઓ સમેતપ્રકરણ કે જેની અંદર ૧૪૦ ગાથાઓ છે. જે ગાથાઓ [illegible] સ્થિતિસ્થાન વિગેરે જૈનધર્મ વિશેષોનો અનુભવ કરવામાં [illegible] સાધનભૂત છે. તેઓમાંની નં-૨૭ ગાથાઓ [illegible] છે. કારણ કે તેઓની વૃત્તિ, અવચૂર્ણિ-ટીકા વિદ્યમાન છે. તેમજ બાકીની ૧૧૩ ગાથાઓ ઉપરોક્ત વૃત્તિઆદિ સામગ્રીના અભાવે બાલજીવોને સુબોધ થતી અટકાય છે. એ હેતુ [illegible] ચાતુર્યવંતની માફક સમાન બુદ્ધિએ ભવ્યજીવોને અધ્યાપન [illegible] ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામીના [illegible] બનાવનાર, આર્હતતત્ત્વના વિશાળભાવોને સમજનાર શ્રીજિનતત્ત્વપરીક્ષાદિ અપૂર્વ ગ્રંથસંદર્ભના રચનાર,—શાસનસમ્રાટ્-તીર્થરક્ષણપરાયણ વિદ્વદ્‌-શાસનસેવ તપોગચ્છાચાર્ય મહારાજ પરમોપકારિ પૂજ્યપાદ, જન્મભાવનગર અમારા સદ્‌ગુરુવર્ય શ્રીમદ્વિજયનેમિસૂરીશ્વર પટ્ટપૂર્વાંચલ માર્તંડ, મારા ઉપકારિ સિદ્ધાન્તવાચસ્પતિ ન્યાયવિશારદ પૂજ્યપાદ તપોગચ્છાચાર્ય શ્રીમદ્વિજયોદયસૂરિ મહારાજશ્રીએ સરલ અને સુબોધ અવચૂરિદ્વારા [illegible] ૧૧૩ ગાથાઓને અલંકૃત કરેલ છે. જેથી તેઓશ્રીનો આ અનહદ ઉપકાર આત્મહિતત્ત્વાર્થી ભવ્યજીવોને અવિસ્મરણીય છે. અંતમાં આ બે ગ્રંથોના પઠન પાઠન અને નિદિધ્યાસનદ્વારા ભવ્યજીવો આત્મસ્વરૂપ કર્મનો બંધ તથા મોક્ષ ઇત્યાદિ પદાર્થ તત્ત્વોને યથાર્થ સમજવા ઉપરાંત હિતમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ અને અહિતમાર્ગથી નિવૃત્તિ પામી સકલ કર્મ ક્ષયથી નિર્મુક્ત થઈ કેવલ્યનું ભાજન પામવાને યત્ને, એમ નિવેદન કરી પાઠક [illegible] વિશેષ અનુભવ આ ગ્રંથોના અધ્યયન [illegible] અધીન રાખીને હવે હું અહીંયાં આ પ્રસ્તાવનાને સંક્ષિપ્ત કરું છું. અને તેમ કરતાં જે કાંઈ [illegible] કારણ કે મહોપાધ્યાયોને [illegible] સમાં મેળ થઈ હો છે. જેમ— [illegible] [illegible] સંશોધન પણ તેમાં રહેલ દોષનું દાન કરાવવામાં નિમિત્તભૂત બને છે. તથા ભવ્યજીવોને આ ગ્રંથોમાંથી પ્રસાદ [illegible] અનિવાર્ય છે.

यतः— अक्षरं मात्रिको दोषा, [illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥

विषय.

विषय.

विषय. पृष्ठ.

विषय. पृ

॥ अथ शुद्धिपत्रकम् ॥

पृ.	पं.	अशु०	शुद्ध.
१०	२२	कहयु	कह्यु
११	२३	अध०	अध०१,
१७	२१	जोयो	जीयो
१८	७	जेयो	जीयो
१८	१३	द्रष्टि	दृष्टि
२१	२४	नीज	तेज
२१	१७	शुद्धि	शुद्धि
२१	२४	सिद्ध	सिद्धि
२२	१८	इहा	ईहा
२३	१	माणा	जणा
२३	४	चैतन्य	चैतन्य
२३	७	नीगो	निगो
२३	१०	अ	अ.
२३	१२	कोइ	कोइने
२४	१४	अश	अंश
२४	१०	धीक	धिक
२५	२६	मीमा	मीमां
२६	४	उणा	ऊणा
३१	८	रुप	रूप
३२	२०	पुद्र	पुद्ग
३२	२६	कहवा	कहवा
३३	१५	रुप	रूप
३३	२१	कहवा	कहवा
३३	२०	अत्मा	आत्मा
३४	४	कहवा	कहवा
३४	१८	हणे	हणे
३५	७	अत्मा	आत्मा
३६	४	कहवा	कहवा
३६	१	मन	मन
३६	१४	तेन	तेने
३७	१७	मामा	माना
३७	२०	कहथा	कहवा
३८	११	वैक्रि	वैक्रि
३९	१०	बंध	बंध
३९	२३	लब्धि	लब्धि
४०	२३	समू	सम्मू
४०		यांत्ति	यत्ति
४०	१८	लब्धि	लब्धि
४०	१८	कहथा	कहवा
४१	३	रुप	रूप
४२	१९	सिध्धी	सिद्धि
४२	२०	सुधी	सुधी
४३	९	कहथा	कहवा
४३	२६	तेन	मने
४६	६	पर्या	पर्या
५०	२१	धय	धम
५४	२	पुद्दग	पुद्ग
७३	२	धाणे	घ्राणे
७३	२८	मण	मणण
७४	१७	भने	अने आकाश
७५	२६	सुधी	सुधी
७६	१	कया	का
७८	२१	भने	मने
७८	२४	आ	औ
८९	२४	बीजे	बीजे
९५	११	थान्य	व्यान्य
९५	८	थाकी	माकी
९८	११	१ ग	१ अग
९९	७	(१	१
१०१	१८	गपमी	गमी
१०९	७	जीव	जीव

पृष्ठ.	पं.	शुद्ध.	अशुद्ध.
११०	४	नि	ति
१११	३	परा	पर
११२	१८	अथे	आर्थे
११४	४	धधो	धो
१२४	५	म्यं	म्क
१२४	१७	म्न्र	म्न
१३३	२७	माया	माया-उच्छ्रिम
१३६	२२	पण	माण
१३९	१२	माम	यं
१४०	१९	अमे	अनं
१४१	२२	बा	बत्
१४९		भा	भां
१५०	१	जो	जो
१५२	२३	हय	दय
१५५	१९	पी	पीं
१५६	९	मेद	मेद
५६	१४	गुण	•
५६	१७	मी	मीं
५८	१०	स्दग	दगन्
०	१	स्ता	स्य
०	८	आम	आत्मा
१	३	अग	अण
१	८	दाये	दायें
४४		हवा	होवा
२१		अस्य	अस्य
		दृवि	दृवि
३३		माद	माद
१५		दरो	दीं
१८		दीं	दारो
१८		३१०२०३०१	

पृष्ठ.	पं.	शुद्ध.	अशुद्ध.
१९१	२१	गोद्यु	गो_भद्यु
२००	१७	मप	मपं
२००	२१	भाद	मांद
२००	२२	थिया	म्रिया
२०१	१८	दाधि	दाधि
२०६	१७	,,	मायोगिकी
२०७	११	व्यपा	व्यापा
२०८		मटि	पृटि
२०८		त्रि	त्रि:
२०९	७	मणि	मां:
२२८	७	र्धा	र्धो
२२८	९	गा	गा
२२९	१६	ह	र
२३१		हि	रि
२३४	१	म	म
२३७		गा	गां
२४०	७	दव	दंव
२४०		वंवां	मंव
२४१	१०	पम	पम समझो
२५०	१५	(वन्तु	(मेद)
२५१	१८	वि	वि
२५६	१०	ह	ह
२५७	५	न्वा	न्व
२६९	३	हन्न	हंन
२५९	९	मोव	मौवि
२६२	१७	रम्न	रंम
२६३	६२	म	व
२६४	२७	मी	मीअनुमोदन
२६७	११	व्यारा	व्यारवा
२७२	१४	वी	वी:
२७४	८	व	विद

२७५	१	वध	वन्ध	३०२	८	जोथो	जीव
२७६	२२	य	दि	३०३	१	अंत	अंतरं
”	”	या	यान्	३०३	१७	सिध्य	सिद्ध
२८८	२०	प	५	”	”	मउ	मद्दु
२९२	५	शिरा	इया	३२५	१२	गद्दा	गपद्दा
२९८	१९	धार	व्रण	३२९	१७	पम	पम
२९९	१८	रूम	रूप	३३७	४	हिग	गिह

सूचना.

पा. १३४—२८ मी लाइनमां. भगवतीजी-पन्नवणावृत्ति आदि ने अभिप्राये तैजसवर्गणा अष्टस्पर्शी छे.अने तेथी ते गुरुलघुद्रव्य मान्युं छे. अने चतुः स्पर्शीभाषादि वर्गणाओ अगुरुलघुद्रव्य छे.

पा. १६५—३ जी लाइनमां "रुंड मुंड" ए शब्द पछी छठ्ठी लाइनमां "जेवुं" ए शब्दथी "पुण्यरूप छे" त्यां सुधीनुं वांचवुं पछीथी "आ प्रणे" विगेरे वांचवुं.

पा. १८२-१४ मी लाइनमां.एकेन्द्रियादि जातिनाम कर्म एकेन्द्रियादिव्यपदेश थवामां अने इन्द्रियपर्याप्ति नामकर्म स्पर्शनादि इन्द्रियो पामवामां कयुं छे.

पा. १८४—१५मी लाइनमां.'होय ते' ए शब्द पछी ८२ हुंडक-जे कर्मना उदयथी शरीरना तमाम अवयवो लक्षणरहित होय ते.

पा. २०९—२० मी लाइनमां मनोयोगादिनी वृत्तिओने अशुभ व्यापारमांथी अथवा सर्वथा रोकवी ते गुप्ति.

पा. २५ —१५ मी लाइनमां. भिक्षानासंसृष्ट-असंसृष्ट-उद्धृत-अल्पलेपकृत-उद्गृहीत-प्रगृहीत-उज्झितधर्माख्य सात भेदो पैकी प्रथमना बेनो त्याग करी पांच भेदे भीक्षा ग्रहण करे तेमां पण निरन्तर बे भेदनो अभिग्रह राखे. नव मुनिगण पैकी अनुचारक तथा वाचनाचार्य (कल्पस्थित) निरन्तर आयंबिल करे छे. तप करनार तथा अनुचारकने अतिचारादि कारणे वाचनाचार्य प्रायश्चित्तादि आपे छे. परिहार विशुद्धिकल्प तीर्थंकरनी पासे अगर तीर्थंकर पासे जेमणे ते कल्प अंगीकार कर्यो होय तेनी पासे अंगीकार कराय छे.

पा. ३३८—२० मी लाइनमां. १५०० तापसोए अष्टापदपर्वतथी ऊतरता गौतमस्वामी महाराज पासे प्रव्रज्या ग्रहण करी अने साधु वेष लीधो हतो त्यारबाद पारणुं कराव्युं हतुं. जेथी तेओ स्वलिंग सिद्धज गणी शकाय.

सकलस्वपरसमयपारावारपारीणेभ्यः सत्संयमभृद्वतंसकेभ्यो जगद्गुरु-
हरणेभ्यस्तपोगच्छाचार्यभट्टारकश्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरपादपद्मे-
भ्यो नमो नमः

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः ॥

नत्वा वीरजिनेन्द्रं, नतविबुधेशं च नेमिसूरीशम् ॥
नवतत्त्वविस्तरार्थं, कुर्वेऽहं बालबोधार्थम् ॥१॥ (आर्या)

अवतरण-आ नवतत्त्व प्रकरणना प्रारंभमां ग्रन्थकार महाराज वस्तुसं-
कीर्तनरूपमंगलाचरण तथा ग्रन्थाभिधेयादि कहेवामाटे९ तत्त्वनां नाम
जणावे छे. मूळ गाथा १ ली.

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावाऽसवसंवरो य निज्जरणा ॥
बंधो मुक्खो य तहा, नवतत्ता हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जीवाऽजीवौ पुण्यं, पापश्रवौ संवरश्च निर्जरणा
बंधो मोक्षश्च तथा, नवतत्त्वानि भवंति ज्ञातव्यानि ॥१॥

शब्दार्थः

जीव-जीवतत्त्व.	निज्जरणा-निर्जरातत्त्व
अजीवा-अजीवतत्त्व.	बंधो-बंधतत्त्व.
पुण्णं-पुण्यतत्त्व.	मुक्खो-मोक्षतत्त्व.
पाव-पापतत्त्व.	तहा-तथा, तेमज, तसवरपे.
आसव-आश्रवतत्त्व.	नवतत्ता-नवतत्त्वो.
संवरो-संवरतत्त्व. य-अने.	हुंति-छे. नायव्वा-जाणवायोग्य.

गाथार्थः—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध अने मोक्ष ए नव (९) तत्त्वो (सत्यस्वरूपे) जाणवा योग्य छे.

विस्तरार्थः—आ नवतत्त्व प्रकरणना प्रारंभमां प्रथम नव-तत्त्वोनो संक्षिप्त अर्थ आ प्रमाणे छे—

व्यवहार नये (स्थूल दृष्टिए) [1]शुभाशुभ कर्मोनो कर्ता, हर्ता अने भोक्ता (एटले शुभाशुभ कर्मोने विनाश करनार अने ते कर्मोना शुभाशुभ फळोने भोगवनार) ते जीव कहेवाय, [2]अथवा दुःख सुखादि ज्ञानना उपयोगरूप (अनुभवरूप) चैतन्य लक्षणवाळो ते जीव [3]कहेवाय, अथवा [4]दश बाह्य प्राणो पैकी यथायोग्य प्राणोने धारण करे ते जीव [5]कहेवाय, अने ए जीवनुं जे (लक्षण-भेदादि) स्वरूप ते जीवतत्त्व कहेवाय. १

जीवथी विपरीत लक्षणयुक्त एटले चैतन्यलक्षण रहित जे जड स्वभावी ते अजीव कहेवाय, अने ए अजीवनु जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते अजीवतत्त्व कहेवाय. २

---

1 पुण्यकर्म अने पापकर्मनो.

2 यः कर्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च.
संसर्ता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥

अर्थ– जे कर्मभेदनो करनार, कर्मफलनो भोगवनार, कर्मने अनुसारे चार गतिमांथी बीजी गतिमां जनार, अने कर्मनो नाश करनार एवा लक्षणवाळो आत्मा छे, परन्तु बीजा लक्षणवाळो नहि.

3 " चैतन्यलक्षणो जीवः " इति वचनात्,

4 ए दश बाह्य प्राणोनुं स्वरूप ७ मी गाथामां कहेवाशे.

5 " जीवति दशविधान् प्राणान् धारयति इति जीवः"
इति वचनात्, संसारमां रहेला जीवनुं ए उपर कहेलुं लक्षण जाणवुं. सिद्ध भगवंतोमां तो ज्ञानादि स्वरूप भाव प्राणो होवाथी जीवपणुं कहेलुं छे.

जीव जेनावडे सुख भोगवे छे ते कर्म पुन्य कहेवाय,
पुन्यनुं (शुभ कर्मनुं) जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते पुन्यत
थाय छे. अहिं जीवने सुख भोगववामां कारणरूप जे शुभ
[1]द्रव्यपुन्य कहेवाय, अने ते शुभकर्मने उत्पन्न करवामां क
जे जीवना शुभ अध्यवसाय (परिणाम) ते [2]भावपुन्य क
अथवा पुन्यानुबंधिपुन्य अने पापानुबंधिपुन्य ए प्रमाणे
प्रकारे छे. त्यां जे पुन्य भोगवतां बीजुं नवुं पुन्य बंधाय ते
बंधिपुन्य, एना उदयथी आ भवमां सुख भोगवी आग
सुख ज भोगवे भरतचक्रवर्ती विगेरेनी माफक आर्यदेशना
[3]रिक दानेश्वरी अने धर्मी जीवो आ भवमां पुन्यकर्म भोगवी
छे अने ते पुन्य भोगववाद्वारा बीजुं नवुं पुन्य पण उपार्जन
छे, जेथी आ लोकमां अने परलोकमां (परभवमां) पण ते
सद्गतिज प्राप्त थाय छे, माटे ते पुन्यानुबंधिपुन्य कहेवाय छे.
जे पुन्य भोगवतां बीजुं नवुं पुन्य न बंधाय परन्तु पाप बंध
ते पापानुबंधिपुन्य कहेवाय. जेमके आर्यवर्त्तना अने अना
देशना जे महर्द्धिक जीवो केटलाएक एवा छे के आ भवमां प
तेवा प्रकारनो अनेक जातनो वैभव भोगवी रह्या छे, परन
ते वैभव (पुन्यकर्म) भोगवतां छतां सत्कार्यो-सदाचार प्रवृत्ति
नहि होवाथी बीजुं नवुं पुन्य उपार्जन नहि करतां असदाचा
प्रवृत्तिथी अनेक प्रकारनां पापकर्म करी पाप मात्रज बांधी रह
छे जेथी आ भवमां भो पुन्यकर्मथी सुख भोगवी रह्या छे, परन्तु

---

१ आ स्थाने द्रव्य पदनो " लौकिकव्यवहारथी, " अथवा
" स्थूल दृष्टिए " एवो अर्थ करवो.

२ आ स्थाने भाव पदनो " वास्तविक रीते " अथवा
"सूक्ष्मदृष्टिए" एवो अर्थ करवो. ए बन्ने शब्दनो अर्थ आगमादिकमां
घणा स्थाने जाणवो.

३ महाधनवान.

परभवमां तो ब्रह्मदत्तचक्रवर्तीनी माफक दुःखमय दुर्गतिज छे. एवा प्रकारना पुण्यने पापानुबंधि पुण्य कहेवामां आवे छे चालु प्रकरणमां विशेषतः पुण्यानुबंधिपुण्यनेज पुण्य तरीके मानवुं योग्य छे ३

जीवने दुःख भोगववामां कारणरूप जे अशुभकर्म ते द्रव्य पाप, अने ते अशुभ कर्मने उत्पन्न करवामां मूळ कारणरूप जे अशुभ अध्यवसाय (भाव—परिणाम) ते भावपाप कहेवाय, अने ए पापनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते पापतत्त्व कहेवाय. अहिं पाप पण (पुण्यतत्त्वमां कह्या प्रमाणे) चे प्रकारनुं छे. त्यां जे कसाइ मच्छीमार विगेरे जीवो आ भवमां दरिद्रतादि अनेक दुःखो (पापो) भोगवी रह्या छे (भोगवे छे) अने एज पाप भोगववाद्वारा बीजुं नवुं पाप उपार्जन करे छे जेथी आ भवमां तेओने सुख नथी अने परभवमां पण सुख नथी माटे ते पापानुबंधि पाप कहेवाय. तथा जे जीवो आ भवमां दरिद्रतादि दुःख (पाप) भोगवे छे परन्तु आ दरिद्रता ते पूर्वकृत पापनोज प्रभाव छे एम समजी पोतानी शक्ति प्रमाणे धर्मकृत्यो करे छे जेथी आ भवमां तो तेओने सुख नथी पण परभवमां तो अवश्य सुख पामशे ते माटे ते पुण्यानुबंधि पाप चण्डकौशिक सर्पादिनी माफक कहेवाय छे अने एवा पापने पाप तरीके मानवुं योग्य छे, तोपण वास्तविक रीते पापानुबंधि पापने विशेषतः पाप तरीके मानवुं योग्य छे. ए प्रमाणे पुण्य पापनी चतुर्भंगी (चार भांगा—चार प्रकार) नीचे प्रमाणे यथा. ४

१ पुण्यानुबंधि पुण्य—'सुख छे अने छे'—आ प्रकार आदरवा योग्य छे.

१ अर्थात् (पुण्यानुबंधि पुण्यथी) आ भवमां सुख छे, अने परभवमां पण सुख छे, ए रीते चार प्रकार समजवा.

२ धर्मप्रभावकपणाथी ओळखाय. ३ अतिक्रूरकर्मथी ओळखाय.

२ पापानुबंधि पुन्य-सुख' छे अने 'नथी- ,, त्याग करवा योग्य
३ पापानुबंधि पाप-सुख' नथी अने 'नथी-,,   ,,
४ पुन्यानुबंधि पाप-सुख' नथी अने 'छे ,, आदरवा योग्य

जीवोमां कर्मनुं जे आववुं ते द्रव्य आश्रव, अने कर्म आववा-मां कारण रूप जे जीवनो रागद्वेषयुक्त परिणाम ते भाव आश्रव, अने ए आश्रवनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते आश्रव तत्त्व कहेवाय. अहिं " आश्रव " ए शब्दनो अर्थ " आववुं " थाय छे. आ आश्रव तत्त्वमां पुन्यतत्त्व अने पाप तत्त्वनो पण समावेश थइ शके छे. कारणके शुभ कर्मनुं आववुं ते शुभाश्रव एज पुन्य, अने अशुभ कर्मनुं आववुं ते अशुभाश्रव एज पाप कहेवाय छे. ए प्रमाणे बे तत्त्वनो समावेश करवाथी सर्व तत्त्व सात छे एम पण शास्त्रोमां कहेलुं छे. ५

जीवमां आवतां कर्मोनुं जे रोकावुं (संवर-रोकावुं, अटकवुं ए अर्थथी) ते द्रव्य संवर, अने आवतां कर्मोने रोकवामां कारणरूप जे जीवनो शुद्ध अध्यवसाय (भाव-परिणाम) ते भाव संवर, अने ए संवरनुं जे लक्षण भेदादि स्वरूप ते संवरतत्त्व कहेवाय. ६

कर्मोनो जे देशथी (अल्पांशे) क्षय थवो ते द्रव्यनिर्जरा, अने कर्मोनो देशथी क्षय करवामां कारणरूप जीवनो जे विशुद्ध अध्यवसाय ते भाव निर्जरा. अथवा सम्यग्दृष्टि जीवनी (सर्वज्ञ-कथित तत्त्वज्ञान पर संपूर्ण प्रतीति-श्रद्धावाळा जीवनी) जे निर्जरा ते सकाम निर्जरा, अने मिथ्यादृष्टि जीवनी (सर्वज्ञ कथित तत्त्वज्ञान पर अल्पांशे पण अप्रतीतिवाळा जीवनी) जे निर्जरा ते अकाम निर्जरा. अहिं चालु प्रकरणमां सकाम निर्जरा ज निर्जरा तरीके गणवी योग्य छे. कारण के

वादितत्त्व पण अजीवस्वरूप होवाथी ज्ञेय केम न गणाय ? अथवा संवरादितत्त्वो जो जीवस्वरूप छे तो जीवतत्त्व उपादेय केम न गणाय ? अने आश्रवादितत्त्वो जो अजीव स्वरूप छे तो अजीवतत्त्व हेय केम न गणाय ?

उत्तर—अहिं हेय ज्ञेयादि विवेचनमां मुख्यताये नवतत्त्वोनी विवक्षा करेली होवाथी स्वतत्त्वनी मुख्यताये जीवतत्त्व ते आत्मा ज जाणवो. अने अजीवतत्त्व ते धर्मास्तिकायादिक (आगळ कहेवाता) १४ भेद जाणवा, परन्तु आश्रवादिरूप विकारोनी मुख्यताए ए बे तत्त्वो अहिं ग्रहण न करवां, जेथी ए बे तत्त्वो ज्ञेय मात्र ज छे.

बे अथवा सात तत्त्व.

चालु प्रकरणमां जो के तत्त्वो नव कहेल छे, परन्तु संवर निर्जरा अने मोक्ष ए त्रण तत्त्वने जीवस्वरूप (प्रथम कह्या प्रमाणे) गणवाथी अने पुण्य, पाप, आश्रव अने बंध ए चार तत्त्वो प्रथम कह्या प्रमाणे अजीव स्वरूप गणवाथी मुख्यत्वे जीव अने अजीव ए बेज तत्त्व गणी शकाय. अथवा प्रथम कही गया मुजब पुण्य अने पापने आश्रवतत्त्वमां अंतर्गत गणतां जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध अने मोक्ष ए प्रमाणे (तत्त्वार्थ सूत्रमां कह्या प्रमाणे) सात तत्त्व पण गणी शकाय, वली नवतत्त्वोनी उत्पाद, स्थिति, अने व्यय स्वरूपसत्पणानी विवक्षाये सत्स्वरूप एकतत्त्व पण कही शकाय, तेम पांचतत्त्वो पण विवक्षा भेदे कही शकाय छे. परन्तु चालु विवेचन नवतत्त्वने अंगेज छे एम जाणवुं.

नवतत्त्वक्रम हेतुविचार,

सकलतत्त्वनो विचारकरनार-समजनार अजीव पुद्गलादिद्र-

त्योनी ग्रहणादि क्रिया करनार, पुण्य–पाप–आश्रव–संवर–बन्ध–निर्जरा–अने मोक्षतत्त्वनी क्रियाओमां प्रवृत्ति करनार जीवज छे, तेमज जीव विना तेना विरोधी अजीवनी तथा पुण्यादितत्त्वोनी उपपत्ति पण थइ शके नहीं माटे प्रथम जीवतत्त्व कह्युं. जीवोना ते ते भेदोनी व्यवस्था तथा परभवमां गमनागमन विगेरे धर्मास्तिकायादि अजीवतत्त्व सिवाय थाय नहीं माटे बीजुं अजीवतत्त्व. ते अजीवना कर्मस्वरूप विकारोज पुण्य पाप छे, तेमां पण प्रशस्त होवाथी त्रीजुं पुण्यतत्त्व अने चोथुं पापतत्त्व. ते बन्नेनुं शुभाशुभ आश्रव विना ग्रहण थइ शके नहीं माटे पांचमुं आश्रवतत्त्व. ज्यारे आश्रवथी कर्म आवे छे त्यारे तेने रोकनार तत्त्व होवुं जोइये माटे छठ्ठुं संवरतत्त्व. जेम संवरथी नवां आवतां कर्मो अटके छे तेम जुना कर्मोने क्षयकरनार तत्त्व पण होवुं जोइए माटे सातमुं निर्जरातत्त्व कह्युं. आश्रवथी आवेलां कर्मो जीवनी साथे सूचिकलापनादृष्टान्ते बद्धस्पृष्टादि अवस्थाये संबद्ध थया सिवाय फळ आपी शके नहीं. तेमज निर्जराथी जीवसंबद्ध जुनां कर्म ज्यारे वियुक्त थाय छे त्यारे तेनुं विरोधी जीव साथे कर्मोने संयुक्त करनार तत्त्व पण कहेवुं जोइए माटे आठमुं बन्धतत्त्व कह्युं. ज्यारे जीवनी साथे कर्मोनो संबंध थाय छे त्यारे तेनो सर्वथा मोक्ष पण होवो जोइए. वळी ते (मोक्ष) सर्वोत्कृष्ट होवाथी अने तेने ज माटे सर्व ग्रन्थनी प्रवृत्ति होवाथी सर्व ग्रन्थना निःस्पन्द(सार) रूप नवमुं मोक्ष तत्त्व कह्युं.

प्रथम गाथानुं रहस्य.

आ प्रथम गाथाये करी शिष्टाचारने पाळवा माटे निर्विघ्नपणे ग्रन्थनी समाप्ति थाय ते माटे वस्तुस्वरूपसंकीर्तन' रूप मंगलाचरण १, तथा श्रोतृप्रवृत्तिना हेतुरूप ग्रन्थनुं अभिधेय २, तथा नवतत्त्वनुं ज्ञान मे-

१–२ धर्मां नमस्कार, आशीर्वाद, अने वस्तुसंकीर्तन, ए

ल्पयुं ते अने परंपराए मोक्षरूप फळ ३, वली अभिधेय अने ग्रन्थनो वाच्य वाचक भाव संबन्ध ४. तथा नवतत्त्वनो जिज्ञासु आत्मा अधिकारी ५, ए प्रमाणे मंगल तथा [3]अनुबन्धचतुष्टयनुं वर्णन कर्युं, जेथी मोक्षाभिलाषी जीवोने आ ग्रन्थनी आदरयोग्यता प्रदर्शित करी.

अवतरण—पूर्व गाथामां ९ तत्त्वनां नाम कहीने हवे आ गाथामां कया तत्त्वना केटला भेद छे ? ते दर्शावे छे.

मूळगाथा २ जी.

चउदस चउदस बाया–लीसा बासी अ हुंति बायाला
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ॥२॥

संस्कृतानुवादः

चतुर्दश चतुर्दश द्विचत्वारिंशत्, द्व्यशीतिश्च भवंति द्विचत्वारिंशत् ॥
सप्तपंचाशत् द्वादश, चतुर्नवभेदाः क्रमेणैषां ॥२॥

शब्दार्थः

चउदस–चौद.	बारस–बार.
बायालीसा–बेंतालीश.	चउ–चार.
बासी–ब्याशी.	नव–नव.
हुंति–छे.	भेया–भेद.
बायाला–बेंतालीश.	कमेण–अनुक्रमे.
सत्तावन्नं–सत्तावन.	एसिं–ए ९ तत्त्वोना.

३ प्रकारनां मंगलाचरणमांथी त्रीजुं वस्तुस्वरूपसंकीर्तन नामनुं मंगलाचरण कह्युं छे. तथा नवतत्त्वोनां नाम कहेवाथी अभिधेय, " *नायव्वा* " ए पदथी प्रयोजन, अने अर्थापत्तिथी संबंध, तथा अधिकारी, ए प्रमाणे अनुबंध चतुष्टय कहेलुं जाणवुं.

गाथार्थ—ए ९ तत्त्वोमां अनुक्रमे जीवना १४, अजीवना ४, पुण्यना ४२, पापना ८२, आश्रवना ४२, संवरना ५७, निर्जराना १२, बंधना ४, अने मोक्षतत्त्वना ९ ए प्रमाणे (सर्व मळी २७६) भेद छे.

विस्तरार्थः—गाथामां कहेला सर्व मळी २७६ भेद ते ते तत्त्वना विवेचन प्रसंगे कहेवाशे. तथा प्रथम गाथाना अर्थमां दर्शाविल जीव, अजीव, रूपी, अरूपी, हेय, ज्ञेय, ने उपादेय ए सात विभागमां कया तत्त्वना केटला केटला भेद प्राप्त थाय छे तेनो संक्षेप गाथा अने यंत्रद्वारा दर्शावाय छे.

"धम्माऽधम्माऽगासा, तिय तिय भेया अजीव दसगा य ॥
सत्तावन्नं संवर, निज्जर दुदस मुत्ति नवगा य ॥ १ ॥
अट्ठासि अरूवि इवर, संपइ उ भणामि सेव रूवीणं ॥
परमाणु देस पएसा, खंध चउ अजीवरूवीणं ॥ २ ॥
जीवे दसचउ दुचऊ, यासी बायाल हुंति चत्तारी ॥
सय अट्ठासी रूवी, दुसय छसत्त नवतत्ते ॥ ३ ॥"

गाथार्थः—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, अने आकाशास्तिकाय तेना [1]त्रण त्रण भेदो एटले के नव भेदो, तथा अद्धा एटले काळ ए अजीवना १० भेदो, तथा ५७ भेद संवरना, निर्जराना १२ भेद, मोक्षतत्त्वना ९ भेद, ॥१॥ ए ८८ भेदो अरूपी होय छे, हवे नियमथी रूपीना भेदो कहुंछुं, परमाणु, देश, प्रदेश अने स्कन्ध ए चार पुद्गलना भेदो रूपी अजीवना ॥२॥ तथा [2]जीवना १४ भेद, पुण्यतत्त्वना ४२, पापतत्त्वना ८२, आश्रवना ४२, बंधतत्त्वना ४, ए

१ धर्मास्तिकाय १, देश २, प्रदेश ३, ए प्रमाणे अधर्म० देश, २ प्रदेश ३, आकाश० १, देश २, प्रदेश ३.
२ संसारी जीव सर्वदा कर्मयुक्त होवाथी.

सर्व मळी १८८ रूपीना भेदो जाणवा. रूपी तथा अरूपीना मळीने नवतत्त्वना २७६ भेदो थया ॥३॥

तत्त्वना.	२७६ भेदमां.		२७६ भेदमां.		२७६ भेदमां.		
	जीव	अजीव.	रूपी	अरूपी.	हेय.	ज्ञेय.	उपादेय.
जीवतत्त्वना.	१४	०	१४	०	०	१४	०
अजीवतत्त्वना.	०	१४	४	१०	०	१४	०
पुण्यतत्त्वना.	०	४२	४२	०	०	०	४२
पापतत्त्वना.	०	८२	८२	०	८२	०	०
आश्रवतत्त्वना.	०	४२	४२	०	४२	०	०
संवरतत्त्वना.	५७	०	०	५७	०	०	५७
निर्ज्जरातत्त्वना.	१२	०	०	१२	०	०	१२
बंधतत्त्वना.	०	४	४	०	४	०	०
मोक्ष तत्त्वना.	९	०	०	९	०	०	९
	९२	१८४	१८८	८८	१२८	२८	१२०

॥ अथ प्रथमं जीवतत्त्वम् ॥

अवतरण—पूर्वगाथामां सामान्यथी नवतत्त्वनी भेद संख्या

कहीने हवे आ गाथामां जुदी जुदी अपेक्षाएमथम जीवतत्त्वना भिन्न भिन्न भेद (आगल ४ थी गाथामां कहेवाना १४ भेदथी) जुदे प्रकारे कहेवाय छे.

मूलगाथा ३ जी

एगविह दुविह तिविहा, चउव्विहा पंचछव्विहा जीवा॥
चेयण तसइयरेहिं, वेय-गई-करण-काएहिं ॥ ३ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकविधद्विविधत्रिविधा, श्चतुर्विधाः पंचषड्विधा जीवाः॥
चेतनत्रसेतरै-र्वेदगतिकरणकायैः ॥ ३ ॥

शब्दार्थः

एगविह–एक प्रकारना	चेयण–चेतन(ए एकज भेद वडे)
दुविह–बे प्रकारना	तस–त्रस (अने.)
तिविहा–त्रण प्रकारना	इयरेहिं–स्थावर वडे
चउव्विहा–चार प्रकारना	वेय–वेद(ना भेद वडे)
पंच (विहा)–पांच प्रकारना	गइ–गति(ना भेद वडे)
छव्विहा–छ प्रकारना	करण–इन्द्रिय(ना भेद वडे)
जीवा–जीवो	काएहिं–काय (ना भेद वडे)

गाथार्थ–सर्वे जीवो चेतन (चैतन्य लक्षण युक्त) होवाथी एकज प्रकारना छे, अथवा (आ जीवतत्त्वमां सर्वत्र संसारी जीवोनो विचार करेल होवाथी सिद्ध जीव सिवायना) सर्वे जीवो त्रस अने स्थावर ए बे भेदमां अंतर्गत होवाथी २ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवोनो त्रण वेदमां समावेश थतो होवाथी ३ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवो गतिना चार भेदमां अंतर्गत होवाथी ४ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवो इन्द्रियोना ५ भेदमां अंतर्गत होवाथी ५ प्रकारना छे, अथवा सर्वे जीवनो छ कायमां समावेश थतो

होवाथी जीवो ६ प्रकारना पण छे.

विस्तरार्थः--सर्व जीवो चैतन्य लक्षण युक्त होवाथी (चैतन्य लक्षण रूप भेदवडे सर्व जीवो) एकज प्रकारना छे, परन्तु केटलाएक जीवो चैतन्य लक्षणयुक्त अने केटलाएक जीवो चैतन्य लक्षण रहित एम बे प्रकारना जीवो नथी, माटे सर्व जीवो चैतन्य लक्षणवडे एकज प्रकारना छे. लब्धिअपर्याप्ता सूक्ष्मैकेन्द्रिय जेवा जघन्य जीवोमां पण ज्ञान मात्रा अनन्तमा भाग जेटली सदाकाळ होयज छे. जेनुं स्वरूप आगळ कहेवाशे.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो त्रस (त्रास-भय पामी एक स्थानथी बीजे स्थाने गमन करनार) छे, अने केटलाएक जीवो स्थावर (भय पामीने पण स्थानान्तर जवाने अशक्त) छे, अहिं अग्नि अने वायु गतिवडे त्रस छे पण वास्तविक रीते स्थावरछे ए हेतुथी संसारी जीवो त्रस अने स्थावर एम बे प्रकारना पण गणी शकाय छे.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक पुरुषवेद (स्त्री उपर अभिलाष) वाळा, केटलाएक जीवो स्त्रीवेद वाळा (पुरुष उपर अभिलाष वाळा), अने केटलाएक जीवो नपुंसकवेदवाळा (स्त्री अने पुरुष ए बन्ने उपर अभिलाषवाळा) होवाथी संसारी जीवो पुरुषवेदी, स्त्रीवेदी, अने नपुंसकवेदी एम त्रण प्रकारना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक देव, केटलाएक मनुष्य, केटलाएक तिर्यंच, अने केटलाएक नारक होवाथी गतिभेदे (देवादिक गतिना भेदवडे) संसारी जीवो चार प्रकारना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो मात्र एक स्पर्श इन्द्रियवाळा, केटलाएक स्पर्श अने जीव्हा ए बे इन्द्रियवाळा, केटलाएक स्पर्श-जीव्हा-अने नाक ए त्रण इन्द्रियोवाळा, केटलाएक स्पर्श-जीव्हा-नाक अने चक्षु ए चार इन्द्रियवाळा, अने केटलाएक जीवो

स्पर्श-जीव्हा-नाक-चक्षु–अने कान ए पांच इन्द्रियो वाळा पण छे, ए हेतुथी संसारीजीवो एकेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय-अने पंचेन्द्रिय एम पांच प्रकारना पण गणी शकाय.

अथवा संसारी जीवोमां केटलाएक जीवो पृथ्वीकाय (पृथ्वी रूप देहने धारण करनारा) छे, केटलाएक अपकाय (जळ–पाणी रूप देहने धारण करनारा), केटलाएक तैजस् (अग्नि रूप शरीरने धारण करनारा), केटलाएक वायुकाय (वायु–हवारूप देहवाळा) केटलाएक वनस्पतिकाय (वनस्पति रूप देहवाळा), अने केटलाएक जीवो त्रसकाय (त्रसनामकर्मना उदयथी गमन शक्तिवाळी देहने धारण करनारा) होवाथी जीवो छ प्रकारना पण गणी शकाय.

शिष्य—बीजी गाथामां कहेला उद्देश प्रमाणे जीवना १४ भेद दर्शाववाने बदले आ विविध रीते जीवना ६ भेद दर्शाव्या ते शुं?

गुरु—हे जिज्ञासु! जीवना जे १४ भेद सामान्यथी बीजी गाथामां कह्या छे ते आगळनी ४थी गाथामां विशेषतः कहेवाशे, परन्तु अहि तो प्रसंगोपात्त जुदी रीते ६ भेद दर्शाव्या छे. वळी आ गाथामां दर्शाव्या प्रमाणे जीवो जुदी जुदी रीते ६ प्रकारना छे एटलुंज नहि परन्तु एथी पण अधिक सात प्रकारना, आठ प्रकारना, नव प्रकारना इत्यादि अनेक प्रकारना छे. ते प्रकारनादि सिद्धांतथी जाणवा योग्य छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां जुदा प्रकारे जीवभेद कहीने हवे आ गाथामां (बीजी गाथाना उद्देश प्रमाणे) जीवना १४ भेद कहे छे.

मूल गाथा ४ थी.

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नियरपणिंदिया य सबितिचउ॥
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ॥४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकेन्द्रियाः सूक्ष्मेतराः, संज्ञीतरपंचेन्द्रियाश्च सद्वित्रिचतुः ॥
अपर्याप्ताः पर्याप्ताः, क्रमेण चतुर्दश जीवस्थानानि ॥४॥

शब्दार्थ.

एगिंदिय–एकेन्द्रिय जीवो.	बि–द्वीन्द्रिय.
सुहुम–सूक्ष्म.	ति–त्रीन्द्रिय.
[1]इयरा–बादर.	चउ–चतुरिन्द्रिय.
सन्नि–संज्ञिपंचेन्द्रिय.	अपज्जत्ता–अपर्याप्ता.
[2]इयर–असंज्ञिपंचेन्द्रिय.	पज्जत्ता–पर्याप्ता.
(पणिंदिया–पंचेन्द्रिय)	कमेण–अनुक्रमे.
य–अने, तथा.	चउदस–चौद.
स–सहित.	जियट्ठाणा–जीवना भेद.

गाथार्थः—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, तथा द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रिय सहित संज्ञिपंचेन्द्रिय, तथा असंज्ञि पंचेन्द्रिय ए साते अपर्याप्ता अने साते पर्याप्ता गणतां अनुक्रमे १४ जीवभेद थाय.

१-२ चोथी गाथामां " इयरेहिं " शब्दनो अर्थ " इत्यादि वडे " कहेल छे अने आ गाथामां इयरा तथा इयरना अर्थ जुदा जुदा कर्या तेनुं कारण ए छे के—

इयर-इतर शब्द जे शब्दने जोडायलो होय ते शब्दनो विपरीत अर्थ थाय छे, जेमके सूक्ष्मनुं इतर बादर, स्थावरनुं इतर त्रस, संज्ञिनुं इतर असंज्ञि पर्याप्तनुं इतर अपर्याप्त, अने लघुनुं इतर गुरु इत्यादि रीते इयर-इतर शब्दनो अर्थ प्रतिपक्ष (विपरीत) करवो.

विस्तरार्थः—गाथामां कहेला जीवना १४ भेदनो अनुक्रम
मनुसने १४ भेद) आ प्रमाणे छे.

अपर्याप्ता सूक्ष्म एकेन्द्रिय.	८ पर्याप्ता त्रीन्द्रिय.
पर्याप्ता सूक्ष्म एकेन्द्रिय.	९ अपर्याप्ता चतुरिन्द्रिय.
अपर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय.	१० पर्याप्ता चतुरिन्द्रिय.
पर्याप्ता बादर एकेन्द्रिय.	११ अपर्याप्ता असंज्ञि पंचेन्द्रिय.
अपर्याप्ता द्वीन्द्रिय.	१२ पर्याप्ता असंज्ञि पंचेन्द्रिय.
पर्याप्ता द्वीन्द्रिय.	१३ अपर्याप्ता संज्ञि पंचेन्द्रिय.
अपर्याप्ता त्रीन्द्रिय.	१४ पर्याप्ता संज्ञि पंचेन्द्रिय.

उपर कहेला १४ भेदमां सर्व संसारी जीवोनो समावेश थइ श-
: छे, अर्थात् ए १४ भेदथी व्यतिरिक्त (भिन्न-जुदो) कोइपण सं-
सारवर्ती जीव नथी. ए १४ भेदमां जे जीवो (६ ही गाथामां कहे-
ाशे तेवा स्वरूपवाळी) स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विना मरण
ामे ते अपर्याप्ता,अने स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे
ते पर्याप्ता जीवो कहेवाय छे. सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकनुं स्वरूप अन्य
स्थले विस्तृत छे तोपण अति संक्षेपथी कहेवाय छे. आ सिवाय
जीवोना पण ३२–५६३ विगेरे भेदो थाय छे जे परिशिष्टथी देखवा.

जे एकेन्द्रिय जीवो (अर्थात् एकेन्द्रियजीवोनां शरीर) घणां एक-
त्र थया छतां पण चक्षुगोचर (दृष्टिगोचर) अथवा कोइपण इ
न्द्रियने ग्राह्य (इन्द्रिय गोचर) न थइ शके तेवा सूक्ष्मनामकर्मना-
उदयवाळा एकेन्द्रिय जीवो सूक्ष्मएकेन्द्रिय कहेवाय छे. आ जीवो
चौद राजप्रमाण लोकमां (आखा जगतमां) सर्वत्र रहेला छे. अर्था-
त् सकल विश्वमां एवी कोइ पण जग्या नथी के ज्यां सूक्ष्म एके-
न्द्रियो न रह्या होय. ए जीवो सूक्ष्म होवाथी कोइ पण इन्द्रिय द्वा-
रा जाणी शकाता नथी, परन्तु सर्वज्ञोक्त सिद्धांतोमां तेओनुं अस्ति-
त्व (विद्यमानता) कहेल होवाथी आपणे मानवा योग्य छे के जगत-

मां एवा प्रकारना पण [1]असंख्य तथा [2]अनंत सूक्ष्म जंतुओ रहेला छे. वळी सूक्ष्मदर्शक यंत्रथी जोवा इच्छीए तोपण ते देखी शकाय नहिं कारणके हवा बादर (एटले इन्द्रिय गोचर) होवे छते पण जमे तेवा सूक्ष्मदर्शकथी जोइ शकाय नहिं तो ते सूक्ष्मदर्शक यंत्रथी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जंतुओ केवी रीते देखी शकाय ? वळी ए सूक्ष्म एकेन्द्रियमां सूक्ष्म पृथ्वीना जंतुओ (सू० पृथ्वीकाय) असंख्य छे, तेमज सूक्ष्म अप्कायादि (पाणी अग्नि अने वायुना) जीवो पण असंख्य छे. परन्तु सूक्ष्म वनस्पति जंतुओ तो आ जगतमां तेथी पण अधिक एटले अनंत छे. कारणके अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायनुं एक शरीर जेने सूक्ष्म साधारणशरीर या सूक्ष्म निगोद अथवा सूक्ष्म अनन्तकाय कहे छे तेवी असंख्यात निगोदोनो एक गोलक (गोळो) बने छे तेवा असंख्यात गोलको (गोळाओ) चौदराज लोकनी अंदर छे.

तथा जे पृथ्वी--जळ--अग्नि--अने वनस्पति दृष्टि स्पर्शनादि इन्द्रिय गोचर थाय छे अने जे हवा स्पर्शगोचर थाय छे ते पृथ्वी वगेरे सर्वे बादर एटले स्थूळ छे, अने ए पृथ्वी--जळ--अग्नि--हवा अने वनस्पति सर्वे जीव युक्त छे, माटे ए पृथ्वी विगेरे जीवो बादर एकेन्द्रिय कहेवाय छे. बादर वनस्पतिकायमां केटलाक साधारण शरीरी छे, जेवां के जमीनकंद, आदु, मूळा, शेवाळ विगेरे. केटलाक प्रत्येक शरीरी छे, जेवा के आम्र, निंब, फळ, फुल विगेरे.

तथा शंख-कोडी-जळो-अळसीयां-पूरा-कृमी इत्यादि द्वीन्द्रि-

[1] सूक्ष्म पृथ्वी अप्-तेउ-वायुकाय ए चारनो अंतर्भाव.
[2] सूक्ष्मसाधारण वनस्पतिकाय (सूक्ष्मनिगोद)नो अंतर्भाव.
[3] एक शरीरमां अनन्तजीवो होय ते साधारण शरीरी, के जेओ साथेज रीते उत्पत्ति आहारादि करनारा छे.
[4] एक शरीरमां एक एक जीव अलग अलग होय ते प्रत्येक शरीरी.

जीवो छे, अने ते मात्र बादर ज होवाथी सूक्ष्म द्वीन्द्रिय अने दर द्वीन्द्रिय एवा बे भेदवाळा नथी, एज प्रमाणे आगळ श्रीन्द्रि- द्रि जीवो पण सर्वे एक बादर भेदवाळाज छे परन्तु सूक्ष्म नथी.

शिष्य—द्वीन्द्रियादि जीवो बादर ज होय छे, एम केम कहेवाय? रणके ए जीवो एवा सूक्ष्म पण होय छे के ये चक्षुथी देखी श- ाता नथी, पण सूक्ष्मदर्शक यंत्रनी मददथी देखी शकाय छे, वळी ीपण बधु सूक्ष्म होवानो संभवछे के जेओ सूक्ष्मदर्शकनी मददथी ग देखी शकाय नहिं, तो तेवा अतिबारीक द्वीन्द्रियादि जंतुओनो भव होवाथी द्वीन्द्रियादि जीवो सूक्ष्म पण केम न कहेवाय!

गुरु–हे जिज्ञासु? तेवा अतिबारीक जंतुओ लोकव्यवहारमां ले सूक्ष्म कहेवाय, परन्तु वास्तविक रीते तो सूक्ष्मनामकर्मना उदय ाळा अने जे अनेक जंतुओनां देहपुद्गलो एकत्र पिंडित थया छ- ां पण न देखी शकाय ते जीवो सूक्ष्म गणी शकाय छे. अने द्वीन्द्रि- ादि जीवो तो एवा छे के तेओनां देहपुद्गलोने घणा प्रमाणमां ए- त्र पिंडित करतां अवश्य चक्षुआदि इन्द्रियने ग्राह्य थइ शके छे माटे ावा जीवो अत्रे सूक्ष्म तरीके गणी शकाश नथी.

तथा गधइया-घनेरीयां-घेळ-मांकड-जू-कुंथुआ-कीडी-मकोडा- ीमेल इत्यादि श्रीन्द्रिय जीवो छे

तथा भ्रमर-विच्छु-बगाइ-करोळीआ-कंसारी-तीड-इत्यादि च- ुरिन्द्रिय जीवो छे.

तथा मातपितानां संयोग विना जळादिक सामग्रीथी एकाएक उत्पन्न थनारा देडका-सर्प-मच्छ इत्यादि तिर्यंच पंचेन्द्रियो, अने म- नुष्यना मळमूत्रादि (१४) अशुचि पदार्थोमां उत्पन्न थता समु- च्छिम मनुष्यो सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय कहेवाय छे, पुनः ए समूर्च्छिम

जीवो मन तथा प्रकारना विशेष मनोविज्ञान रूप संज्ञा रहित होय छे माटे असंज्ञि पंचेन्द्रिय कहेवाय छे.

तथा जे जीवो मातपिताना संयोगवडे गर्भाशयमां उत्पन्न थाय छे ते गर्भज पंचेन्द्रिय जीवो (पर्याप्तावस्थामां) अवश्य मनोविज्ञान सहित होय छे माटे ए जीवो संज्ञिपंचेन्द्रिय कहेवाय छे. ए प्रमाणे जीवभेदनुं कंइक स्वरूप स्थानशून्य नहि रहेवा माटे कह्युं, विशेष स्वरूप तो जीवविचारथी अथवा बीजा ग्रंथोथी जाणवा योग्य छे.

अवतरण—पूर्वगाथामां जीवना १४ भेद कहीने हवे आ गाथामां जीवनुं लक्षण शुं ? ते कहे छे.

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ ५॥

(संस्कृतानुवादः)

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा ॥
वीर्यमुपयोगश्च—एतज्जीवस्य लक्षणम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थः

नाणं—ज्ञान	तहा—तथा
च—अने (वा पादपूरणार्थे)	वीरियं—वीर्य
दंसणं—दर्शन	उवओगो—उपयोग
चेव—निश्चय	य—अने (वा पादपूरणार्थे)
चरित्तं—चारित्र	एयं—ए
च—अने (वा पादपूरणार्थे)	जीवस्स—जीवनुं
तवो—तप	लक्खणं—लक्षण, चिन्ह

गाथार्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, अने उपयोग ए जीवनां ६ लक्षण¹ छे.

विस्तरार्थः—हवे नवतत्त्वमां प्रथम जीवतत्त्वना वर्णनमां जीव १४ प्रकारना छे एम कयुं, परन्तु जीव एटले शुं ? अने जीवनां लक्षण–चिन्ह शुं ? ते आ गाथामां दर्शावाय छे. त्यां प्रथम ज्ञान ए जीवनुं लक्षण–चिन्ह छे, तेमज दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य अने उपयोग ए ६ जीवनां चिन्ह छे, अर्थात् ए ६ गुण जे पदार्थमां होय ते पदार्थ "जीव" कहेवाय छे. हवे ए ६ गुण नुं (जीवना चिन्हनुं) स्वरूप, तथा कया जीवोने केवी रीते होय छे ? ते कहेवाय छे.

---

१ जेनाथी वस्तु जणाय (" लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम् " " असाधारण धर्मो लक्षणम् ") तेवो असाधारण (ते वस्तुथी अन्यमां नही रहेनारो) जे धर्म ते लक्षण कहेवाय. लक्षणनुं इतरभेद ज्ञान ए फळ छे. लक्षण अव्याप्ति-अतिव्याप्ति-असंभव ए त्रण दोष रहित होवुं जोइए तोज ते सद्लक्षण कहेवाय. जे वस्तुनुं लक्षण अभिप्रेत होय ते वस्तुना अमुक अंशमां न रहेवुं ते अव्याप्ति, लक्ष्यथी अधिकमां रहेवुं ते अतिव्याप्ति. लक्ष्य मात्रमां न रहेवुं ते असंभव, जेम गायनुं 'कपिलत्व' अव्याप्ति दोषयुक्त छे, 'शृङ्गित्व' अतिव्याप्ति दोष दुष्ट छे 'एकशफत्व' असंभव दोषयुक्त छे अने 'सास्नावत्व' ए सद्लक्षण छे. सामान्य ज्ञानिओने अतीन्द्रिय पदार्थना ज्ञानने माटे अनुमाननी जरुर छे. जेम पर्वतमां वह्निज्ञान धूमहेतुथी महानस (रसोडा)ना दृष्टान्ते थाय छे, तेम पुद्गलथी भाषण करनारा घटादिगुणना दृष्टान्ते ज्ञानादि गुणो आधारवाळा होवाथी तेना (ज्ञानादिना) आधारपणे आत्मा (जीव) नी सिद्धि थाय छे. " ज्ञानादयो द्रव्याश्रिताः गुणत्वाद्रूपवत् " " न रूपादिभूताश्रिताः अपि नैव तेषामनुपलभ्यमानत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा रूपादिरित्यादि " " भूतादिव्यतिरिक्त(जीव)द्रव्याश्रिता भूताद्यनाश्रितत्वे सति साश्रितत्वात्, यन्नैवं तन्नैवम्.

जगत्‌ना सर्व पदार्थो सामान्य धर्म ([1]आ कंइक छे, अथवा [2] आ घट छे, आ पट छे इत्यादि सामान्य बोधक धर्म) अने विशेषधर्म (आ [3] अमुक छे, अथवा आ घट वा पट अमुक वर्णनो, अमुक स्थाननो, अमुक कर्त्ता नो इत्यादि विशेषबोधक धर्म) युक्त छे. तेमां पदार्थोना सामान्य धर्मनो अवबोध (ज्ञान) ते दर्शन, अने विशेष धर्मनो अवबोध ते ज्ञान कहेवाय छे. अथवा जीवनो सामान्य (वस्तुना सामान्य–साधारण धर्म संबंधि) उपयोग ते दर्शन, अने विशेष उपयोग ते ज्ञान. अथवा [4]निराकार उपयोग ते दर्शन, अने [5]साकार उपयोग ते ज्ञान, ए सर्व अर्थ परस्पर सरखा अर्थवाळा छे. ए प्रमाणे दर्शनगुण अने ज्ञानगुण ए जीवना मुख्यधर्म मुख्यलक्षण अथवा मुख्य चिन्ह छे, कारणके जीव सिवाय बीजा कोइ पदार्थमां थोडे अंशे वा घणे अंशे विज्ञानशक्ति लेश पण होती नथी, अने विज्ञानशक्ति वडेज आ जीव छे एम ओळखाय छे. आ दर्शन गुण अने ज्ञान गुण अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रियथी मांडीने पर्याप्त संज्ञि पंचेन्द्रिय सुधीना सर्व जीवभेदमां थोडे घणे अंशे होय छे, पुनः पृथ्वी जळ–अग्नि इत्यादि

१ ए नैश्चयिक अर्थावग्रहनी मुख्यताए दर्शन ते निराकार उपयोगमां गणाय छे, उपलक्षणथी नैश्चयिक इहा तथा व्यंजनावग्रह पण दर्शनरूप ज छे.

२ "आ घट छे" ए ज्ञाके नैश्चयिक अपाय होवाथी ज्ञानरूप छे परन्तु व्यवहारिक अर्थावग्रहनी मुख्यताए दर्शनरूप छे.

३ "आ अमुक छे" ए नैश्चयिक अपायनी मुख्यताए ज्ञानरूप छे, अन्यथा दर्शनरूप तो गणेल ज छे.

४ निराकार एटले सामान्य. ५ साकार एटले विशेष (आकार सहित.)

एकेन्द्रिय जीवोमां विज्ञान शक्ति नहिं जणाती होवाथी तेओमां विज्ञान शक्ति बिलकुल नथी एम न कही शकाय, कारणके [1]औषधी प्रयोगवडे बेशुद्ध–बेभान थएला मनुष्योमां जेम [2]अव्यक्त चैतन्य (विज्ञान शक्ति) विद्यमान छे, तेम एकेन्द्रियमां पण अव्यक्त चैतन्य विद्यमान छे. ए प्रमाणे एकेन्द्रिय जीवोनी विज्ञानशक्ति अव्यक्त अने अल्प होवाथी बीजा जीवोनी माफक प्रत्यक्ष अनुभवमां आवी शकती नथी, पण श्री सर्वज्ञोए अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद सरखा जीवने पण अक्षरनो (ज्ञाननो) अनंतमो भाग उघाडो कह्यो छे, अने एटलो [3]निकृष्ट ज्ञानांश पण जो ते जीवने न होय तो ते जीव नहिं पण अजीव सरखोज गणाय. ए रीते अ सर्वज्ञ संसारी जीवोने दर्शनगुण अने ज्ञानगुण कोइने व्यक्त तो कोइने अव्यक्त कोइने अल्प तो कोइने अधिक पण होय छे, अने सर्वज्ञने तो ज्ञान गुण दर्शन गुण बन्ने सर्वांशे संपूर्ण होय छे. पुनः असर्वज्ञ जीवोने [4]प्रथम दर्शन (एटले सामान्य उपयोग) अने पछी ज्ञान (एटले विशेष उपयोग) होय छे, अने सर्वज्ञने तो प्रथम समये ज्ञान बीजे समये दर्शन त्रीजे समये ज्ञान अने चोथे समये दर्शन ए प्रमाणे प्रथम ज्ञान पछी दर्शन अनुक्रमे परावर्त्तमान पाम्या करे छे. पुनः असर्वज्ञ जीवोनुं ज्ञान अथवा दर्शन अन्तर्मुहूर्त्त (बे घडीनी अंदरना काळ) प्रमाण होय छे, अने स-

---

१ दरदीने शस्त्रप्रयोग मध्यमायलां औषधीना प्रयोगथी बेशुद्ध करवो पडे छे. जे प्रयोग जगप्रसिद्ध छे.

२ बीजाने अनुभवमां न आवी शके तेवी रीते अप्रगट.

३ अति अल्प.

४ प्रथम एटले जे समये सर्वज्ञत्व (केवलज्ञान) प्राप्त थाय ते समये

वेदनुं ज्ञान दर्शन एकेक समयनुं होय छे. ए प्रमाणे जीवना मुख्य लक्षण ज्ञान अने दर्शननुं किंचित् स्वरूप कह्युं.

तथा ज्ञानादि गुणमां (ज्ञान–दर्शनमां) रमणता करवी ते चारित्र कहेवाय, अथवा मोहाधीन प्राणीओ मोह दूर करवाने माटे जे अभ्यास रूप यम नियमादि (व्रतादि) अंगिकार करे ते चारित्र कहेवाय. आ चारित्र गुण पण सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियादि सर्व जीवोने थोडे घणे अंशे होय छे, तेमां समोही छद्मस्थ जीवोने (मोहनी सत्तावाळा जीवोने)[1]अनंतमा अंश जेटलुं चारित्र होय छे, अने क्षीणमोही मुनिराजने, भवस्थ (देहधारी) केवली भगवंतने अने मोक्षमां पहोंचेला सिद्धपरमात्माओने सर्वोने संपूर्ण चारित्र होय छे. ए प्रमाणे [2] सर्वे जीवो चारित्र गुण युक्त होवाथी अने चारित्र गुण ते जीव सिवाय अन्य पदार्थमां नहिं होवाथी चारित्र ए जीवनुं लक्षण छे.

---

१ ए अनंतमो अंश पण जुदा जुदा जीवोनी अपेक्षाये घणी तारतम्यता वाळो [हीनाधिक) होय छे, जेमके सू० निगोदने प्रथम समये जे अव्यक्त चारित्र गुण वर्ते छे ते करतां अन्य सू० निगोद जीवनो चारित्रगुण अनंतगुण अधिक पण होय, अने सर्वोत्कृष्ट चारित्र तो क्षीणमोही मुनिराजने होय.

२ शंका–" सर्वे जीवो चारित्र गुणयुक्त छे " एम कहेवुं युक्त नथी. कारणके मिथ्यादृष्टि वगेरे जीवो अथवा सू० निगोदादि जीवो के जेओए देशविरति गुणस्थान प्राप्त कर्युं नथी तेवा (अनंतानुबंधि–अप्रत्याख्यानीरूप सर्व घाती कषायना उदयवाळा) जीवोने लेश मात्र पण चारित्र गुण संभवतो नथी. कारणके ए बे सर्वघाती कषायोदयवाळा जीवोने लेश पण

तथा इच्छानो अभाव ते तप कहेवाय छे, अथवा ते इच्छा निरोध करवाना [1]अभ्यासरूप [2]हेतुरूप अने [3]चिन्हरूप जे अनशनादि (उपवासादि) ते पण व्यवहारथी तप कहेवाय. ए तप गुण पण [4]सर्वज्ञने सर्वांशे संपूर्ण होय छे, अने [5]शेष जीवोने थोडे घणे अंशे होय छे.

चारित्र गुण होय नहिं, पुनः जे अनंतानुबंधि कषाय जीवना सम्यक्त्व गुणने पण रोकी राखे छे ते अनंतानुबंधिना उदयवाळा सू० निगोदादि मिथ्यादृष्टिओने चारित्र गुणनो लेश पण केम संभवे? पुनः सू० निगोदादि मिथ्यादृष्टि जीवोने पण जो लेश मात्र चारित्रगुण होय छे, तो देशविरति गुणस्थानवाळा श्रावकनेज देशथी (लेश) चारित्रनो उदय मानवो ते शा माटे? कारणके प्रथम गुणस्थानथी पांचमा गुणस्थान सुधीना सर्व जीवोने तमारा कहेवा प्रमाणे देश चारित्र गुण तो प्रगट थयेलोज छे.

उत्तरः—हे जिज्ञासु! ए शंका योग्य छे, परन्तु सर्वघाति कषायोदयवाळा जीवने पण चारित्रगुणना केटलाएक पर्याय उघाडा छे, जेम अति गाढ मेघावृत दिवसमां सूर्यनो प्रकाश किरणना रूपमां तो बिलकुल नथीज तोपण सर्वथा अंधकार नथी, परन्तु ते दिवस अति अल्प प्रकाशयुक्त छे, अने जो तेम पण न होय तो दिवस अने रात्रिनो भेद न पडे. अर्थात् दिवस रात्रि एक सरखी थाय. तेवी रीते श्रद्धापूर्वक कंइक व्रतादि अंगीकार करी शके तेवो चारित्र गुण तो ए जीवोमां नथी, परन्तु अव्यक्त अने अति अल्प क्रोधादिनी मंदतारूप चारित्र गुण तो अवश्य होय छे, कारणके अनंतानुबंध्यादि सर्वघाती कषायो सर्वोत्कृष्ट होय तोपण चारित्र गुणना केटलाक पर्यायो निरावरणीय रहेवाथी ए जीवोमां अव्यक्त चारित्र गुण होइ शके छे. श्री कर्मप्रकृति ग्रंथमां उदीरणा करणनी ४८ मी गाथामां " मोहनीयनी २८, अन्तरायनी ५, केवळज्ञानावरण अने केवळदर्शनावरण ए ३५ प्रकृतिओ जीवद्रव्यने संपूर्ण हणे पण जीवना सर्व पर्या-

यो न हणे " ए प्रमाणे कहेलुं होवाथी उपरना सर्व विरोध उपशान्त थाय छे. पुनः आ समाधान तप-वीर्य-अने उपयोगना संबंधमां पण विचारवुं.

१ उपवास अने उणोदरी इत्यादि व्यवहार तपना अभ्यासथी इच्छानिरोधरूप नैश्चयिक तप प्राप्त थाय छे, माटे व्यवहार तप ते निश्चय तपना अभ्यासरूप छे.

२ उपवासादि व्यवहार तप ते इच्छानिरोधरूप नैश्चयिक तपने उत्पन्न करे छे माटे व्यवहार तप नैश्चयिक तपना हेतुरूप छे.

३ सर्व मिष्ट पदार्थो प्राप्त थयेला होय अथवा प्राप्त थइ शके तेम होय छतां पण तेनो त्याग करी परम श्रद्धालु जीवो उपवासादि व्यवहार तप अंगीकार करे छे, तो तेथी अनुमान थाय छे के ए जीवने अवश्य कंइक अंशे पण इच्छानिरोधपणुं प्रगट थयेल छे, ए प्रमाणे व्यवहार तप ते नैश्चयिकतपना चिन्हरूप छे.

४ शंका—सर्वज्ञने जो सर्वांशे संपूर्ण तप गुण प्रगट थयेल छे तो सर्वज्ञ आहार नहि लेता होय एम संभवे छे.

उत्तर—सर्वज्ञ महात्माओ इच्छा-ममत्वने आधीन थइ बिलकुल आहार लेता नथी, परन्तु पोतानी औदारिक काया आहार विना टकी शके नहि माटे औदारिक कायाना निभाव अर्थेज आहार ग्रहण करे छे, माटे ममत्वभावना अभावे संपूर्ण तप गुणने हानी पहोंचती नथी. जेम व्याधि शान्त करवाने लीधेलुं कडवुं औषध इच्छापूर्वक लीधुं न कहेवाय, तेम सर्वज्ञोए कायाना निभाव माटे ग्रहण करेलो आहार इच्छापूर्वक न कहेवाय.

५ शेष जीवोने-सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोने पण इच्छानिरोधरूप तपगुणनो लेश केवी रीते होइ शके ? ए शंकानुं समाधान पण चारित्रगुणना लेशवत् जाणवुं. अर्थात् इच्छा ते मोहनीय कर्मना उदयथी छे, अने मोहनीय कर्मनो उदय जीवना सर्व पर्यायोने उपघात करी शके नहि तेथी अनुपहत पर्याय पूरतो तप गुण पण सू० एकेन्द्रियादिने संभवे.

तथा आत्मानी जे शक्ति ते वीर्य कहेवाय, ए वीर्य गुण पण सर्वज्ञमां सर्वांशे संपूर्ण अने सू० एकेन्द्रियादि जीवोमां तेथी अनंतमे अंशे हीनाधिकपणे होय छे.

तथा जेना वडे ज्ञान अने दर्शन गुणनी प्रवृत्ति थाय ते उपयोग. ए उपयोग ज्ञान अने दर्शनमां साधारण पणे वर्त्ते छे, केमके ए उपयोग ज्यारे वस्तुना विशेष धर्मोपर वर्ततो होय त्यारे एज उपयोगने " ज्ञान " संज्ञा होय छे, अने एज उपयोग ज्यारे वस्तुना सामान्य धर्म पर वर्ततो होय छे त्यारे "दर्शन" कहेवाय छे, ए प्रमाणे जोता जतां जीवनुं मुख्य लक्षण उपयोग ज छे, ज्ञान तथा दर्शन तो उपयोगान्तर्गत छे, छतां ए बेनी मुख्यता अंगीकार करीने ज्ञान अने दर्शन लक्षण उपयोगथी भिन्न कहेल छे. जो के ज्ञान, दर्शन, अने उपयोग ए त्रणे जीवनां लक्षण होवाथी जीवना स्वरूप छे छतां कर्मवशवर्ति जीव होवाथी उपयोगनुं निरन्तरपणुं रहेतुं नथी, तेमज ज्ञानोपयोगनो वस्तुनिश्चायकत्व स्वभाव छतां पण संशयादि थवामां विरोध नथी. ए उपयोग गुण पण सर्वज्ञने सर्वांशे अने शेष जीवोने थोडे घणे अंशे प्रगट होय छे.

उपर कहेलां ए लक्षणो सर्व जीवोने सत्तापणे तो सरखांज छे, परन्तु सकर्म जीवोने कर्मना प्रभावे हीनाधिक पणे प्रगट होय छे, अने अकर्म जीवोने ते सर्व लक्षणो संपूर्ण पणे प्रगट होय छे.

अवतरण-पूर्व गाथामां जीवनां लक्षण कहीने हवे आ गाथामां (४ थी गाथामां जीवना जे अपर्याप्त अने पर्याप्त भेद कह्या तेना संबंधमां) पर्याप्ति ते शुं ? अने कया जीवने केटली होय ? ते दर्शावे छे.

आहारसरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलाऽसन्निसन्नीणं ॥६॥

संस्कृतानुवादः

आहारशरीरेन्द्रिय-पर्याप्तय आनप्राणभाषामनांसि ॥
चतस्रः पंच पंच षडपि चै-कविकलाऽसंज्ञिसंज्ञिनाम् ॥६॥

शब्दार्थः

आहार–आहारपर्याप्ति
सरीर–शरीरपर्याप्ति
इंदिय–इन्द्रियपर्याप्ति
पज्जत्ति–पर्याप्ति
आणपाण–श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
भास–भाषा पर्याप्ति
मणे–मन पर्याप्ति
चउ–चार पर्याप्ति
पंच–पांच पर्याप्ति
छप्पि–छए पर्याप्ति
य–(पदपूरणार्थे] वळी
इग–एकेन्द्रियजीवोने
विगल–विकलेन्द्रियजीवोने,
असन्नि–असंज्ञि पंचेन्द्रियने
सन्नीणं–संज्ञिपंचेन्द्रियजीवोने

गाथार्थः–आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति अने मनःपर्याप्ति, ए ६ पर्याप्तिमांथी एकेन्द्रिय जीवोने चार, विकलेन्द्रिय जोवोने पांच, असंज्ञि पंचेन्द्रियने पांच, अने संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवोने छए पर्याप्तिओ होय छे.

विस्तरार्थः—जीव जे भवमां उत्पन्न थाय छे ते भवमां जीवनशक्तिना निर्वाह माटे (जीवित टकी रहेवा अने ते जीवनमां करवा योग्य अवश्य कार्यो माटे) जे आहारग्रहणादि अवश्य क्रियाओ करवी पडे छे, अने ते क्रियाओ माटे जे सामर्थ्य–शक्ति उत्पन्न

करवी पडे छे ते शक्तिनुं नाम पर्याप्ति कहेवाय. वळी जीवम
क्तिओ जे उत्पन्न थाय छे, ते पण पुद्गलसमूहना [1]आलंबनथ
विषयीज उत्पन्न थाय छे, माटे ते ते शक्ति उत्पन्न थवामां नि
भूत–कारणभूत जे पुद्गलोपचय (पुद्गलोनो समूह) ते पण
णमां कार्य भावनो आरोप करवाथी) पर्याप्ति कहेवाय छे.
थीज पर्याप्ति–जीवशक्तिओ पुद्गलोपचयजन्य (पुद्गलसमूह
न्न थएली) अथवा पुद्गलरूप कहेवाय छे. ए भावार्थ घणा
नो छे, अने श्री तत्त्वार्थभाष्य तथा वृत्तिमांनो कह्युं छे के "ते
क्रियां निमित्तभूत पुद्गलसमूहसंबंधी क्रियानी परिसमाप्ति ते प
प्ति कहेवाय छे." ए प्रमाणे पर्याप्ति एटले शक्ति, शक्तिजनक पु
अने समाप्ति ए त्रण अर्थ थाय छे.

श्री बृहत्संग्रहणी विगेरे अनेक शास्त्रोमां कह्युं छे के—"पर
प्ति एटले शक्ति अर्थात् सामर्थ्य विशेष, ते (शक्ति) पुद्गलद्रव्य
उपचयथी (समूहथी) थाय छे, अर्थात् उत्पत्ति स्थानमां आवेला जी
प्रथम समये जे पुद्गलो ग्रहण कर्या तेनी अने प्रतिसमय ग्रहण करा
मां बीजां पुद्गलो के जे तेना (प्रथम समय ग्रहित पुद्गलोना) संबंधथ
णतस्वरूपे थएलां छे तेनी जे शक्ति आहारादि पुद्गलोने खल रसा
दिरूपे बनाववामां कारणभूत छे (ते पर्याप्ति.) जेम उदरमां रहेलां (तथा
प्रकारनां तैजसादि) पुद्गलो (नी शक्ति) ग्रहण करायेल आहार पुद्ग-

---

[1] संसारी जीवोना सर्व पौद्गलिक व्यापारो पुद्गलसमूहना आलंबनथी ज होय छे. जीवनी जो के स्वतंत्र शक्ति छे एम ते शक्ति सिद्ध जीवोमां अपौद्गलिक अने संसारी जीवोमां पौद्गलिक होय छे जो कर्मप्रकृति विगेरेमां कह्युं छे के—" द्रव्यनिमित्तं हि संसारिणां वीर्यमुपजायते" एटले संसारी जीवोनुं वीर्य पुद्गलद्रव्यना निमित्तवाळुं होय छे. माटे आहारग्रहणादि पौद्गलिक शक्तिओ पण पुद्गलद्रव्यना निमित्तवाळी छे.

आहारसरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलाऽसन्निसन्नीणं ॥६॥

संस्कृतानुवादः

आहारशरीरेन्द्रिय-पर्याप्तय आनप्राणभाषामनांसि ॥
चतस्रः पंच पंच षडपि चै-कविकलाऽसंज्ञिसंज्ञिनाम् ॥६॥

शब्दार्थः

आहार–आहारपर्याप्ति	पंच–पांच पर्याप्ति
सरीर–शरीरपर्याप्ति	छप्पि–छए पर्याप्ति
इंदिय–इन्द्रियपर्याप्ति	य–(पदपूरणार्थे] वळी
पज्जत्ति–पर्याप्ति	इग–एकेन्द्रियजीवोने
आणपाण–श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	विगल–विकलेन्द्रियजीवोने,
भास–भाषा पर्याप्ति	असन्नि–असंज्ञि पंचेन्द्रियने
मणे–मन पर्याप्ति	सन्नीणं–संज्ञिपंचेन्द्रियजीवोने
चउ–चार पर्याप्ति	

गाथार्थः–आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति अने मनःपर्याप्ति, ए ६ पर्याप्तिमांथी एकेन्द्रिय जीवोने चार, विकलेन्द्रिय जीवोने पांच, असंज्ञि पंचेन्द्रियने पांच, अने संज्ञिपंचेन्द्रिय जीवोने छए पर्याप्तिओ होय छे.

विस्तरार्थः—जीव जे भवमां उत्पन्न थाय छे ते भवमां जीवनशक्तिना निर्वाह माटे (जीवित टकी रहेवा अने ते जीवनमां करवा योग्य अवश्य कार्यो माटे) जे आहारग्रहणादि अवश्य क्रियाओ करवी पडे छे, अने ते क्रियाओ माटे जे सामर्थ्य–शक्ति उत्पन्न

करवी पडे छे ते शक्तिनुं नाम पर्याप्ति कहेवाय. वळी जीवमां ए शक्तिओ जे उत्पन्न थाय छे, ते पण पुद्गलसमूहना [1]आलंबनथी-निमित्तथीज उत्पन्न थाय छे, माटे ते ते शक्ति उत्पन्न थवामां निमित्त-कारणभूत जे पुद्गलोपचय (पुद्गलोनो समूह) ते पण (कारणमां कार्य भावनो आरोप करवाथी) पर्याप्ति कहेवाय छे. ए हेतुथीज पर्याप्ति-जीवशक्तिओ पुद्गलोपचयजन्य (पुद्गलसमूहथी उत्पन्न थएली) अथवा पुद्गलरूप कहेवाय छे. ए भावार्थ घणा ग्रंथोनो छे, अने श्री तत्त्वार्थभाष्य तथा वृत्तिमांतो कयुं छे के "ते ते शक्तिमां निमित्तभूत पुद्गलसमूहसंबंधी क्रियानी परिसमाप्ति ते पर्याप्ति कहेवाय छे." ए प्रमाणे पर्याप्ति एटले शक्ति, शक्तिजनक पुद्गल, अने समाप्ति ए त्रण अर्थ थाय छे.

श्री बृहत्संग्रहणी विगेरे अनेक शास्त्रोमां कयुं छे के—"पर्याप्ति एटले शक्ति अर्थात् सामर्थ्य विशेष, ते (शक्ति) पुद्गलद्रव्यना उपचयथी (समूहथी) थाय छे, अर्थात् उत्पत्ति स्थानमां आवेला जीवे प्रथम समये जे पुद्गलो ग्रहण कर्या तेनी अने प्रतिसमय ग्रहण कराती बीजां पुद्गलो के जे तेना (प्रथम समय गृहित पुद्गलोना) संबंधथी तत्स्वरूपे थएलां छे तेनी जे शक्ति आहारादि पुद्गलोने खल रसादिरूपे बनाववामां कारणभूत छे (ते पर्याप्ति.) जेम उदरमां रहेलां (तथा प्रकारनां तैजसादि) पुद्गलो (नी शक्ति) ग्रहण करायेल आहार पुद्-

[1] संसारी जीवोना सर्व पौद्गलिक व्यापारो पुद्गलसमूहना आलंबनथी ज होय छे, जीवनी जो के स्वतंत्र शक्ति छे पण ते शक्ति सिद्ध जीवोमां अपौद्गलिक अने संसारी जीवोमां पौद्गलिक होय छे श्री कर्मप्रकृति विगेरेमां कयुं छे के—" द्रव्यनिमित्तं हि संसारिणां वीर्यमुपजायते" एटले संसारी जीवोनुं वीर्य पुद्गलद्रव्यना निमित्तथीज होय छे. माटे आहारग्रहणादि पौद्गलिक शक्तिओ पण पुद्गलद्रव्यना निमित्तथीज छे.

बनाववानी (एटले परिणमाववानी) जे शक्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति कहेवाय. ए वन्ने अर्थ श्री *प्रज्ञापना सूत्र विगेरेमां छे.—अने [1]बृहत्संग्रहणि विगेरेमां तो आत्मा जे शक्तिवडे धातुरूपे परिणमावेला आहारमांथी १–२–३–४–५ इन्द्रियमायोग्य पुद्गलो ग्रहण करी १–२–३–४–५ इन्द्रियरूपे परिणमावी स्वस्वविषय (ते ते इन्द्रियने योग्य विषय) जाणवामां समर्थ थाय ते इन्द्रियपर्याप्ति कहेवाय एवो भावार्थ कह्यो छे.–तथा श्री तत्वार्थभाष्य अने वृत्तिमां तो स्पर्शेन्द्रियादि पांच अने छट्ठुं मन ए ६ इन्द्रियोनुं स्वरूप रचवारूप क्रियानी परिसमाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति एम कहुं छे. (ए स्वरूप आगळ कहेवाना तत्वार्थोक्त पर्याप्तिना स्वरूपमांथी जोवुं.)

४–जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे श्वासोच्छ्वासयोग्य वर्गणा ग्रहण करी श्वासोच्छ्वास पणे [2]परिणमावी [3]अवलंबीने विसर्जन करे ते शक्ति श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहेवाय. घणा ग्रंथोमां ए भावार्थ छे.—अने श्री तत्वार्थभाष्य अने वृत्तिमां तो श्वासोच्छ्वास क्रियाप्रायोग्य द्रव्यनुं ग्रहण अने विसर्जन करवानी शक्तिने रचवा रूप क्रियानी परिसमाप्ति ते श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति एम कहुं छे.

---

* यया धातुरूपपरिणमितमाहारमिन्द्रियरूपतया परिणमयति सा इन्द्रियपर्याप्तिः—तथा चायमर्थोऽन्यत्राऽपि भंग्यन्तरेणोक्त, पंचानामिन्द्रियाणां प्रायोग्यान पुद्गलान् गृहित्वाऽनाभोगनिर्वर्तितेन वीर्येण तद्भावनयनशक्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः

1 यया धातुरूपतया परिणमितादाहारादेकस्य द्वयो त्रयाणां चतुर्णां पंचानां चेन्द्रियाणां प्रायोग्याणि द्रव्याण्युपादायैकद्व्यादीन्द्रियरूपतया परिणमय्य स्वस्वविषयेषु परिज्ञानसमर्थो भवति सेन्द्रियपर्याप्तिः

2 परिणमावी एटले श्वासोच्छ्वासादिरूप बनावी.

3 जे वस्तुने एकदम छोडवी होय छे ते वस्तुने छोडवां

५—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) शक्तिवडे भाषायोग्य वर्गणा ग्रहण करी भाषापणे परिणमा अवलंबीने विसर्जन करे ते शक्ति भाषापर्याप्ति कहेवाय. घणा ग्रंथो मां ए भावार्थ छे, अने तत्त्वार्थ वृत्तिमां तो—" अहिं पण वर्गणाम अनुक्रम प्रमाणे भाषायोग्य द्रव्य ग्रहण विसर्जन करवा संबंधि श- क्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति," एम कह्युं छे.

६—जीव (पुद्गलोपचयना आलंबनथी उत्पन्न थएली) जे शक्तिवडे मन योग्य वर्गणा ग्रहण करी मन पणे परिणमावी अवलं- बीने विसर्जन करे ते शक्ति मनःपर्याप्ति कहेवाय, ए भावार्थ घणा ग्रंथोमां छे. अने श्री तत्त्वार्थभाष्य तथा वृत्तिमां तो मनःपर्याप्तिने इन्द्रियपर्याप्तिमां अन्तर्गत गणी छे, अने केटलाएक आचार्योना अभिप्रायथी जूदी गणी ते वखते एवो अर्थ कर्यो छे के.—"मनपणाने योग्य एटले मनोवर्गणा भाषायोग्य अर्थात् मनपणे परिणमवामां स- र्व जे द्रव्यो तेने ग्रहण अने विसर्जन करवासंबंधि सामर्थ्यनी रच- ना रूप क्रियानी परिसमाप्ति ते मनःपर्याप्ति एम केटलाएक आ- चार्यो मनःपर्याप्ति जूदी कहे छे" इत्यादि.

ए ६ पर्याप्तिओमांथी प्रथमनी आहार शरीर अने इन्द्रिय ए

पहेलां कंइक प्रयत्न करवो पडे छे ते प्रयत्ननुं नाम अवलंबन छे, के जे प्रयत्न करवाथी ते वस्तु एकदम विसर्जन करी श- काय छे. जेम बाणने धनुष्यमांथी फेंकवुं होय छे तो प्रथम पर घटाडी पाछुं खेंचवुं पडे छे, कुदको (फलंग) मारवी होय तो शरीरने प्रथम संकोचवुं (नीचुं नमाववुं) पडे छे तोज फलंग मारी शकाय छे. ए प्रमाणे जेम बाणनो पश्चादाक- र्षण (पाछुं खेंचवा) रूप प्रयत्न, अथवा अंगनो संकोचरूप प्रयत्न ते आलंबन के अवलंबन अथवा उपष्टंभ कहेवाय छे, तेम श्वासोच्छ्वास भाषा अने मनने एकदम विसर्जन करवा माटे जे प्रथम प्रयत्न करवो पडे छे ते आलंबन कहेवाय छे.

उत्तर—आहार शरीर अने मनःपर्याप्ति संबंधि पुद्गलो श-रीरमां सर्वत्र व्याप्त संभवे छे. श्री तत्त्वार्थसूत्रना बीजा अध्यायना ११मा सूत्रनी [1]वृत्तिमां द्रव्यमनना अर्थमां मनःपर्याप्तिनां पुद्गलो सर्व आत्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे, उच्छ्वास अने भाषापर्याप्तिनां पुद्गलोनुं स्थान स्पष्ट कहेवुं अशक्य छे. अने इन्द्रिय पर्याप्तिनुं स्थान इन्द्रिय स्थानवत् अमुक नियतस्थानवर्ती छे.

पर्याप्तिओनी समाप्तिनो अनुक्रम

पूर्वोक्त ६ पर्याप्तिओमां जे जीवने जेटली पर्याप्तिओ होय छे ते जीव तेटली पर्याप्तिओने समकाळे प्रथमसमयेज प्रारंभे छे, पण संपूर्ण अनुक्रमे करे छे. कारणके आहारादि पर्याप्तिओनां पुद्गलो अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर परिणामवाळां रचवां पडे छे. जेम एक शेर रूमांथी जाडुं सूत्र वहेलुं कंताय, अने झीणुं सूत्र घणे काळे कंताय तेम प-

---

1 ते वृत्तिनो पाठ आ प्रमाणे—तत्रमनोऽभिनिर्वृत्त्ये यद्दलिकद्रव्यमुपात्तमात्मना सा मनःपर्याप्तिर्नामकरणविशेषस्य सर्वात्मप्रदेशवर्त्तिना यानन्तप्रदेशान्मनोवर्गणायोग्यान्स्कंधान् चिन्तार्थमादत्ते ते करणविशेषपरिगृहिताः स्कन्धा द्रव्यमनोऽभिधीयन्ते.

अर्थः—त्यां मन रचवा माटे आत्माए जे दलिकद्रव्य ग्रहण कर्युं छे ते मनःपर्याप्ति एटले करण विशेष छे, ते सर्व आत्मप्रदेशमां व्याप्त थयेला करणविशेष वडे जे मनोवर्गणा योग्य अनंतप्रदेशी स्कंधोने चिंतने माटे ग्रहण करे छे, ते करणविशेष वडे ग्रहण करेला पुद्गलस्कंधो द्रव्यमन कहेवाय छे. (एमां मनःपर्याप्ति संबंधी पुद्गलोने सर्वात्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे.)

2 कारणके इन्द्रियपर्याप्तिमां स्पर्शेन्द्रियनां पुद्गलो चांदीना पुतळाने घडावेला सोनाना गिलिटनी माफक शरीरनी उपर अने (मध्यभाग विना) अंदरना भागमां प्रतररूपे अविच्छिन्न व्याप्त थयेलां छे, अने जीव्हेन्द्रियादिकनां पुद्गलो ते ते आकाराकारे स्थानेज गोठवायलां छे माटे शरीरमां सर्वव्याप्त नहि.

र्याप्तिओमां पण जाणवुं (ए भावार्थ श्री तत्त्वार्थभाष्यनो छे). ते समाप्तिनो अनुक्रम आ प्रमाणे—औदारिकशरीर संबंधि पर्याप्तिओमां प्रथम आहार पर्याप्ति पहेले समयेज पूर्ण थाय छे, त्यार बाद अन्तर्मुहूर्ते शरीरपर्याप्ति, त्यारबाद अन्तर्मुहूर्ते इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण थायछे, एमप्रमाणे पांचे पर्याप्तिओ अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तने अन्तरे संपूर्ण थाय छे. पुनः आहारक अने वैक्रियशरीर संबंधि पर्याप्तिओमां तो प्रथम आहारपर्याप्ति पहेले समयेज पूर्ण थाय छे, बीजी शरीरपर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त बाद पूर्ण थाय छे, अने इन्द्रियादि चार पर्याप्तिओ एकेक समयने अन्तरे पूर्ण थायछे. (पुनः श्री भगवतीजी विगेरे मूळ सूत्रमां तो देवोने भाषा अने मनपर्याप्ति समकाळे कही छे जेथी त्यां देवोने [1]पांच पर्याप्तिवाळा कह्या छे. श्री जीवाभिगमादि वृत्तिमां ए बे पर्याप्तिमां एकत्वनी विवक्षा अल्प [2]अन्तरे पूर्ण थवानी अपेक्षाए कही छे.

शंका—वैक्रिय शरीरी अने आहारक शरीरीने तथा एकेन्द्रियोने

---

[1] तपणं से ईसाणे देविंदे देवराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा—आहारपज्जत्तीए—शरीरपज्जत्तीए—इंदिय पज्जत्तीए-आणपाण पज्जत्तीए-भासामण पज्जत्तीए—ते काळने विषे ते इशान देवेन्द्र देवराजा पांच प्रकारनी पर्याप्तिवडे पर्याप्तिभावने पामे ते आ प्रमाणे—आहार पर्याप्तिवडे, शरीर पर्याप्तिवडे, इन्द्रियपर्याप्तिवडे, श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिवडे, अने भाषामन पर्याप्तिवडे (प्राचीन कर्मग्रंथ टीकामांथी).

[2] नवरमिह भाषामन.पर्याप्त्योः समाप्तिकालान्तरस्य शेषपर्याप्तिकालान्तरापेक्षया स्तोकत्वादेकत्वेन विवक्षणमिति. तत्त्वार्थ सूत्रमां इन्द्रिय पर्याप्तिमां मन पर्याप्तिनो अंतर्भाव करीने पांच पर्याप्तिओ कहेली छे ते वात चालु वर्णनमांज कही छे अने कहेवाशे. ए प्रमाणे बन्ने शास्त्रोमां बे रीते पांच पर्याप्तिओ कहेली छे.

आहारपर्याप्ति तथा शरीरपर्याप्ति कही तो तेओ ग्रहण करेला आहार ने शुं खल रस पणे परिणमावे छे? अने ते रसीभूत आहारमांथी सात धातुओ पण बनावे छे ? कारणके तेओने खल रस के सात धातुमय शरीर होतु नथी एम जैन शास्त्रमां कहेलुं छे तो ते त्रणे जीवोने आहार अने शरीरपर्याप्ति केवी रीते होय ?

उत्तर—ए त्रणेने खलरस परिणमन अथवा सात धातुमय शरीर जोके छे नहिं तो पण आहारनुं ग्रहण अने ते आहारने शरीर पणे परिणमावर्तुं होय छे, ते कारणथी ए त्रणनी आहारपर्याप्ति आहारने ग्रहण करवानी क्रिया समाप्तिथीज होय छे, जे वर्णन आगळ शंका समाधान पूर्वक कहेवाशे. वळी ते आहारद्वारा प्राप्त करेल पुद्गलोने वैक्रिय–आहारक–अने (एकेन्द्रिय संबंधि) औदारिक शरीर पणे परिणमावे ते शरीर पर्याप्ति जाणवी. पुनः आहारने ग्रहण करवाथी पण आहारपर्याप्ति नवतत्त्वभाष्यमां कही छे ते आ प्रमाणे "-आहाराइग्गहणे जा सत्ती तं भणंति पज्जत्ती" अर्थः-आहारादि ग्रहण करवामां (जीवनी) जे शक्ति ते शक्तिने पर्याप्ति कहे छे " पुनः शरीरपर्याप्तिमां सात धातुपणे परिणमाववानी शक्तिरूप अर्थ तो औदारिक शरीरनी मुख्यताए सर्व शास्त्रकारोए कहेलो छे, ने ते अनुसारे में पण अत्रे कहेल छे, तो पण वस्तुतः तो जे जीवनुं जेवुं शरीर होय तेवुं शरीर रचवानी शक्तिने अथवा रचवानी क्रिया-समाप्तिनेज शरीरपर्याप्ति गणी शकाय छे.

शंका–६ पर्याप्तिओनो आरंभ समकाळे थाय अने समाप्ति अनुक्रमे थाय तेनुं शुं कारण ?

उत्तर—जेम एक दोर रूमांथी जाडुं सूत्र कांतवुं होयतो दोर ट केवुं पूर्ण थाय, अने झीणुं सूत्र कांतवुं होय तो घणे काळे कंताई रहे तेम आहारादि पर्याप्तिओ अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर परिणामवाळी

होवाथी समाप्तिमां अनुक्रमे अधिक अधिक काळ लागे छे. ए भावार्थ श्रीतत्त्वार्थसूत्रमांथी आगळ कहेवाशे.

शंका—प्रथमनी त्रण पर्याप्तिओ सर्व जीवो अवश्य पूर्ण करे अने शेषपर्याप्तिओ करे अथवा न करे तेनुं शुं कारण ?

उत्तर—जीव आ भवमां परभवनुं आयुष्य बांध्या पछी अन्तर्मुहूर्त आ भवमां रही त्यारबाद मरण पामीने परभवमां उत्पन्न थइ शके, अने आयुष्यनो बंध इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण कर्या विना न थाय एवो नियम छे, माटे प्रथमनी त्रण पर्याप्तिओ पूर्णकरीने चोथी पर्याप्तिना चालु काळमां (असमाप्त काळमां) अंतर्मुहूर्तसुधी आयुष्यनो बंध करी (बांधी) तदनंतर पुनः अन्तर्मुहूर्त जीवित भोगवी मरण पामे त्यांसुधी पण ए जीवनी चोथी पर्याप्ति पूर्ण थइ शकती नथी. माटे सर्व अपर्याप्ता जीवो पण प्रथमनी त्रण पर्याप्ति पूर्ण करे ज एवो नियम छे, अने शेषपर्याप्तिओ माटे एवो नियम नथी.

कया जीवने केटली पर्याप्तिओ होय ?

पूर्वे कहेली ६ पर्याप्तिओमांथी सर्व एकेन्द्रिय जीवोने प्रथमनी ४ पर्याप्ति छे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रियजीवोने प्रथमनी ५ पर्याप्ति, तेमज असंज्ञि (सम्मूर्च्छिम) पंचेन्द्रियने प्रथमनी ५ पर्याप्ति, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने ६ पर्याप्ति होय छे. ए प्रमाणे सामान्यथी गाथाने अनुसारे जीवोमां पर्याप्तिओ कही, अने विशेषथी आ प्रमाणे—

सर्व [1]लब्धिअपर्याप्त जीवोने ३ पर्याप्तिओ प्रथमनी होय छे. जेथी सर्व अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सम्मूर्च्छिम मनु-

१ लब्धि पर्याप्त तथा अपर्याप्त वगेरेनुं स्वरूप आगळ कहेवाय छे.

प्त* अने अपर्याप्त एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय ए सर्वने आहार-शरीर अने इन्द्रिय ए ३ पर्याप्तिओ होय छे. तेमज लब्धिअ-पर्याप्त गर्भज (संज्ञि) तिर्यंच पंचेन्द्रिय अने गर्भज (संज्ञि) मनुष्यने पण एज ३ पर्याप्तिओ होय छे. तथा लब्धिपर्याप्तए-केन्द्रियोने ४ पर्याप्ति, लब्धिपर्याप्त विकलेंद्रिय (द्वीन्द्रि--त्रीन्द्रिय--अने चतुरिन्द्रिय) ने तथा लब्धिपर्याप्ता असंज्ञि (समूच्छिम तिर्यंच) पंचेन्द्रियने ५ पर्याप्तिओ प्रथमनी होय छे, (अहिं समूच्छिम मनुष्यो लब्धिपर्याप्ति होइ शके नहिं तेथी तेओनुं ग्रहण कर्युं नथी,) अने लब्धिपर्याप्त मनुष्य-- ल० प० ग० तिर्यंच सर्व देव अने सर्व नारक जीवोने छ ए पर्याप्तिओ होय छे. कारणके लब्धिपर्याप्त तिर्यंच अने मनुष्य अपूर्ण पर्याप्तिए मरण पामे नहिं, तेमज देव अने नारक लब्धिअपर्याप्त होता नथी पण लब्धि पर्याप्ता ज होय छे माटे तेओ पण अपूर्ण पर्याप्तिए मरण पामता नथी.

पर्याप्तिना संबंधमां लब्धि अने करण भेदनी विवक्षा

चालु प्रकरणमां तेमज बीजा पण अनेक ग्रंथोमां लब्धि अपर्याप्त

* लब्धि अपर्याप्त सम्मूर्छिम मनुष्योने उच्छ्वासपर्याप्ति संभवे नहिं. कारणके सर्व लब्धि अपर्याप्ताने ३ पर्याप्तिओज समाप्त थाय एवो कर्मग्रंथनो नियम छे तो पण जीवविचार-वचूरीमां अने श्री प्रज्ञलोकप्रकाशमां समू० मनुष्योने ७-८ प्राण. अने बृहत्संग्रहणि वृत्तिमां ९. प्राण कह्या होवाथी उच्छ्वास अने भाषा प्राण कहेलो गणाय. अहीं उच्छ्वास प्राण कह्यो परन्तु अपर्याप्तनामकर्म अने उच्छ्वासनामकर्म ए बेनो समकाळे उदय कोइपण शास्त्रमां अंगीकृत कर्यो नथी तो लब्धि अपर्याप्त सम्मू० मनुष्यने उच्छ्वास प्राण अने वचनप्राण उच्छ्वास अने वचन-पर्याप्ति पूर्ण कर्या विना केवी रीते होय? ते बहु विचारवा योग्य छे. वळी ९ प्राणो कहेवाथी तो ते पर्याप्ता थाय छे.

अने लब्धि पर्याप्त, तथा करण अपर्याप्त अने करणपर्याप्त जीवोनो संबंध घणी वार आवतो होवाथी अत्रे पर्याप्तिना प्रसंगमां ते चारे जीवोनुं किंचित् स्वरुप अर्थ मात्रथी कहेवाय छे—

जे जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे ते लब्धिअपर्याप्त कहेवाय. जेमके एकेन्द्रिय जीवने स्वयोग्य पर्याप्तिओ ४ होय छे, तो ते चार पर्याप्तिओ पूर्ण न करे अने त्रण पूर्ण करीने ज (चालती चोथी पर्याप्तिमां) मरण पामी जाय तेवा एकेन्द्रियजीवो लब्धि अपर्याप्त एकेन्द्रिय कहेवाय छे, अहिं लब्धि ते अपर्याप्तनामकर्मना उदय संबंधि जाणवी. पुनः ए प्रमाणे विकलेन्द्रिय विगेरे स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्याविना मरण पामे तो तेओ लब्धि अपर्याप्त विकलेन्द्रियादि कहेवाय. सर्व लब्धिअपर्याप्त जीवो त्रणज पर्याप्तिओ पूर्ण करे छे ते आगळ कहेवाशे.

तथा जे जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे एवी योग्यतावाळो जीव लब्धिपर्याप्त कहेवाय. (अहिं लब्धि ते पर्याप्तनामकर्मना उदय संबंधि जाणवी.) जेमके जे एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य ४ पर्याप्तिओ, अने जे विकलेन्द्रिय अने असंज्ञिपंचेन्द्रिय जीव स्वयोग्य ५ पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे तो तेवा एकेन्द्रिय–विकलेन्द्रिय–अने असंज्ञिपंचेन्द्रिय जीवो लब्धिपर्याप्त कहेवाय.

तथा जे जीवे स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करी नथी परन्तु पूर्ण करशे ते जीव करणअपर्याप्त कहेवाय. जेमके स्वयोग्य चारे पर्याप्तिओ हवे पछी पूर्ण करशे एवा जीवे जो एक वा बे पर्याप्तिओ वा त्रण पर्याप्तिओ ज पूर्ण करी होय अने शेष अधूरी होय तो ते करण अपर्याप्त एकेन्द्रिय कहेवाय छे, तेमज स्वयोग्य छए पर्याप्ति पूर्ण करशे एवा मनुष्ये एक बे त्रण, चार के पांच पर्याप्तिओज पूर्ण करी होय तो पण ते करणअपर्याप्त मनुष्य कहेवाय. करणअपर्याप्त प-

णानो आ अर्थ मात्र लब्धिपर्याप्त जीवने ज लागु पडतो होवाथी लब्धि अपर्याप्तजीवने पण करणअपर्याप्तपणुं संभवे तेवो अर्थ आ प्रमाणे छे.—स्वयोग्य पर्याप्तिओमांथी जे जीवे स्वयोग्य पर्याप्तिओ ज्यांसुधी पूर्ण नथी करी त्यांसुधी ते जीव करणअपर्याप्त कहेवाय. जेम लब्धिअपर्याप्त एकेन्द्रिय जीव श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वडे करणअपर्याप्त (अने लब्धिअपर्याप्त पण) छे, पुनः एज जीव वाटे वहेतां एकपण पर्याप्ति प्रारंभी नथी तो ते वाटे पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त कहेवाय. ए प्रमाणे ज्यांसुधी स्वयोग्य पर्याप्तिओमांनी एक पण पर्याप्ति करवी अधूरी होय तो ते अधूरी रहेली पर्याप्तिनी अपेक्षाए करणअपर्याप्त ज कहेवाय. ए प्रमाणे ज लब्धिपर्याप्त मनुष्य भवांतरथी आवतां रस्तामां सर्व (छए) पर्याप्तिओवडे करण अपर्याप्तो छे, त्यारबाद आहार पर्याप्ति पूर्ण थतां शेष पांच पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त, शरीर पर्याप्ति पूर्ण थतां शेष चार पर्याप्तिवडे करणअपर्याप्त, इत्यादि रीते यावत् पांच पर्याप्तिओ पूर्ण थया बाद मनःपर्याप्तिनी समाप्तिना उपान्त्य समय सुधी पण मनःपर्याप्तिवडे करण[1]अपर्याप्त कहेवाय.

तथा स्वयोग्य पर्याप्तिओ जे जीवे पूर्ण करी लीधी ते जीव (पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या बाद) करणपर्याप्त कहेवाय.

१-२ आ संबंधमां बधी पण प्रसिद्धी छे के करण एटले "इन्द्रिय सुधीनी प्रथमनी ३ पर्याप्तिओ" समाप्त थतां करणपर्याप्त अने समाप्त न थाय त्यां सुधी करणअपर्याप्त कहेवाय. परन्तु ए अर्थ सम्यक् प्रकारे संभवतो नथी, कारणके करण एटले "शरीर इन्द्रिय विगेरे (स्वयोग्य पर्याप्तिओ)" एवो अर्थ मान्य संभवे छे. श्री द्रव्यलोकप्रकाशमां कह्युं छे के-

करणानि शरीराक्षा-दीनि निर्वर्तितानि यैः ।
ते स्युः करणपर्याप्ताः, करणानां समर्थनात् ॥

पर्याप्त भेदाः

- पर्याप्त
  - ब्धिपर्याप्त
    - णअपर्याप्त
    - करणपर्याप्त
  - लब्धिअपर्याप्त
    - करणअपर्याप्त

निर्वर्तितानि यावाऽपि, प्राणिभिः करणानि यैः ।
देहाक्षादीनि करणाऽपर्याप्तास्ते प्रकीर्तिताः ॥

ए बन्ने गाथाओमां " करण एटले शरीर अने इन्द्रियो विगेरे " एम कह्युं छे. एमां " विगेरे " शब्दथी उच्छ्वासादि स्वयोग्य पर्याप्तिओज ग्रहण करवी. श्री विचारपंचाशिकामां कह्युं छे के—

लद्धिवि पूरेइ परं, पूरिस्सइ स इह करणअपज्जत्तो ।
सो पुण करणपज्जत्तो, जेणं ता पूरिया हुंति ॥ ३९ ॥

ए गाथानो टीकार्थः—" अहिं करण एटले शरीर अने इन्द्रियादिवडे अपर्याप्त ते करण अपर्याप्त तेज जीव कहेवाय के जे जीवे पर्याप्तिओ हजी सुधी समाप्त करी नथी अर्थात् बनावी नथी परन्तु केवळ आगळ समाप्त करशे एटले अवश्य स्वयोग्य पर्याप्तिओ बनावशेज. वळी करणपर्याप्त ते कहेवाय के जेणे ते पोतानी (स्वयोग्य) पर्याप्तिओ पूर्ण करेली छे एटले बनावेली छे. "

शंका—द्रव्य लोकप्रकाश विगेरेमां " लब्धिअपर्याप्त जीवो पण अवश्य करणपर्याप्ता थइनेज मरण पामे " एवो भावार्थ कह्यो छे तो ते केम बनी शके ?

उत्तरः—ते स्थाने करणपर्याप्त एटले इन्द्रियपर्याप्त अर्थ थाय छे, पण लब्धि विगेरे चार भेदमांनो करणपर्याप्त भेद न गणवो. वळी करण अपर्याप्त सास्वादनसम्यक्त्व विगेरे होवानुं

एक जीवमां समकाळे लब्ध्यादि पर्याप्तभेद.

जे जीव लब्धिअपर्याप्त छे ते जीव करण[1]अपर्याप्त पण छे.

पुनः जे जीव लब्धिपर्याप्त छे ते जीव करणअपर्याप्त अने करणपर्याप्त पण छे. कारणके लब्धिपर्याप्त जीवे ज्यां सुधी स्वयोग्यपर्याप्तिओ पूर्ण नथी करी त्यां सुधी करणअपर्याप्त कहेवाय, अने स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या बाद करणपर्याप्त कहेवाय. अने जे लब्धिपर्याप्त होय ते जीव लब्धिअपर्याप्त न होय, अने लब्धिअपर्याप्त जीव लब्धिपर्याप्त न होय.

तथा जे जीव करणपर्याप्त छे ते जीव लब्धिपर्याप्त ज छे, परन्तु लब्धिअपर्याप्त के करणअपर्याप्त नथी. कारणके लब्धिपर्याप्तपणा विना करणपर्याप्तपणुं संभवेज नहिं, अने करणअपर्याप्तपणुं अने लब्धिअपर्याप्तपणुं तो ए जीवने प्रत्यक्ष विरुद्धज छे.

तथा जे जीव करणअपर्याप्त छे ते जीव लब्धिअपर्याप्त अने लब्धिपर्याप्त पण होय. कारणके लब्धिअपर्याप्त जीव तो प्रथम कह्या प्रमाणे करणअपर्याप्तज होय छे, अने लब्धिपर्याप्तजीवे पण ज्यां सुधी स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण नथी करी त्यां सुधी ते जीव करणअपर्याप्तज

ज्यां कह्युं होय त्यां लब्धिपर्याप्तान्तर्गत करणअपर्याप्तपणुं अंगीकार करवुं, पण लब्धिअपर्याप्त जीव संबंधि करणअपर्याप्तपणुं नहिं.

[1] चालु ग्रन्थाधिकारमां स्वयोग्य पर्याप्तिवडे अपर्याप्तने करण अपर्याप्त कहेलो होवाथी लब्धिअपर्याप्तने करणअपर्याप्त कह्यो छे, परन्तु ए जीव स्वयोग्य पर्याप्तिओ पूर्ण करशे ए अपेक्षाए करणअपर्याप्तपणुं न जाणवुं. अथवा लब्धिअपर्याप्ता जीवो सर्व निश्चयथी अपर्याप्तरूप एकज प्रकारना होवाथी सद्गत इतर भेदना अभावनी अपेक्षाए करणअपर्याप्तपणानी विवक्षा शास्त्रमां करी नथी ते पण योग्य छे.

छे, अने करणपर्याप्तपणुं तो ए जीवने मत्यक्ष विरोधीज छे. ए प्रमाणे चारेमां परस्पर भेदसंक्रान्ति नीचे प्रमाणे—

लब्धिअपर्याप्तमां	१ लब्धिअप० २ करणअप०(अपेक्षाए क०प०)
लब्धिपर्याप्तमां	१ लब्धिपर्या० २ करण अप०, ३ करणपर्या०
करणअपर्याप्तमां	१ करणअप० २ लब्धिअप० ३ लब्धिपर्याप्त
करणपर्याप्तमां	१ करणपर्या० २ लब्धिपर्या०

लब्धिकरण पर्याप्तापर्याप्तपणानो काळ.

जीवने लब्धिअपर्याप्तपणुं अन्तर्मुहूर्त सुधी (एक भव आश्रयी) होय छे, कारणके लब्धिअपर्याप्त जीवनुं आयुष्य अन्तर्मुहूर्तथी अधिक होय नहि—तथा लब्धिपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी भवना अन्त्य समय सुधी रहे, कारणके लब्धिपर्याप्त जीवनुं लब्धिपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी गणाय ते पण ज्यां सुधी जीवे त्यां सुधी ते जीव लब्धिपर्याप्तज कहेवाय. शास्त्रोमां ज्यां ज्यां पर्याप्त जीव कह्या होय त्यां त्यां सर्वत्र लब्धिपर्याप्त जीवोज जाणवा. ज्यां ज्यां अपर्याप्त जीवो कह्या होय त्यां त्यां प्रायः लब्धि जीवो जाणवा (कदाच करणअपर्याप्त जीवो पण देव–नारकना १९८ भेद तथा १४ जीव भेद विगेरेनी पेठे गणाय छे). तथा करणअपर्याप्त पणुं जीवने एक अन्तर्मुहूर्त सुधीज होय छे, कारणके अन्तर्मुहूर्त व्यतीत थतां स्वयोग्य सर्व पर्याप्तिओ पूर्ण थाय छे.—तथा करण पर्याप्तपणानो काळ अन्तर्मुहूर्त न्यून स्वआयुष्यप्रमाण जाणवो. कारणके जीव विवक्षित भवमां गया पछी अन्तर्मुहूर्तवाद पर्याप्तिओ पूर्ण करवाथी करणपर्याप्त थाय छे ने ते पछी आखा भव सुधी करणपर्याप्त कहेवाय छे.

पर्याप्तापर्याप्तिनुं काळ प्रमाण.

लब्धि अपर्याप्त	भव प्रथम समयथी	अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त
लब्धि पर्याप्त	,,	आयुष्यपर्यन्त
करण अपर्याप्त	,,	अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त
करण पर्याप्त	अन्तर्मुहूर्तन्यून	स्वआयुष्यपर्यन्त

पुनः कायस्थितिकाळनी विवक्षा करीए तो लब्धिअपर्याप्तपणानो जघन्य अने उत्कृष्ट कायस्थिति काळ अन्तर्मुहूर्त छे, (एटला काळ सुधी जीव लब्धिअपर्याप्तपणे केटलाक भव करे), अने लब्धिपर्याप्तपणानो काळ जघन्य अन्तर्मुहूर्त, अने उत्कृष्ट सागरोपमशतपृथक्त्व (घणा सेंकडो सागरोपम) छे. ए प्रमाणे श्री प्रज्ञापना सूत्रमां कायस्थितिपदमां कह्युं छे. अने शेष बेनो कायस्थिति काळ तो पूर्वोक्त सामान्य काळवत् जाणवो.

शंकाः—कोइ जीव पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विना मरण पामे अने कोइ जीव पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे तेनुं कारण शुं?

उत्तरः—जे जीवे प्रथमना (पूर्व) भवमां पर्याप्तनाम कर्म उपार्जन करेलुं होय (बांधेलुं होय,) ते जीव आ भवमां आवी पर्याप्तिओ पूर्ण करीनेज मरण पामे, अने जे जीवे अपर्याप्त नाम कर्म बांध्युं होय तो ते अपर्याप्तनामकर्मना उदयवडे पर्याप्तिओ पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे. ए प्रमाणे पर्याप्तिओ पूर्ण थवामां अने न थवामां [1]नामकर्म मूळ कारण छे.

---

[1] नामकर्मजन्य अपर्याप्तलब्धि अथवा पर्याप्तलब्धि मानवानी शी जरूर छे? कारणके पर्याप्ति पूर्ण थवी न थवी तेमां तो अल्प-दीर्घ आयुष्यज कारणरूप होइ शके. अर्थात् आयुष्य अल्प होय तो पर्याप्तिओ पूर्ण न थाय अने आयुष्य अधिक होयतो पर्याप्तिओ

समाप्त थएली पर्याप्तिओनुं कार्य.

प्रति समय आहार ग्रहण करवारूप क्रिया, अथवा
आहारने खल रसरूपे परिणमाववानी क्रिया आहारपर्या
जीवशक्ति वडे थाय छे.

काययोगरूप शरीर चेष्टा (शरीरद्वारा आहारग्र
कार्य करवुं) तथा धावन वल्गनादिमां समर्थता थवी, अने
मायोग्य ग्रहण कराता लोमाहार या कवलाहारद्वारा प्राप्त
पुद्गलोने शरीरपणे परिणमाववारूप क्रिया करवी ए शरीरप
समाप्त थवाथी थाय छे. (आ पर्याप्ति पूर्ण थवाथी थी शीलांका
मते आगळनी ७ मी गाथामां कहेवातो भवधारणीय देह संबंधि
योग प्राप्त थाय छे). इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण थवाथी जीव इन्द्रियोद्व
विषयबोध करी शके छे.

तथा श्वासोच्छ्वासने ग्रहण करी परिणमावी अवलंबीने मू
कवानी क्रियारूप जे उच्छ्वास प्राण ते श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिव
उत्पन्न थाय छे.

अवश्य पूरी थायज. माटे पर्याप्तिओ पूर्ण थया नहि थयामां
शुं नामकर्मजन्य लब्धिरूप कारण मानवुं ते आवश्यक नथी.

उत्तरः—पक्षीने उडवामां दया, चक्षुने देखवामां प्रकाश, अने
मत्स्यने तरवामां जळ जो के अवश्य साधनरूप छे, परन्तु पक्षी
विगेरेनी पोतानी शक्ति विना उडवा विगेरेनुं कार्य बने नहि,
तेम पर्याप्तिओ अपूर्ण रहेवामां के पूर्ण थवामां आयुष्य सहकारी
कारण अवश्य छे, परन्तु पूर्ण थवा न थवानी योग्यता तो नाम
कर्मजन्य गणी शकाय. जेम मुद्गर न मारे तो घडो न फुटे अने
मुद्गर मारे तो घडो फुटे ए वात खरी पण घडामां फुटवा नहि
फुटवानी योग्यता तो प्रथम अन्य कारणथीज रहेली गणी शकाय.

तथा भाषा बोलवानी क्रियारूप जे वचनबळ प्राण ते भाषापर्याप्तिथी अने मनपर्याप्ति पूर्ण थवाथी जीवने चिंतवन व्यापाररूप मनोबळ प्राण प्राप्त थाय छे. ए प्रमाणे जीवने जीवित पर्यन्त करवायोग्य ९ प्राणरूप ९ कार्यो ए ६ पर्याप्तिओ पूर्ण थवाथी प्रवर्ती शके छे. अने आयुष्य प्राण माटे कोइ शक्तिनी जरुर नहि होवाथी आयुष्य प्राणना कारणरूप कोइ पर्याप्ति नथी. अथवा तो तेमां पण आहार पर्याप्ति आयुष्य प्राणने टकाववामां मुख्यत्वे सहकारी कारण गणाय, कारणके आहार ग्रहण विना जीवित टकी शकतुं नथी ए स्पष्ट छे.

पर्याप्ति संबंधि पूर्वोक्त स्वरूप घणा ग्रंथोमांथी मळी आवे छे, अने श्रीतत्त्वार्थ सूत्रमां पर्याप्ति संबंधि जे विशेषता छे ते नीचे लखेला भाष्यरूप भाषान्तरथी समजाशे.

श्री तत्त्वार्थ सूत्रने अनुसारे ६ पर्याप्तिनुं स्वरूप.

भाष्यार्थः—पर्याप्ति ५ प्रकारनी छे ते आ प्रमाणे—१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, ४ उच्छ्वास पर्याप्ति, अने ५ भाषापर्याप्ति. आत्मानी क्रियानी समाप्ति ते पर्याप्ति कहेवाय.

टीकार्थः—पर्याप्ति पांच प्रकारनी छे इत्यादि कह्युं त्यां पर्याप्ति ते पुद्गलस्वरूप छे, के जे कर्ता एवा आत्मानुं करण विशेष छे, अर्थात् जे करणविशेष वडे आत्माने आहारादि ग्रहणशक्ति उत्पन्न थाय छे, अने ते करण जे पुद्गलोवडे बने छे ते आत्माए ग्रहण करेला तथा तथाप्रकारना परिणामवाळा पुद्गलोज पर्याप्ति शब्दवडे कहेवाय छे. ए प्रमाणे भाष्यकर्ता उद्देश करायेली पर्याप्तिओने नामग्रहण पूर्वक विभागे दर्शावतां (भाष्यकार) आ प्रमाणे कहे छे.

भाष्यार्थः—आहारने ग्रहण करवानां समर्थ एवा करणनी

उत्पत्ति ते आहार पर्याप्ति. शरीर करणनी उत्पत्ति
पर्याप्ति. इन्द्रियकरणनी उत्पत्ति ते इन्द्रिय पर्याप्ति
एटले उच्छ्वास निःश्वासने योग्य करणनी उत्पत्ति ते
पर्याप्ति, भाषा योग्य पुद्गलोने ग्रहण विसर्जन करवामां
एवा करणनी उत्पत्ति ते भाषा पर्याप्ति. कह्युं छे के-

आहारसरीरिंदिय—उस्सासवओमणोऽहिनिव्वि
होइ जओ दलियाओ. करणं पइ सा उ पज्जत्ती

(अर्थः—जे दलिकवडे आहार शरीर इन्द्रिय उच्छ्वास
अने मननी निष्पत्ति थाय छे, ते प्रत्ये (शक्तिरूप) जे क
पर्याप्ति कहेवाय)

इति शब्द "एटलीज पर्याप्तिओ छे" एम दर्शाववा
छे. अहिं शंका थाय के—परमगुनिओना वचनथी प्रसिद्ध
पर्याप्तिओ ६ छे, तो अहिं ५ केम कही? तेना जवाबमां जा
के अहिं इन्द्रियपर्याप्ति ग्रहण करवाथी मनःपर्याप्तिनुं पण ग्रहण
युं जाणवुं, माटे पर्याप्तिओ पांच छे एज निर्णय छे. वळी शंका था
के शास्त्रकारोए तो मनने अनिन्द्रिय कहेल छे तो इन्द्रियना ग्र
णथी (अनिन्द्रियरूप) मन केम ग्रहण कराय? तेनो जवाब ए
के—जेम चक्षु आदि इन्द्रियो शब्दादि विषयने साक्षात् ग्रहण करे
छे तेम मन (साक्षात् विषयग्राही) नथी, परन्तु सुख विगेरेने
साक्षात् ग्रहण करनार होवाथी मन अपूर्ण इन्द्रियस्वरूप छे माटे
मनने अनिन्द्रिय कह्युं छे. अने मन ते इन्द्रनुं-आत्मानुं लिंग
होवाथी इन्द्रिय पण कहेवाय छे. तथा केटलाएक आचार्यो मनः
पर्याप्ति जूदी कहे छे एम आगळ कहेवामां आवशे. वळी पर्या-
प्तिओ पांचज छे एम जे निर्णय कर्यो ते बाह्यकरणोनी अपेक्षाए

जाणवुं, अने मन तो अभ्यन्तर करण छे माटे मनःपर्याप्ति जूदी कहे-वामां कोइ दोष नथी. बन्ने रीते मनःपर्याप्तिनो संभव छे. हवे प-र्याप्ति एटले समाप्ति अर्थात् विवक्षित क्रियानी समाप्ति. तैजस अने कार्मण शरीर वाळा आत्मानेज औदारिक विगेरे शरीर मात करवानुं होवा छतां प्रथम समये उत्पत्ति वखतेज ए पर्याप्तिओनो विचार कराय छे, अर्थात् ए परभव ग्रहण वखतनी छे. वळी ए ६ प-र्याप्तिओ समकाळे प्रारंभाय छे अने अनुक्रमे समाप्त थाय छे पण समकाळे समाप्त थती नथी. कारण के उत्तरोत्तर पर्याप्तिओनो अनुक्रमे अधिक अधिक काळ छे. ते समाप्त थवाना अनुक्रममां प्रथम आहार पर्याप्ति, अने त्यारबाद अनुक्रमे शरीर, इन्द्रिय, उ-च्छवास, भाषा, अने मनःपर्याप्ति छे. त्यां प्रथम आहारपर्याप्तिनुं स्वरूप निरूपण करवाने माटे (भाष्यकार) आ प्रमाणे करे छे.

भाष्यार्थ—शरीर, इन्द्रिय, वचन, मन, अने उच्छ्वास यो-ग्य दलिकद्रव्यने ग्रहण करवा रूप क्रियानी समाप्ति ते आहार पर्याप्ति, ग्रहण करेल (दलिक) ने शरीरपणे स्थापवा रूप क्रिया-नी समाप्ति ते शरीर पर्याप्ति, अहिं स्थापवुं एटले रचवुं अथवा घडवुं एवो अर्थ छे.

टीकार्थ—शरीर इन्द्रिय वचन मन अने उच्छवासनां आग-म प्रसिद्ध वर्गणाओना अनुक्रम प्रमाणे जे तत्प्रायोग्य दलिकद्रव्यो तेनी आहरणक्रिया एटले ग्रहणक्रिया तेनी समाप्ति ते आहार-पर्याप्ति ते करण विशेष छे. अहिं मन ग्रहण करवाथी प्रथम इन्द्रिय ग्रहण वडे मननुं जे ग्रहण कर्युं हतुं ते स्पष्ट कर्युं. तथा सामान्य पणे (शरीरादि अमुक रुपेज एम नहिं एवा) ग्रहण करेल योग्य पु-द्गल समूहनुं शरीर अने (ते शरीरना) अंगोपांगपणे स्थाप-वानी क्रिया एटले रचवानी क्रिया तेनी समाप्ति ते शरीरपर्या-

प्ति. अहिं स्थापन शब्दनो अर्थ (भाष्यकर्ता पोतेज) बीजा एकार्थवाचक शब्दोवडे जणावे छे के स्थापवुं एटले रचवुं अथवा घडवुं, अर्थात् शरीर वर्गणा मायोग्य पुद्गलोनी अमुक मकारे रचना (ते शरीरपर्याप्ति).

भाष्यार्थ—त्वचा विगेरे इन्द्रियोने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति.

टीकार्थ—त्वचा एटले स्पर्शेन्द्रिय ते विगेरे इन्द्रियो एटले स्पर्श०, रसने०, घ्राणे०, चक्षु०, अने श्रोत्रेन्द्रिय, अने मन ए ६ इन्द्रियोनुं स्वरूप रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते इन्द्रियपर्याप्ति.

भाष्यार्थ—प्राणापान क्रिया योग्य द्रव्यनुं ग्रहण अने विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते प्राणापानपर्याप्ति.

टीकार्थ—प्राणापान एटले उच्छ्वास अने निःश्वासक्रिया स्वरूप ते बन्नेनां वर्गणाना क्रम प्रमाणे योग्य द्रव्य ग्रहण (अने विसर्जन) करवानुं सामर्थ्य ते (सामर्थ्य) ने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते उच्छ्वासपर्याप्ति.

भाष्यार्थ—भाषा योग्य (दलिक) ने ग्रहण विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति.

टीकार्थ—अहिं पण वर्गणाना अनुक्रम प्रमाणे भाषा मायोग्य द्रव्यने ग्रहण विसर्जन करवा संबंधि जे शक्ति-सामर्थ्य ते (शक्तिने) रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते भाषापर्याप्ति.

भाष्यार्थ—मनपणाने योग्य द्रव्यो ग्रहण विसर्जन करवानी शक्तिने रचवारूप क्रियानी समाप्ति ते मनःपर्याप्ति एम केटला एक आचार्य कहे छे.

टीकार्थ–मनपणाने योग्य एटले मनोवर्गणा मायोग्य अर्थात् मनपणे परिणमवामां समर्थ जे द्रव्यो तेने ग्रहण अने विसर्जन करवा संबंधि सामर्थ्यनी रचनारूप क्रियानी परिसमाप्ति ते मनःपर्याप्ति, एम केटलाएक आचार्यो मनःपर्याप्ति जुदी कहे छे, अर्थात् इन्द्रियपर्याप्ति अने नोइन्द्रियपर्याप्तिना ग्रहणमां (मनःपर्याप्तिने) भेगी गणता नथी, इन्द्रिय पर्याप्तिथी भिन्न गणे छे, परन्तु मनःपर्याप्तिने केटलाएक आचार्य माने छे, अने केटलाएक नथी मानता एम नहि.

भाष्यार्थ—ए पर्याप्तिओ समकाळे प्रारंभाय छे छतां पण समाप्त अनुक्रमे थाय छे तेनुं कारण ए छे के ए पर्याप्तिओ उत्तरोत्तर (अनुक्रमे) सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे, तेनां दृष्टांतो सूत्र कांतवा अने काष्ट घडवाना अनुक्रमे (आ प्रमाणे) छे.

टीकार्थ—ए छए पर्याप्तिओ समकाळे आरंभाइ छती अनुक्रमे समाप्त थाय छे ते दर्शावे छे के पर्याप्तिओ विषमकाळे समाप्त थाय छे तेनुं शुं कारण ? (तेनो उत्तर) कहे छे के पर्याप्तिओ अनुक्रमे सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे. अर्थात् आहारपर्याप्तिथी शरीरपर्याप्ति अति सूक्ष्म छे, एटले अति सूक्ष्म द्रव्यना समूहवडे रचायली छे, तेथी पण इन्द्रियपर्याप्ति अतिशय सूक्ष्म, तेथी पण उच्छ्वास पर्याप्ति, तेथी पण वचनपर्याप्ति, अने तेथी पण मनःपर्याप्ति अति सूक्ष्म छे. माटे तेनुं अनुक्रमे सूक्ष्मपणुं दृष्टान्तथी जणावे छे के सूत्र कांतवा अने काष्ट घडवाना दृष्टांते (ए पर्याप्तिओ सूक्ष्म सूक्ष्मतर छे) अर्थात् जाडुं सूत्र कांतनारो अने बारीक सूत्र कांतनारी सूत्र कांतवानो समकाळे प्रारंभ करे तोपण जाडुं सूत्र कांतनारो कोकडुं व्हेलुं पूरुं करे, अने बीजो घणे काळे पूरुं करे. तथा काष्ट घडवामां पण एज क्रम जाणवो के स्तंभ

विगेरेनो स्थूल आकार बनावशो अने तेने समचोरसरूपे क
ते अल्पकाळमां कराय, अने तेम स्तंभने नीचेना भोंयतळ
आना (कुंभी विगेरेना) भागमां पांदडीओ पाडी पूतळीओना
समूह सहित बनावशो होय तो लमकाळे प्रारंभ्या छतां पण घ
काळे बने. (भाष्यमां कहेला) विगेरे शब्दथी चित्र पुस्त (पुतळी
अने लेप (रंगवुं चित्र) विगेरेनुं ग्रहण करवुं. तथा (भाष्यमां
कहेला) " अनुक्रमे दृष्टांतो (आ प्रमाणे) " ए वचनथी छ
पर्याप्तिओनुं स्वरूप अनुक्रमे छ दृष्टांतोवडे कहेवानो प्रारंभ
करे छे. माटे दृष्टान्तनुं प्रतिपादन करवा माटे (नीचे प्रमाणे
भाष्यकार) कहे छे.

भाष्यार्थ—घरना दलिकनुं (काष्ठादि सामग्रीनुं) ग्रहण, स्तंभ अने स्थूणा (आडी पाटडी)नुं रचवुं, द्वारवडे प्रवेश करवा अने निकळवाना स्थाननुं रचवुं, सूवा बेसवा विगेरे क्रिया (योग्य स्थान)नुं रचवुं, ते सरखुं पर्याप्तिनुं रचवुं छे. पर्याप्ति एटले ते ते परिणामने योग्य दलिक के जे आत्माए ग्रहण करेल होय ते.

टीकार्थ—अहिं (भाष्यकार) घरना दलिक (काष्ट-ईंट-माटी-धूनो इत्यादि) वडे आहार पर्याप्ति समजावे छे. जेम घर करवुं होय त्यारे सामान्यपणे साग विगेरेना काष्ट रूप घरनुं दलिक (काष्ठादि सामग्री) एकठुं कराय छे. (तेम सामान्यपणे ते योग्यतावाळा पुद्गलनुं केवळ ग्रहण ते आहार पर्याप्ति). त्यार बाद सामान्यपणे ग्रहण करेला दलिकमां अहिं स्तंभ या स्थूणा (थोभ-आडु काष्ट) बने एम निरूपण कराय छे (विचाराय छे) ते प्रमाणे अनेक द्रव्यो ग्रहण कर्ये छते पणां आ द्रव्यो

शरीर वर्गणा योग्य छे अर्थात् शरीर निष्पादन करवामां (निष्पत्तिमां) समर्थ छे, (ते पुद्गलोवडे अथवा ते पुद्गलोनुं शरीर बनाववुं) ते शरीर पर्याप्ति. तथा घरनी भींत विगेरेनी उंचाइ रूप विचार करवानो छे तो पण (भींत विगेरेथी घर रच्ये छते पण) तेने केटलां द्वार बनाववां, अने तेमां पण आ (अमुक) द्वार पूर्वमुखे अने आ द्वार उत्तरमुखे पेसवा निकळवा माटे (ठीक पडशे एम) विचाराय छे (बनावाय छे) तेम इन्द्रियपर्याप्ति पण आत्मोपयोगनी वृत्तिए पेसवा निकळवाना द्वार सरखी छे. ए प्रमाणे उच्छ्वास पर्याप्ति अने भाषापर्याप्ति पण एज दृष्टांतवडे समजवी, (कारण के) दार्ष्टान्तिकना भेदथी दृष्टांत भिन्न होय छे (पण अहिं दार्ष्टान्तिकनो भेद नथी तेथी दृष्टांत भिन्न आप्युं नथी, कारण के उच्छ्वास अने भाषामां पण प्रवेश निर्गमन वृत्ति इन्द्रियपर्याप्ति तुल्यज छे). त्यारबाद द्वार सहित घर बन्ये छते पण अहिं आसन (दिवानखानुं), अहिं सुवानुं (शय्यागृह), अने अहिं भोजन भुमि (भोजनगृह) पेसवा सूवा अने जमवानी क्रियाओ करवा माटे गृहस्थो विचारे छे (बनावे छे) तेनी पेठे हितनी प्राप्ति अने अहितना त्यागनी अपेक्षारूप लक्षणवाळी मनःपर्याप्ति जाणवी. ए प्रमाणे ए ६ पर्याप्तिओने जे कर्म बनावे ते कर्म पर्याप्ति नामकर्म ते भट्ठीमां मूकेला तैयार थयेला घट सरखुं जाणवुं अने अपर्याप्ति नामकर्म तो नहिं बनेल अने बनेल पण विनाश पामवा योग्य घटतुल्य छे, घट सरखुं छे. (इति तत्त्वार्थ भाषान्तर समाप्त. आ भाषान्तरमां कौंसमां आवेला शब्दो लेखकना छे).

पर्याप्तिओनो प्रारंभ अने पूर्णता क्यारे थाय ?

६ पर्याप्तिओमां प्रथमनी ३ पर्याप्तिओनुं कार्य (शक्ति अने शक्तिथी थतुं कार्य) प्रथम समयथीज प्रारंभायुं छे, अने उच्छ्वा-

सादि ३ पर्याप्तिओनुं कार्य जे उच्छवासादि वर्गणाओनुं ग्र
ते उच्छवासादि पर्याप्तिरूप पुद्गलो रचाया बाद थाय छे.
न्तु ते उच्छवास पर्याप्ति स्वरूप पुद्गलोनी रचना प्रारंभ तो प्रथ
समयथीज शरु थयेलो छे, माटे सर्वे पर्याप्तिओनो पछे पर्याप्ति
सर्वेपि पुद्गलोनो रचना प्रारंभ तो प्रथम समयथीज शरु थयेलो
गणाय, परन्तु ते पर्याप्तिरूप पुद्गलोनी समाप्ति तो पूर्वे कह्या प्र
माणे अनुक्रमेज थाय छे. ते आ प्रमाणे—

प्रथम समये जे पुद्गलो सामान्य स्वरूपवाळां ग्रहण कर्यां ते पुद्गलोमांथी तेज समये केटलांएक पुद्गलोने शरीरपणे रचाव्यां, केटलांएक पुद्गलोनी अभ्यन्तर निर्वृत्तिइन्द्रिय बनावी, केटलांएक पुद्गलो उच्छवास करणरूपे रच्यां, केटलांएक पुद्गलो भाषाकरणरूपे रच्यां, अने केटलांएक पुद्गलो मनःकरणरूपे रच्यां, अने शरीरादिपणे नहि परिणमी शके एवां पुद्गलोनो बीजे समये त्याग करशे. ए प्रमाणे प्रथम समये पुद्गलो ग्रहण करवानी जे आत्मशक्ति ते पुद्गलोना ग्रहण निमित्ते प्रवर्ती ते " प्रथम समये आहारपर्याप्ति समाप्त थइ " एम कहेवाय.

शंका—पुद्गलोनो आहार तो प्रथम समय बाद पण चालु रहेवानो छे तो प्रथम समये आहारपर्याप्ति रूप शक्ति समाप्त थइ केम गणाय ?

उत्तर—ग्रहणकार्य भले तेटला काळ सुधी चालु रहे पण ग्रहणशक्ति तो ग्रहणकार्य चालु थवानी अपेक्षाए प्रथम समये संपूर्ण थइ गणाय. अने ते प्राप्त थयेली शक्ति जेटला काळ सुधी रहे तेटला काळ सुधी ग्रहणकार्य थवामां कंइ विरोध नथी.

शंका—प्रथम समये प्राप्त थयेली शक्तिवडे पुद्गल ग्रहण कर्या, के पुद्गलग्रहण वडे शक्ति आवी कहेवाय ?

उत्तर–प्रथम समये (आत्मामां प्रथमथी रहेली) शक्तिवडे पुद्गल ग्रहण कर्या एम कहेवाय.

शंका—जो एम होय तो पर्याप्ति के जे पुद्गलना आलंबनवडे कहेवाय छे ते न बनी शके !

उत्तर—ए वात सत्य छे, परन्तु (प्रथम समयनी) ग्रहणशक्ति तो तैजसकार्मणदेहना आलंबनथी जीवमां प्रथमथीज हती, परन्तु ते शक्ति उत्पत्ति स्थाने जीव आव्यो नहोतो त्यां सुधी कार्य करनारी न हती, अने हवे उत्पत्तिस्थाने (ग्रहण करवा योग्य पुद्गलोना स्थानमां) आववाथी ते शक्ति स्वकार्य करनारी थइ ए हेतुथीज प्रथम समये आहारग्रहण शक्ति प्राप्त थइ गणाय. ए प्रमाणे शरीरादि रचनानी शक्ति अने शरीर रचनानी शरूआत पण जीवमां प्रथम समयथीज छे, परन्तु ते शरीर विगेरे ज्यां सुधी स्वकार्य सामर्थ्य पूरतुं न रचाय त्यां सुधी शरीरादिक वडे जीव अपर्याप्त गणाय, अने शरीरादि स्वकार्य सामर्थ्य जेटलुं रचाइ रहे त्यारे शरीरपर्याप्त (शरीरारम्भ द्वारा उत्पन्न थयेली जीवशक्तिवालो) गणाय. शरीर जो के उत्पत्तिना प्रथम समयथी आगल सुधी प्रतिसमय रचाया करशे, परन्तु स्वकार्य सामर्थ्य पूरतुं रचावाना कारणथी " शरीरपर्याप्ति समाप्त थइ" अथवा " शरीर निष्पत्ति थइ " इत्यादि व्यपदेश थइ शके. ए प्रमाणे अभ्यन्तरनिर्वृत्तिइन्द्रिय स्वकार्य सामर्थ्य पूरती रचाय अने तेथी जीव अभ्यन्तरनिर्वृत्तिइन्द्रिय द्वारा शब्दादि विषय जाणवा समर्थ थाय के तुर्त "इन्द्रियपर्याप्ति अथवा इन्द्रियरचना समाप्त थइ" एम गणाय. वली ए प्रमाणेज उच्छ्वास विगेरे वडे ग्रहणादि कार्य थइ शके तेटलां उच्छ्वासादि करणनां (औदारिकादिनुं २ वर्गणाओथी रचायलां) पुद्गलो रचाइ रहे त्यारे " उच्छ्वासादि

पर्याप्ति समाप्त थइ एवो व्यपदेश थाय.

शंका—आहार पर्याप्तिना अर्थमां " जे शक्ति वडे आ
द्गलो खलरस पणे परिणमे ते आहार पर्याप्ति" एमां खलरस
णमन ते शुं? कारणके मलादि रूप विशिष्ट खल तो शरीर पर्याप्तिने
आहारथी पण न संभवे तो ते वखतना ओजस् आहारथी केम हो
वळी जेमांथी हाड विगेरे बने छे ते रस तो मात्र औदारिक शरी
त्रस जीवो ने ज होइ शके छे तो दरेक जीवमां ए आहार पर्याप्ति
नो अर्थ केवी रीते जाणवो?

उत्तर— ग्रहण करेलां पुद्गलोमांथी जे योग्य पुद्गलो छे ते
शरीरादि रूपे रचवा, अने अयोग्य पुद्गलोने अलग करवा ते खल
रस परिणमन कहेवाय. मात्र मळ मुत्रने ज खल अने हाड विगे
जेमांथी बनी शके ते रस एवो एकान्त अर्थ नथी. ए अर्थ तो मुख्य-
त्वे त्रस जीवनी औदारिक शरीर संबन्धी पर्याप्तिओ आश्रयी क-
वलाहारने अंगे जाणवो.

शंका—शरीरपर्याप्ति रचाया बाद जे शरीरनिष्पत्ति कहे-
वाय ते कया सामर्थ्यथी?

उत्तर—भवधारणीय काययोगनी प्रवृत्तिथी अने ते काय-
योग वडे शरीरद्वारा लोमाहार ग्रहण करवाथी नवा शरीरनी
निष्पत्ति थवा मांडे. अहिं शरीरपर्याप्ति समाप्त थया बाद भव-
धारणीय काययोग 'श्री शीलांकाचार्ये' मानेलो छे. अने 'पंचसंग्रहमां'
अन्य आचार्यना अभिप्रायथी शरीरपर्याप्ति बाद भवधारणीय काय-
योग मान्यो छे अने 'कर्मग्रंथादिकमां' तो पर्याप्तिने ज भवधारणीय
काययोग मान्यो छे. ॥ इति षष्ठ गाथा विस्तरार्थः ॥

अवतरण—पूर्व गाथामां कया जीवने केटली पर्याप्तिओ
होय ते कहीने हवे आ गाथामां पूर्वोक्त पर्याप्तिओथी थनारा भा-

वो (धर्मो जीवना पर्यायो) के जेना संयोगे तत्तद्देहनिवास रूप जीवनुं जीवन तथा जेना वियोगे मरण कहेवाय छे तेमज जीव जेना वडे ओळखाय अथवा कहेवाय एवां बाह्य लक्षणो अने ते बाह्य लक्षणो कया जीवने केटलां होइ शके ते पण कहेवाय छे.

पणिंदियतिबलूसा–साऊ दस पाण चउ छसगअट्ठ॥
इगदुतिचउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव दस य ॥७॥

संस्कृतानुवादः

पंचेन्द्रियत्रिबलोच्छ्वासा[युं]षि दश प्राणाश्चत्वारःषट् सप्ताष्टौ॥
एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणा–मसंज्ञिसंज्ञिनां नव दश च ॥७॥

शब्दार्थः

पणिंदिय–पांच इन्द्रियो	अट्ठ–आठ
ति–त्रण	इग–एकेन्द्रिय जीवोने
बल–बळ, योग,	दु–द्वीन्द्रियने
ऊसास–श्वासोच्छ्वास	ति–त्रीन्द्रियने
आऊ–आयुष्य	चउरिंदीणं–चतुरिन्द्रियने
दस–दश	असन्नि–असंज्ञि पंचेन्द्रियने
पाण–प्राणो छे.	सन्नीण–संज्ञिपंचेन्द्रियने
चउ–चार	नव–नव
छ–छ	दस–दश
सग–सात	य–अने (वा पादपूरणार्थे)

गाथार्थः—५ इन्द्रियो, ३ बळ (योग), १ श्वासोच्छ्वास, अने १ आयुष्य ए १० प्राणो छे, तेमांथी एकेन्द्रियने ४, द्वीन्द्रियने ६, त्रीन्द्रियने ७, चतुरिन्द्रियने ८, असंज्ञि पंचेन्द्रियने ९, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने १० प्राण होय छे.

विस्तरार्थः—पूर्वगाथामां पर्याप्तिनुं वर्णन कर्याबाद हवे आ गाथामां ते पर्याप्तिनां कार्यरूप प्राणोनुं विवेचन कराय छे.

॥ ५ इन्द्रिय ५ प्राणो. ॥

आत्मा जे इन्द्रियोद्वारा विषय (पदार्थ) जाणी शके छे, ते इन्द्रियो स्पर्शन–रसना–घ्राण–चक्षु अनेश्रोत्र ए प्रमाणे पांच छे. इन्द्रिय शब्द इन्द्र उपरथी बनेलो छे, इन्द्र एटले आत्मा तेनुं जे चिह्न ते इन्द्रिय कहेवाय, ते इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय अने भावेन्द्रिय एम बे प्रकारे छे, पुनः निर्वृत्ति अने उपकरण एम द्रव्येन्द्रिय बे प्रकारनी छे, पुनः निर्वृत्ति अने उपकरण द्रव्येन्द्रिय पण अभ्यन्तर अने बाह्य एम बेबे प्रकारनी छे, तथा लब्धिभावेन्द्रिय अने उपयोगभावेन्द्रिय एम भावेन्द्रिय पण बे प्रकारनी छे, तेनी भेद स्थापना आ प्रमाणे छे.

- ५ इन्द्रिय
  - द्रव्येन्द्रिय
    - निर्वृत्ति
      - अभ्य०
      - बाह्य
    - उपकरण
      - अभ्य०
      - बाह्य
  - भावेन्द्रिय
    - लब्धि
    - उपयोग

॥ इन्द्रियभेदना अर्थ. ॥

इन्द्रियोने स्थाने इन्द्रियोने आकारे गोठवायला विषय ग्रहण करवानी शक्तिवाळा अतिस्वच्छ पुद्गलो (इन्द्रियना पुद्गलो) अथवा आत्मप्रदेशो ते 'अभ्यन्तरनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय' कहेवाय. जेम चक्षुमां कीकी इत्यादि, एमां अभ्यन्तर स्पर्शननिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियनो आकार दरेक जीवनो देहना आकारसरखो होय छे, इत्यादि सर्व

जीवोने अभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियना आकारो नियतज होय छे, जे आगळ कहेवाय छे.

इन्द्रियोने स्थाने देखातो कर्णपर्पटिकादि बाह्य अंगनो आकार ते 'बाह्यनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय,' जेम चक्षुना डोळा इत्यादि, ए बाह्य अंगरचनारूप इन्द्रियोनो आकार दरेक जीवने जुदी जुदी जातनो होय छे. आगळ कहेवाता इन्द्रियोना आकार आ बाह्यनिर्वृत्तिना नहि पण अभ्यंतरनिर्वृत्तिना जाणवा. अहिं बन्ने स्थाने ' निर्वृत्ति एटले रचना ' अर्थात् इन्द्रियोनी जे अंदरना भागनी रचना ते अभ्यन्तरनिर्वृत्ति अने इन्द्रियोनी बहारनी जे रचना ते बाह्यनिर्वृत्ति कहेवाय, अथवा निर्वृत्ति एटले आकृति एवो अर्थ करतां इन्द्रियोनी अंदरना भागनी जे चक्षुगोचर न थइ शके तेवा सूक्ष्म अने स्वच्छ पुद्गलोनी अथवा आत्मप्रदेशोनी जे आकृति ते अभ्यंतरनिर्वृत्ति अने बहारना भागमां सर्वने साक्षात् देखाता कर्णपर्पटिका (कानपापडी) विगेरे आकृति ते बाह्यनिर्वृत्ति [1] कहेवाय.

इन्द्रियनी अभ्यन्तर आकृतिमां (अभ्यन्तरनिर्वृत्ति द्रव्येन्द्रियमां) रहेली जे विषय ग्रहण करवानी शक्ति ते 'अभ्यन्तर उपकरणेन्द्रिय' कहेवाय. अहिं (उपकरण एटले) इन्द्रियने विषय ग्रहण करवामां उपकार करनार जे शक्तिविशेष ते उपकरण कहेवाय, जेम श्रोत्रेन्द्रियनी श्रवणशक्ति अने रसनेन्द्रियनी आस्वादनशक्ति.

तथा जीवने इन्द्रिय द्वारा विषयबोध करवानी जे शक्ति, (अथवा इन्द्रियावरण कर्मनो क्षयोपशम) ते 'लब्धि भावेन्द्रिय' कहेवाय.

---

१ कर्णेन्द्रियादिनी जेम पर्पटिकादि बाह्य आकृति छे तेवी रीते स्पर्शेन्द्रियनी बाह्य आकृति जुदी नहि होवाथी स्पर्शेन्द्रियनो अभ्यन्तराकार अने बाह्याकृति एकज छे.

तथा जीव ते इन्द्रियना उपयोगमां (विषय ग्रहणमां) व-
र्ततो होय ते इन्द्रिय 'उपयोग भावेन्द्रिय' कहेवाय. पूर्वे कहेल ल-
ब्धि तो एक जीवने पांचे इन्द्रियोनी एकीसाथे (समकाले) हो-
य छे, परन्तु ते विषयावबोध करवानो व्यापार तो एक समये ए-
कज इन्द्रियद्वारा होवाथी एक जीवने समकाले लब्धिथी पांचे
इन्द्रियो गणाय छे अने उपयोगथी एक जीवने एकज इन्द्रिय कहेवाय
अथवा एकेन्द्रियादि सर्व जीवोने लब्धि तो (इन्द्रियावरणक्षयोप-
शमथी) पांचे इन्द्रियोनी होय छे, परन्तु द्रव्येन्द्रिय कोइने एक तो
कोइने बे ए प्रमाणे हीनाधिक छे, अने तेमां पण उपयोगतो ए-
कज इन्द्रियनो होय सर्वे छे ए हेतुथी सर्वे जीवो लब्धि इन्द्रियवडे
पंचेन्द्रिय छे, द्रव्येन्द्रियवडे एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ने
पंचेन्द्रिय छे, अने उपयोगेन्द्रियवडे सर्व जीवो एकेन्द्रिय छे एम व-
र्णन कराय. ॥ इति इन्द्रियभेदाः ॥

॥ इन्द्रियोनुं स्थान. ॥

स्पर्शेन्द्रियनुं स्थान सर्व शरीर छे. अर्थात् सर्वदेशमां उपरना
भागमां अने अंदरना भागमां स्पर्शेन्द्रियना (अभ्यन्तर निर्वृत्ति
स्पर्शेन्द्रियना)अणुओ (शुद्ध प्रदेशरूप आत्म प्रदेशो) व्याप्त थ-
येला छे, अथवा शरीरनी त्वचाना (चामडीना) बहारना भागमां
अने अंदर पण अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रियना परमाणुओ व्याप्त थयेला हो-
य छे. तेथीज पीधेला शीतल पाणीनो अंदरना भागमां पण अनु-
भव थाय छे, वळी ए इन्द्रिय अवयवना पड सरखी छे, त्यां त्व-
चानी बहारनुं अने अंदरनुं पड जुदुं नथी पण एकज छे.१ तथा मु-
खनी अंदर जे जिह्वा (बाह्य निर्वृत्ति रूप) देखाय छे ते जीह्वामां उ-
पर अने नीचेना भागमां रसनेन्द्रियना परमाणुओनुं (अभ्यन्तर

निर्वृत्तिनुं) एकज पड (अंगुलना असंख्यतमा भागनुं जाडुं) प-थराइ रहेलुं छे, ते इन्द्रिय परमाणुओना पडवडे जीह्वाथर आवेला खारा खाटा पदार्थनो अनुभव करी शकाय छे, परन्तु देखाती जी-भवडे खारा खाटा पदार्थना रसनो अनुभव जीवने होइ शके नहिं. २ तथा देखाती नासिकाना पोलाणमां उपरना भागमां अंगुलना अ-संख्यातमा भाग जेवडी घ्राणेन्द्रियनी अभ्यन्तर आकृति छे तेज गंध विषयने ग्रहण करी शके छे. ३ तथा चक्षुमां कीकीनी अंदर अंगुलना असंख्यातमा भागजेवडी सूक्ष्म अभ्यन्तर इन्द्रियाकृति छे तेज रूप वा आकार देखी शके छे, परन्तु आंखनी कीकी मात्र विषय ग्रहण करी शकती नथी. ४ तथा कर्णपर्पटिकाना पोलाणमां अंगुलना असंख्यातमा भाग जेवडी सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय पुद्गलोनी अभ्य-न्तर आकृति गोठवायली छे, जे शब्दने ग्रहण करी शके छे. ५

उपर प्रमाणे होवाथी त्वचा ए स्पर्शेन्द्रियनो आधार (स्थान) छे, पण त्वचा ए पोते स्पर्शेन्द्रिय नथी, पुनः जीह्वा ए रसनेन्द्रि-यनुं स्थान छे पण जीह्वा पोतेज रसनेन्द्रिय नथी. पुनः नासिका ए घ्राणेन्द्रियनुं स्थान छे पण नासिका पोते घ्राणेन्द्रिय नथी, तथा आंख-नेत्र ए चक्षु इन्द्रियनुं स्थान छे, पण आंख (डो-ळा के कीकी) पोते चक्षुइन्द्रिय नथी, तेमज कान ए कर्णेन्द्रियनुं स्थान छे पण कान पोते कर्णेन्द्रिय नथी ए प्रमाणे स्थान रूप बाह्य निर्वृत्ति अने विषय ग्रहण करनार अभ्यन्तर निर्वृत्ति बन्ने भिन्न छे एम समजवुं. ॥ इति इन्द्रियस्थानविचारः ॥

॥ अभ्यन्तरेन्द्रियना आकार. ॥

अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रिय जे जीवनुं जेवुं शरीर होय तेवा आका-रनी छे, अर्थात् भिन्न भिन्न आकारनी छे—अभ्यन्तर रसनेन्द्रिय

क्षुरप्राकारे (अस्त्राने आकारे) छे.—अभ्यन्तर घ्राणेन्द्रिय [1]काहल नामना वाजींत्र विशेषने आकारे छे. अथवा [2]अतिमुक्तकपुष्पना आकारे छे.—अभ्यन्तर चक्षुरिन्द्रिय मसुर वा चंद्र सरखा आकारवाळी छे.—अने अभ्यन्तर श्रोत्रेन्द्रिय कदंबवृक्षना पुष्प सरखा आकारनी मांसनी एक गोळी रूप छे. पुनः बाह्यनिर्वृत्ति इन्द्रियो (एटले इन्द्रियोनी बाह्य आकृतिओ) तो दरेक जातना जीवनी जुदी जुदी होवाथी नियमित आकार कही शकाय नहिं, जेमके कर्णेन्द्रियनी बाह्याकृति मनुष्यने बे चक्षुओने पडखे लंबवर्तुल जेवा नीचा भागयुक्त छीद्र सहित छे, अने अश्वनी बाह्य कर्णेन्द्रिय नीचेथी पहोळी अने उपरथी हीन थती छेडे अणीदार अने वळी गयेला पत्रवाळी चक्षुओनी पडखे उपर होय छे, अने हाथीनी तो वडन सूपडा सरखी बाह्यकर्णाकृति होय छे. ए प्रमाणे बाह्याकृतिओ (बाह्यनिर्वृत्तीन्द्रियो) दरेक जातिना जीवने भिन्न भिन्न होवाथी अमुक नियमित आकारनी कही शकाय नहिं, अने अभ्यन्तर आकृतिओ सर्व जीवने एक सरखा आकारवाळी होवाथी उपर कहेली छे.

॥ इन्द्रियोनी [3]लंबाइ पहोळाइ अने जाडाइ. ॥

अभ्यन्तर स्पर्शेन्द्रिय अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटली जाडी, अने स्वस्वदेह प्रमाण लांबी पोळी छे. जेथी ए इन्द्रियनुं अति पातळुं पड त्वचाना उपर अने अंदरना भागमां शुद्धं नहिं पण एकज पथरायलुं छे, परन्तु त्वचाना मध्य भागमां (एटले त्वचानी

1 पडघम वाजनुं वार्जीत्र.
2 अतिमुक्तक ए वृक्ष विशेष छे.
3 स्पर्शेन्द्रियनो संचार पोळाइ उत्सेधांगुलने अनुसारे छे. अने रसनेन्द्रियादिनी संचार पोळाइ आत्मांगुलने अनुसारे जाणवी. पुनः जाडाइ तो सर्वनी उत्सेधांगुलथी संबंधे छे. ए संबंधि विस्तार ग्रन्थान्तरथी जाणवो.

मध्य(जांडाइमां) ए इन्द्रियना अणुओ नथी. ए हेतुथी ए अभ्यन्
स्पर्शेन्द्रिय अंदरना भागमां (एटले त्वचाना मध्य भागमां) पोल
व' (सुषिरयुक्त–पोलाण वाळी) छे.—तथा रसनेन्द्रिय अंगुलना
असंख्यातमा भागप्रमाण जाडी, अने अंगुल पृथक्त्व (वधुमां वधु ९ आं
गळ) जेटली लांबी पहोळी छे. आ रसनेन्द्रियनुं पण अति पात
ळुं पड जिह्वाना उपर–नीचेना भागमां पथरायेलुं छे, पण मध्य भागमां
नहिं–तथा घ्राणेन्द्रिय अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटली जाडी अने
लांबी पहोळी छे, ए हेतुथी आ इन्द्रियनुं पातळुं पड नथी. पण तथाप्रका
रनो वृत्ताकार संभवे छे,—तथा चक्षु अने श्रोत्रेन्द्रियनी लंबाइ पहोळा
इ अने जाडाइ पण अंगुलना असंख्यातमा भागनी वृत्ताकारे छे,

॥ इन्द्रियोनो विषय अने विषय ग्रहण क्षेत्र. ॥

१ स्पर्शेन्द्रियनो विषय पदार्थमां रहेला स्निग्ध–रुक्ष–शीत उ
ष्ण–मृदु–कर्कश–गुरु–अने लघु ए आठ प्रकारना स्पर्श जाणवानो
छे. अने [१] ९ योजन दूर रहेला पदार्थोना तेमांथी नीकळे
ला केटलाक पुद्गलो आवी स्पर्शेन्द्रियने अडे छे तेथी ते
दूरना पदार्थोना पण स्पर्शने जाणी शके छे. एथी अधिक
दूर रहेला पदार्थोथी नीकळी आवेला स्पर्शयुक्त पुद्गलो स्वभा
वेज अयोग्य थवाथी स्पर्शेन्द्रिय ग्रहण करी शके नहिं. पुनः
[२] स्निग्धादि स्पर्शो तो प्राप्त पदार्थना अनुभवी शके एम संभवे छे.

२ रसनेन्द्रियनो विषय पदार्थोमां रहेला मीठा–कडवा–मधुर
खाटा–तूरा (तिक्त–कटु–मधुर–आम्ल–अने कषायलो) ए पांच
प्रकारना रस जाणवानो छे, अने नव योजन दूर रहेला पदार्थोना तेमां

---

१ आहिं कहेवातुं विषयोनुं क्षेत्र आत्मांगुलने अनुसारे जाणवुं.
२ ए वातनो स्पष्ट उल्लेख ग्रंथान्तरोमां देखातो नथी पर
न्तु अनुभव सिद्ध थवाने होवाथी लखेल छे.

थी नीकळेला केटलाक पुद्गलो आवी रसनेन्द्रियने अडेछे तेथी ते दूर पदार्थोना पण रसने रसनेन्द्रिय ग्रहण करेछे, अने अधिक दूर रहेल पदार्थोमांथी नीकळेला रसयुक्त पुद्गलो स्वभावेज रसनेन्द्रियने अयो न्य थाय छे. (अहिं खारो रस मधुररसमां अंतर्गत जाणवो.)

३ घ्राणेन्द्रिय पदार्थोमां रहेल सुगंध वा दुर्गंधने जाणी शके छे. अने ९ योजन दूरथी आवेलो गंध ग्रहण करी शके छे. पूर्वनी माफक योग्यायोग्यत्वनी भावना विचारी लेवी.

४ चक्षु इन्द्रिय पदार्थोना रूप–वर्ण अने आकारने देखी शके छे. अने ते वधुमां वधु लाख योजन दूर रहेला निस्तेज पदार्थोने देखी शके छे, अने चंद्र सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोने तो घणा लाख (२१ लाख उपरांत योजन दूरथी पण पुष्करार्धना मनुष्यो) देखी शके छे. आ रूप पण कृष्ण–नील–पीत–रक्त अने श्वेत (काळो– लीलो– पीळो–लाल– अने धोळो) एम ५ प्रकारे छे.

५ श्रोत्रेन्द्रिय [1]सचित्त [2]अचित्त अने [3]मिश्र शब्द–अवाजने सांभळी शके छे, अने ते १२ योजन दूरथी आवेल शब्दने सांभळी शके छे. ए प्रमाणे उत्कृष्ट क्षेत्रमर्यादा कही, अने जघन्य (लघुमां लघु) क्षेत्रमर्यादा आ प्रमाणे—चक्षु इन्द्रिय अंगुलना संख्यातमा भाग जेटले दूर रहेलो पदार्थ देखी शके, अने शेष इन्द्रियो अं-

---

१ सजीव वस्तुमांथी प्रगट थयेलो शब्द सचित्त गणाय जेम जीवनो.

२ निर्जीव वस्तुमांथी प्रगट थयेलो शब्द अचित्त गणाय जेम पथरानी साथे अफळायला पथ्थरनो.

३ जीव प्रयत्नथी थयेलो निर्जीव पदार्थनो शब्द मिश्र गणाय. जेम मोंढाथी वागती भूंगळ वगेरेनो, अहिं प्रसंगे ८ स्पर्श-५ रस-२ गंध-५ रूप (वर्ण)-अने ३ शब्द मळी पांच इन्द्रियोना २३ विषयो पण कह्या.

गुलना असंख्यातमा भाग जेटले दूरथी आवेला विषयने ग्रहण करी (अनुभवी) शके.

॥ इन्द्रियोनुं प्राप्यकारी अने अप्राप्यकारी पणुं. ॥

स्पर्शेन्द्रिय-रसनेन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-अने श्रोत्रेन्द्रिय ए चार इन्द्रियो पोताने प्राप्त थयेला विषयनेज ग्रहण करी [जाणी] शके छे माटे प्राप्यकारी छे, कारणके स्पर्शेन्द्रियने उष्ण वा शीत जळनो स्पर्श थया विनाय (बन्नेनो परस्पर संबंध थया विनाय) जळनी उष्णता अथवा शीतळता मालूम पडती नथी. ए प्रमाणे रसनेन्द्रियादिमां इन्द्रिय अने विषयनो परस्पर संबंध थाय तोज ते विषयनो अनुभव थइ शके छे माटे प्राप्यकारी छे.

तथा चक्षु अने मन ए बे इन्द्रियो अप्राप्त विषयने (स्पर्शने पोताने संबंध करीने रहेला विषयने नहिं पण दूर रहेला विषयने) अनुभवी शके छे (देखी या चींतवी शके छे) माटे अप्राप्यकारी छे. कारणके चक्षुमां पडेलुं तृणखलुं चक्षु देखी शके नहिं, अने मन जे पदार्थने चिंतवे छे ते पदार्थो[1] मनः पुद्गलोनी साथे आवीने संबंधवाळा थता नथी, तेमज मनना पुद्गलो पण त्यां जइने लागता नथी, माटे ए बन्ने अप्राप्यकारी छे. (अहिं प्रकरण इन्द्रियोनुं चाले छे, तोपण अप्राप्यकारीपणाने प्रसंगे मन नोइन्द्रिय होवा छतां पण मननुं अप्राप्यकारीपणुं कह्युं.)

॥ इन्द्रियोना अणु तथा क्षेत्रनुं अल्पबहुत्व. ॥

सर्व इन्द्रियो (अभ्यन्तर इन्द्रियो) [illegible] प्रमाणनी बरा-

१ मन ए पुद्गलस्वरूप छे ते संबंधी वधु विवेचनमां [illegible]
[illegible]

छे, तथा असंख्य आकाश प्रदेश जेटला क्षेत्रमां रहेली छे तोपण प
स्पर हीनाधिकता कहेवाय छे—चक्षु इन्द्रिय संबंधी ओछा (प
असंख्य) आकाश प्रदेशमां रहेली छे. अर्थात् चक्षु इन्द्रियनुं 'क
द संबंधी नानुं छे, तेथी कर्णेन्द्रिय संख्यातगुणी मोटी छे, तेथी घ्रा
णेन्द्रिय संख्यातगुण मोटी छे. तेथी रसनेन्द्रिय 'असंख्य गुण मो-
टी छे, अने तेथी स्पर्शेन्द्रिय 'संख्यात गुण मोटी छे, तथा चक्षुरिन्द्रिय
अल्प परमाणुनी बनेली छे, तेथी श्रोत्रेन्द्रिय संख्यात गुण परमाणु-
नी बनेली छे, तेथी घ्राणेन्द्रिय असंख्य गुण परमाणुनी बनेली छे,
तेथी जीह्वा असंख्य गुण परमाणुनी बनेली छे, अने तेथी स्पर्शेन्द्रिय
असंख्यगुण परमाणुओनी बनेली छे.

पुनः संज्ञी जीवनां आ इन्द्रियो विषय ग्रहण करी मनने आपण
करे, अने ते मनद्वारा जीवने विषयबोध थाय, परन्तु मन विना
इन्द्रिय मात्रथी ज संज्ञी जीवने विषयबोध न होय, अने असंज्ञि
जीवो तो मननी सहाय विना पराधीन इन्द्रियद्वारा विषयबोध
करी शके छे.

॥ कई इन्द्रिय कया जीवने होय ?॥

स्पर्शेन्द्रिय सर्व संसारी जीव मात्रने होय, रसनेन्द्रिय पृथ्वी

१ अहिं वर्ष ते संख्या पोळाइरूप समजवुं पण आकार-
रूप नहिं. कारणके आकार तो सर्वेनो अंगुलनो असंख्यातमो
भाग ज छे.

२ अंगुलना असंख्यातमा भाग करतां अंगुल पृथक्त्व अ-
संख्यगुण मोटुं होवाथी.

३ १ आत्मांगुलथी ९ गाउ (स्पर्शेन्द्रिय विषयनां वधु
९ गाउ मोटो होवाथी) एटले ७३१००० उत्सेध अंगुल संख्यात
गुण होवाथी.

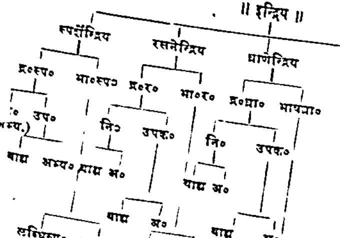
जळ अग्नि वायु ने वनस्पति ए पांच स्थावर सिवाय सर्व जीवने होय, घ्राणेन्द्रिय स्थावर अने बेइन्द्रिय सिवायना सर्व जीवने होय, चक्षु इन्द्रिय स्थावर-बे इन्द्रिय-अने तेइन्द्रिय सिवाय सर्व जीवने होय, अने श्रोत्रेन्द्रिय फक्त पंचेन्द्रिय जीवोने ज होय.

॥ कइ इन्द्रियो अल्प अने कइ अधिक छे ? ॥

आ जगतमां श्रोत्रेन्द्रियनी संख्या अल्प छे (कारणके पंचेन्द्रिय जीवो थोडाज छे), तेथी चक्षु इन्द्रिय विशेषाधिक छे (परंतु विगुणथी न्यून छे.), तेथी घ्राणेन्द्रिय विशेषाधिक छे, तेथी रसनेन्द्रिय विशेषाधिक छे, तेथी स्पर्शेन्द्रिय अनंत गुण छे. (कारणके साधारण वनस्पति अनंत छे)'

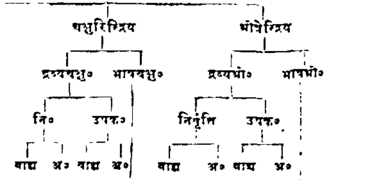
ए प्रमाणे ५ इन्द्रिय प्राणनुं किंचित् स्वरूप कहीने हवे छट्ठा मनोबळ प्राणनुं स्वरूप कहेवाय छे.

॥ इन्द्रियोना २९ भेदनी



• स्पर्शेन्द्रियमां द्रव्यनिर्वृत्तिना बाह्य अने अभ्यन्तर एवा बे भेद नथी. अथवा केवळ अभ्यन्तर निर्वृत्तिस्पर्शेन्द्रिय छे. पण बाह्यनिर्वृत्तिस्पर्शेन्द्रिय नथी.

स्थापना. ॥


चक्षुरिन्द्रिय
श्रोत्रेन्द्रिय
द्रव्यचक्षु०
भावचक्षु०
द्रव्यश्रो०
भावश्रो०
नि०
उपक०
निर्वृत्ति
उपक०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
बाह्य
अ०
लब्धिचक्षु
उपयोगच०
लब्धिश्रोत्रे०
उपयोगश्रोत्रे०

॥ इन्द्रियोमां १ द्वारनो यन्त्र. ॥

(४ द्वारां.)

इन्द्रियोनां नाम.	जाडाइ प्रमाण ? १	विस्तार प्रमाण? २	जघन्ये केटले दूर रहेलो विषय ग्रहे? ३	प्राप्यकारी के अप्राप्यकारी ? ४
स्पर्शेन्द्रिय. १	अंगुलासंख्ये० भा०	स्वदेहप्रमाण.	अंगुलासंख्येयभाग.	प्राप्यकारी.
रसनेन्द्रिय. २	"	आत्मांगुलपृथक्त्व	"	"
घ्राणेन्द्रिय. ३	"	आत्मांगुलनो असंख्यातमोभाग.	"	"
चक्षुरिन्द्रिय. ४	"	"	अंगुलसंख्येयभाग.	अप्राप्यकारी.
श्रोत्रेन्द्रिय. ५	"	"	अंगुलासंख्येयभाग.	प्राप्यकारी.

(८ द्वारो.)

उत्कृष्टथी केटलेदूर रहेलो विषय ग्रहे ? ५	बद्धस्पृष्ट-स्पृष्ट के अस्पृष्ट विषय ग्रहे ? ६	अवगाहनानुं अल्पबहुत्व ? ७	केटला प्रदेशनी बनेली ? ८	द्रव्येन्द्रियो केटली? ९
९ योजन(आत्मांगुलथी)	बध्धस्पृष्ट	रसने०थी संख्यगुण.	रसने०थी असंख्य गुण	१
,,	,,	घ्राणे०थी असंख्यगुण	घ्राणे०थी असंख्य गुण	१
,,	,,	श्रोत्रथी संख्येयगुण	श्रोत्रथी असंख्यगुण.	२
साधिक१ लाखयोजन (अभास्वर वस्तु आश्रयी)(आत्मांगुलथी)	अस्पृष्ट	सर्वथी अल्प अवगाहनावाळी	अनंतप्रदेशी.	२
१२योजन(आत्मांगुले)	स्पृष्ट	चक्षुथी संख्येयगुण	चक्षुथी संख्येय गुण.	२

॥ छट्ठो मनबल प्राण. ॥

जे द्वारा संज्ञि जीव मनन चिंतवन करी शके ते मन कहेवाय. ए मन मनोवर्गणा रूप पुद्गलपरमाणुओना समुदायनुं बने छे. वळी ए मन मात्र गर्भज तथा औपपातिक (देव-नारक) जीवोनेज होय छे, मन पण द्रव्यमन अने भावमन एम बे प्रकारनुं छे. त्यां मनःपर्याप्ति नामकर्मना उदय थडे काययोगे मनोयोग्य वर्गणा (पुद्गल समूह) ग्रहण करीने चिन्तवनव्यापारमां जोडावेल मनो योग वडे मनपणे (चिंतवन व्यापारना साधन पणे) परिणमावी, अवलंबीने विसर्जन करे ते (अथवा अपेक्षाए तेनी पर्याप्तिनो) पुद्गल समूह [1] द्रव्यमन कहेवाय, अने ए बन्ने प्रकारना द्रव्यमन रूप पुद्गलपरमाणुना आलंबन वडे (सहाय वडे) जीवनो जे चिंतवन व्यापार ते [2] भावमन कहेवाय. ए हेतुथी

---

१ मनपर्याप्तिनामकर्मोदयतो जोग्गे मणोदव्वे घेतुं मनत्तेण परिणामिया दव्वा दव्वमणो भण्णइ । इति लोकप्रकाशे नंदिअध्ययनचूर्णि पाठ.)तथा श्री तत्त्वार्थसूत्रमां मनःपर्याप्तिरूप करण पुद्गलो के जेने सर्वात्मप्रदेशवर्ती कह्यां छे ते पण अपेक्षाए द्रव्यमन कहेवाय, कारणके मनोयोगीने जे द्रव्यमन कह्युं छे ते मनोवर्गणारूप नहि पण मनःपर्याप्तिरूप संभवे छे. (दिगंबरो द्रव्य मनने अष्टदलपद्माकार हृदयस्थाने रहेलुं माने छे परन्तु एक देश भागमां रहेला मनःकरणथी उपयोग प्रवृत्ति न संभवे, कारणके उपयोग प्रवृत्ति तो सर्व आत्मप्रदेशवर्ती होय छे माटे मनने हृदयस्थानमां मानवुं युक्त न गणाय तेम ज सुखदुःखादिना अनुभवरूप मानसज्ञान सर्वात्मप्रदेशे संभवे छे. वळी सर्व बाह्य-अभ्यन्तर स्पर्शनेन्द्रियथी सर्व प्रदेशे स्पर्शज्ञान थाय छे ते पण मनना सर्वात्मप्रदेशव्यापकत्व विना होइ शके नहि. माटे मनने वैयाधिकादिनी माफक अमुक मानवुं के नियतदेशस्थ मानवुं ते केवळ अनुचित छे.) अहिं मननुं विसर्जन मनोयोगवडे गणाय छे.

२ मनद्रव्यालंबनो जीवस्स मणवावारो भावमणो भण्ण

द्रव्यमन विना भावमन न होय पण भावमन विना द्रव्यमन भवस्थ सर्वज्ञने होय छे, ए मननो जे व्यापार ते मनोबल कहेवाय. अथवा जीवने प्राप्त थयेली जे मनोविज्ञान शक्ति ते मनोबल प्राण कहेवाय.

॥ सातमो वचनबल प्राण. ॥

भाषापर्याप्ति नामकर्मना उदयथी भाषा योग्य पुद्गलवर्गणा काययोगे ग्रहण करीने भाषापणे परिणमावी अवलंबी ने [1]वचन योग वडे विसर्जन करवानी जे शक्ति ते वचनबल कहेवाय. अथवा संक्षेपमां " जीवने वचनोच्चार करवानी जे शक्ति ते वचनबल प्राण कहेवाय. ए भाषा जीवभाषा कहेवाय. अने अजीव पदार्थमांथी उठतो अवाज ते अजीवभाषा कहेवाय, ए बन्ने भाषा पुद्गलपरमाणुनोज समूह छे, छतां नैयायिक विगेरे जे आकाशनो गुण माने छे ते अयुक्त छे, कारणके भाषा वायु वडे वहन कराती (खेंचाती) होवाथी, धूमनी माफक संहरण कराती होवाथी, पाणीनी माफक द्वारनी तरफ अनुसरण करती होवाथी, वायुनी माफक गुफा विगेरेमां अफलाती होवाथी क्रियावाळी छे, अने विचित्र क्रियाओ पुद्गल विना होइ शके नहि, माटे [2]रूपी छे. अने अरूपि तथा

(नथैव). तत्त्वार्थ अने नन्दीटीका विगेरेमां द्रव्यमन विना पण विकलेन्द्रियो तथा एकेन्द्रियोने सूक्ष्म भावमनोलब्धि मानी छे. क्वचित् सूक्ष्म द्रव्य मनोलब्धि पण विकलेन्द्रियोने मानवामांआवी छे.

१ गिण्हइ य काइएणं, निसरइ तह वाइएण जोगेण. इतिवचनात्.

२ शब्द फोनोग्राफमां ग्रहण थतो होवाथी अने वायु जे तरफ विशेष होय ते तरफ वधु संभळातो होवाथी, अने भित्यादिथी उपघात पामवाथी शब्द पुद्गलरूप छे. कारणके ग्रहण थवुं, वायुथी खेंचावुं, अने प्रतिघात थवो ते पुद्गलोनोज धर्म छे.

अक्रिय छे, माटे बधी भाषाओ रूपी एवा पुद्गलनो ज विकार छे, पण आकाशनो गुण नथी. पुनः जीवभाषानी उत्पत्ति औदारिक वैक्रिय अने आहारक ए त्रण भव प्रत्ययिक देहथी होय छे, अने ए देहमांथी जीवप्रयत्न वडे प्रगट थयेली भाषा जघन्यथी अंगुलना असंख्यातमा भाग सुधी, अने वधुमां वधु केवलि समुद्घातनी पेठे प्रथम समये 'दंड' द्वितीय समये 'कपाट' तृतीय समये 'मंथान' अने चतुर्थ समये 'अंतर पूर्ति' थवाथी 'सुमतिष्ठ आकार सरखा चौदराज लोकमां व्याप्त थाय छे, जेथी जीवभाषानी आकृति सुमतिष्ठक सरखी गणाय छे. पुनः जीव भाषापुद्गलोने प्रथम समये ग्रहण करे छे, अने बीजे समये वचनरूपे परिणमावी विसर्जन करे छे, ए हेतुथी भाषानी स्थिति एक 'समय मात्रनी छे, अने वाद्य प्रवाहरूपे तो उत्कृष्टथी अन्तर्मुहूर्त सुधीनी छे. पुनः जीव जे दिशा सन्मुख मुख करीने उभो होय ते दिशामां रहेल बीजो जीव ते मूळ तथा वासित थयेली भाषा सांभळे छे, अने शेष दिशामां रहेलो जीव ते मूळ भाषा वडे वासित थयेली भाषा (मूळ भाषाना संसर्गथी भाषा रूप थयेल बीजां पुद्गलो) सांभळी शके छे, ए मूळ भाषानो अंबा-

१ उंधा पाडेला शरावला (कोडीआ) उपर मूकेला शरावसंपुट वडे जे आकार थाय ते सुमतिष्ठाकार

२ श्री प्रज्ञापनानां भाषापदनी मलयगिरिवृत्तिमां केटलाएक आचार्योना मतात्वने उद्देशीन कह्युं छे के – बीजा आचार्यो आ प्रमाणे कहे छे के प्रथम भाषा परिणामनी अपेक्षाए एक समय स्थिति वाळां पण भाषा पुद्गलो कह्यां छे, पुद्गलनो परिणाम विचित्र छे तेथी एकज प्रयत्न वडे ग्रहण करावेलां अने मूकावेलां पुद्गलोनां केटलांएक एक समय भाषापणे रहे छे, केटलांएक बे समय सुधी यावत् केटलांएक असंख्य समय सुधी पण ; भाषापणे रहे छे—इति टीका:) ? इति कथंः

इ वधुमां वधु वक्रना उभो होय त्यांथी लोकना अन्त सुधी छे, अने प्होळाइ वक्राना मुख जेटली लगभग चार आत्मांगुल प्रमाण अने जाडाइ वक्रानुं मुख बोलती वखते जेटलुं प्होळुं थाय तेटली जाणवी. इत्यादि जीवभाषानुं विशेष स्वरूप विशेषावश्यक विगेरे ग्रन्थोमां प्रगट छे. पुनः अजीवभाषाना तत वितत विगेरे भेदो छे जे आगळ पुद्गल परिणामना स्वरूपमां कहेवाशे.

॥आठमो कायबल प्राण.॥

काय एटले शरीरनो जे व्यापार अथवा शक्ति ते जीवोने कायबल प्राण कहेवायछे, त्यां शरीर औदारिक–वैक्रिय–आहारक–तैजस–अने कार्मण ए प्रमाणे पांच प्रकारनां छे तेनो संक्षिप्त अर्थ आ प्रमाणे–

रस–रुधिर–मांस–मेद–मिंजा–हाड–अने वीर्य ए सात धातुओनुं बनेलुं जे शरीर ते औदारिक शरीर, अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गलनुं बनेलुं जे शरीर ते औदारिकशरीर, अथवा तीर्थंकर गणधर चक्रवर्ती वासुदेव विगेरे उदारगुणवाळा महात्माओने पण जे शरीर होयछे ते औदारिकशरीर कहेवाय. १ ॥

विविधप्रकारनी क्रिया करवानी शक्तिवाळुं जे शरीर ते वैक्रियशरीर, कारणके ए शरीरवाळो जीव खेचर (गगन मार्गे चालनार) थाय, अने भूचर (जमीनपर चालनार मनुष्यादि रूपे) थाय, एक थाय अने अनेक पण थाय, मोटो थाय अने नानो पण थाय, हलको थाय अने भारी पण थाय, दृश्य थाय अने अदृश्य पण थाय, एमप्रमाणे विविध प्रकारनी क्रियाओ करी शके छे माटे वैक्रिय शरीर कहेवाय, अथवा वैक्रिय नामनी पुद्गलवर्गणानुं बनेल शरीर ते वैक्रिय शरीर कहेवाय. २ ॥

तथाविध लब्धिवाळा चौदपूर्वधर मुनिराज श्रीजिनेश्वरनी ऋद्धि देखवाने माटे, अथवा सूक्ष्म अर्थनो संदेह दूर करवाने माटे एक ह-स्तममाण (आहारक पुद्गलवर्गणानुं) नवुं शरीर बनावी विचर-ता तीर्थंकर भगवान पासे मोकले ते आहारक शरीर कहेवाय. ३ ॥

खावेला आहारने पाचन करवानी शक्तिवाळु अने तेजोलेश्या त-था शीतलेश्याना कारणरूप जे शरीर ते तैजस शरीर कहेवाय. आ-शरीरना प्रभावे देहमां उष्णता रहे छे. ४ ॥

मतिज्ञानावरणादि १५८ कर्मप्रकृतिना पिंड रूप जे शरीर ते कार्मणशरीर कहेवाय. पुनः आ शरीर पोताने अने शेष चार शरी-रने पण उत्पन्न करवामां, भवान्तर जवामां अने प्रथम समये आहा-रपुद्गलो ग्रहण करवामां कारणरूप छे. ५ ॥

॥ पांच शरीरमां कारणभेद. ॥

औदारिक शरीर बादर (स्थूल) पुद्गलनुं बनेलुं छे. वैक्रियशरीर तेथी सूक्ष्म पुद्गलनुं बनेलुं छे, आहारक शरीर तेथी पण सूक्ष्म पुद्गलनुं बनेलुं छे, तेथी तैजस सूक्ष्मपुद्गलनुं. अने तेथी पण कार्मणशरीर अति सूक्ष्मपुद्गलनुं बनेलुं छे. ॥

॥ पांच शरीरमां प्रदेशसंख्या. ॥

औदा० शरीर अतिअल्प परमाणुओनुं बनेलुं छे, वैक्रियश-रीर तेथी असंख्यगुण परमाणुओनुं, आहारकशरीर तेथी असंख्य-गुण परमाणुओनुं, तैजस शरीर तेथी अनंतगुण परमाणुओनुं, अने कार्मण शरीर तेथी पण अनंतगुण परमाणुओनुं बनेलुं छे.

॥ पांच शरीरना स्वामी. ॥

औदा० शरीर सर्वतिर्यंच अने सर्वमनुष्यने होय, वै० शरीर

सर्वदेव सर्वनारक वै० लब्धिवंत गर्भज मनुष्य अने गर्भजतिर्यंच तथा केटलाएक बादरपर्याप्त वायुकाय जीवोने होय, आहा० शरीर आहा० लब्धिवाळा चौदपूर्वधर मुनिराजने होय, अने तैजसकार्मणशरीर सर्वजीवने सदाकाळ होय. ॥

॥ एक जीवने समकाळे केटलां शरीर ? ॥

एकभवमांथी बीजाभवमां वक्रगतिए जता जीवने समकाळे तैजस अने कार्मण ए बेज शरीर होय. पुनः ते जीव उत्पत्ति स्थाने उत्पन्न थइ शरीरपर्याप्ति पूर्ण थयाबाद औदारिक अथवा वैक्रियदेह युक्त थवाथी औदारि०--तैज०--कार्म०--अथवा वै० तै० का० एत्रण शरीरवाळो थाय. तदनंतर सर्वपर्याप्तिए पर्याप्त थयाबाद जो लब्धिवाळो होय अने लब्धि फोरवे तो ग० मनुष्यने अने गर्भज तिर्यंचने समकाळे औदारि०--वैक्रि०--तैज०--अने का० ए चार शरीर होय. अथवा आहारक लब्धि फोरववाना काळमां चौदपूर्वधर मुनिमहाराजने औदा०--आहार०--तैज०--अने का० ए चार शरीर समकाळे होय, परन्तु आहारक अने वैक्रिय ए बे शरीर साथे नहिं होवाथी पांच शरीर एक जीवने समकाळे कदी पण न होय. तेमज तै० अने का० ए बे शरीर अभव्यजीवने प्रवाहथी अनादि अनंत अने भव्य जीवने अनादि सान्त संबंधवाळां होवाथी एक जीवने एक शरीर पण कदी होय नहिं.

---

१ श्री तत्त्वार्थभाष्यमां अन्य आचार्योना अभिप्रायथी तैजस शरीर तैजसलब्धिवंतने होय पण गणीने स्वमते ५ विकल्प अने मतान्तरे ७ विकल्प कह्या छे ते आ प्रमाणे—तै०का १,तै०का०औ०२,तै०का०वै०३,तै०का०औ०वै०४,तै०का०औ०आ०५(ए स्वमते).—का० १,का०औ० २,का०वै०३,का०आ०वै० ४,का०औ०आहा०५, का०तै० औ० वै० ६,का० तै० औ० ७, (ए ७ विकल्प मतान्तरे.)

॥ पांच शरीरनुं व्याप्ति क्षेत्र (गति क्षेत्र.) ॥

औदा० शरीरनी तिर्यग्गति १३मा रुचक द्वीपमां रहेला रुचक पर्वतसुधी छे, ऊर्ध्वगति मेरुना शिखर (पांडुकवन) सुधी, अने [1]अधोगति कंइक योजन सुधी. (अधोगतिनो विषय शास्त्रमां मालूम पडतो नथी). वैक्रिय शरीरनी तिर्यग्गति असंख्य द्वीप समुद्र सुधी अने ऊर्ध्व तथा अधोगति दरेक जातना स्वामिओनी भिन्न होवाथी कहेवी अशक्य छे, ते शास्त्रान्तरथी जाणवी, तथा आहारक शरीरनी तिर्यग्गति (तीरछी गति) महाविदेह सुधी (लगभग ८० हजार योजन अधिक) छे; अने ऊर्ध्व [2]अधोगति संभवे नहिं. तथा तैजस कार्मण देहनी गति केवलिसमुद्घात तथा मरणसमुद्घात वडे करीने सर्व दिशाओमां लोकान्त सुधी छे. अहिं शरीरनी गति एटले ते शरीरवाळा जीवनी गति जाणवी.

॥ पांच शरीरनो उपयोग. ॥

धर्म-अधर्म-सुख-दुःख-केवलज्ञान-अने मोक्ष उपार्जन करवामां औदा० शरीर उपयोगी छे. विविध प्रकारनां रूप बनाववामां वैक्रिय शरीर उपयोगी छे, जिनेश्वरनी ऋद्धि देखवामां अने सूक्ष्मार्थनो संदेह दूर करवामां आहा० शरीर उपयोगी छे, शत्रुने शाप आपवा अने प्रसादपात्र जीव उपर उपकार-अनुग्रह करवा माटे तेजोलेश्या अने शीतलेश्या मूकवामां तथा आहारनुं पाचन करवामां तैजस शरीर उपयोगी छे, अने एक भवथी बीजा भवमां जवामां

---

१ केशा महाराजने नागकुमारनिकायनी दक्षिण श्रेणिना अधिपति धरणेन्द्र स्वभवनमां लइ गया हता.

२ अधोलोकमां विचरता तीर्थंकरो पासे जाय तो त्यां सुधी पण संभवी शके.

प्रथम समये आहार ग्रहण करवामां तथा केवलिसमुद्घातमां त्रीजे चोथे पांचमे समये आत्मप्रदेशनो विकास संकोच करवामां कार्मण शरीर [1]उपयोगी छे (कारणके का० शरीर जीवने परभवमां लइ जाय छे.)

॥ पांच शरीरोनी उंचाइ. ॥

औदा० शरीरनी उंचाइ कंइक अधिक १००० योजनप्रमाण (प्रत्येक वनस्पतिना शरीरनी अपेक्षाए) छे. वैक्रियशरीरनी उंचाइ चार अंगुल अधिक एक लाखयोजनप्रमाण (गर्भज मनुष्य कृत वै० शरीरापेक्षाए) छे. आहारकनी उंचाइ १ हाथप्रमाण, अने तैजसकार्मणनी उंचाइ १४ राज प्रमाण.

॥ पांच शरीरनो जघन्य अने उत्कृष्ट काळ. ॥

औदा० शरीरनो ज० काळ अन्तर्मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट काळ पुद्गलिकनी अपेक्षाए ३ पल्योपम प्रमाण छे, लब्धिप्रत्ययिक उत्तर वैक्रियशरीरनो काळ जघ० अन्तर्मुहूर्त्त (बा० प० वायु आदिकना उत्तरवै०नी अपेक्षाए) अने उत्कृष्ट ४ मुहूर्त्त (तिर्य० मनु० ना उत्तर० वै०नी अपेक्षाए), तथा भवप्रत्ययिक उत्तरवै० देहनो ज० काळ (नारककृतोत्तरवै०नी अपेक्षाए) अन्तर्मु० अने उत्कृष्ट(देवकृत उत्तरवै०नी अपेक्षाए) पंदर दिवस छे, भवप्रत्ययिक मूळ वै० शरीरनो जघ० काळ १०००० वर्ष, अने उत्कृष्ट काळ ३३

१ कार्मण शरीर वडे सुख दुःख भोगवाय नहि, कर्म बंधाय नहिं, कर्म भोगवाय नहिं, कर्म निर्जरे नहिं, अने तैजसादि चारे शरीर वडे सुख दुःख भोगवाय छे, कर्म निर्जरे छे (-इति-श्री तत्त्वार्थभाष्यमां). एमां मूळ कारण रूपे तो कार्मण शरीर छे, परन्तु सुख दुःख भोगवया विगेरेमां कारण साधन रूपे कार्मण शरीर नहिं एम जाणवुं.

सागरोपम छे, तथा आहारकनो ज० अने उत्कृ० काळ पण अन्तर्मुहूर्तज छे, अने तैजस कार्मणनो जघ० वा उत्कृष्टकाळ भव्यने अनादिसान्त, अने अभव्यने अनादिमनंत छे.

॥ पांच शरीरनी प्रत्येकनी समकाळे संख्या. ॥

औदा०शरीर एकीवखते जघ० थी अने उत्कृष्टथी पण असंख्यज होय, वैक्रियशरीर पण जघ० थी उ० थी एककाळे असंख्य होय, आहारकशरीर एककाळे जघ० थी एक बे अने उत्कृष्टथी ९००० होय, अने तै० का०शरीर सर्वदा अनंतज होय छे.

॥ पांच शरीरनो विरहकाळ. ॥

एक जीव आश्रयि औदा० शरीरनो जघ० विरह (अभाव काळ) १ समय (वक्रगतिए परभव जतां) होय, अने उ० विरहकाळ अन्तर्मुहूर्ताधिक ३३ सागर प्रमाण (कोइक चारित्री भवनान्ते वै० शरीर करी अन्तर्मु० जीवीने अनुत्तरदेव थाय ते अपेक्षाए) होय.—वैक्रिय शरीरनुं जघ० अन्तर अन्तर्मु० अने उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिमां भमतां (वनस्पतिनी कायस्थिति तुल्य) आवलिकाना असंख्यातमा भाग जेटला पुद्गलपरावर्त प्रमाण छे. आहारकनुं जघ० अन्तर अन्तर्मु० अने उत्कृ० अन्तर अर्धपुद्गलपरावर्त प्रमाण पुनः.चारित्रप्राप्तिनो विरहकाळ एटलो होवाथी छे. अने तै० का० शरीरने अन्तर नथी. अनेक जीवोनी अपेक्षाए चार शरीरनो विरहकाल न होय, अने आहारक शरीरनो जघन्य १ समय उत्कृष्ट ६ मास अने जीवसमास मते वर्षपृथक्त्व विरहकाळ होय छे.

॥ कया जीवने केटलां शरीर? ॥

एकेन्द्रियमां बा० प० वायुकाय सिवाय सर्व जीवने औदा० तै० अने का० ए ३ शरीर, अने बा० पर्या० वायुने एज ३ अथवा वै० सहित ४ शरीर पण होय. विकलेन्द्रियने सम्मू० तिर्यंच पंचेन्द्रियने अने सम्मू० मनुष्यने औदा०-तै०-ने कार्मण ए ३ शरीर होय, देवोने अने नारकने वै०-तै०- ने का० ए ३ शरीर होय, अने गर्भजतिर्यंचपंचेन्द्रियने औदा०-तै०- अने का० ए ३ शरीर तथा लब्धिवाळा ग० ति० पंचे०ने पूर्वोक्त ३ अने वै० सहित ४ शरीर पण होय, अने गर्भज मनुष्यने औ० तै० का० ए ३, अथवा वैक्रिय लब्धिवंतने औ० वै० तै० का० ए चार, आहारकलब्धिवाळाने औ० आ० तै० का० ए चार, अने बेउ लब्धिवाळा मनुष्यने औ०-वै०-आहा०-तै० अने कार्मण ए ५ शरीर पण (३-४-५ शरीर) होय.

ए पांच शरीरद्वारा जीवनो जे व्यापार ते ' कायबल प्राण ' कहेवाय. उपर लखेलां ११ द्वारोनुं संक्षिप्त वर्णन आगळ आलेखेला पांचशरीरना यंत्रथी जाणवुं.

॥ पांच शरीरमां कारणकृतविशेषादि ११ द्वारयन्त्रकम् ॥

(३ द्वारे).

शरीरमां नाम.	कारणकृत विशेष (पुद्गल परिणाम) १	प्रदेश संख्या॰ (एक स्कंधमां) २	स्वामि॰ ३
औदा॰	स्थूल पुद्गलोथी बनेलुं.	अभव्यथी अनंतगुण, सिद्धथी अनंतमे भागे.	सर्वतिर्यंच अने सर्व मनुष्य.
वैक्रिय.	औदा॰थी सूक्ष्म पुद्गलोवडे बनेलुं.	औ॰थी असंख्यगुण.	सर्व देव, सर्व नारक, केटलाएक बा॰ पर्या॰ वायु, गर्भजतिर्यंच, ग॰ नर.
आहा॰	वै॰थी सू॰पुद्गलो वडे बनेलुं.	वै॰थी असंख्यगुण.	कोइक पूर्वलब्धिवंत.
तैजस.	आहा॰थी सू॰पुद्गलोवडे बनेलुं.	आहा॰थी अनंतगुण.	सर्व संसारी जीवो.
कार्मण	तैज॰थी सू॰ पुद्गलोवडे बनेलुं.	तै॰थी अनंतगुण.	"

(४ द्वारो.)

गति विषय. ४	प्रयोजन. ५	अवगाहना. ६	केटला आकाश-प्रदेशमां. ७
ऊर्ध्व—पंडुकवन सुधी. तिर्यक्—१३मा रुचकद्वीपमांरुचक पर्वत सुधी.	धर्माधर्मोत्पत्ति मोक्षप्राप्ति इत्यादि.	साधिक १००० योजन.	आहा०थी संख्यातगुण प्रदेशोमां.
असंख्यद्वीप समुद्र.	एकानेकत्यादि नभोगत्यादि संघसहाय्यादि.	साधिक १००००० योजन.	औदा०थी संख्यगुण प्रदेशोमां.
महाविदेह सुधी.	सूक्ष्मार्थसंशयछेद जिनेन्द्र ऋद्धिदर्शन इत्यादि.	१ हाथ.	असंख्य आकाशप्रदेशमां.
लोकना एक छेडाथी बीजा छेडा सुधी (परभवमां जतां.)	शाप-वरदान-भोजननो पचाव इत्यादि.	संपूर्ण लोकाकाश.	वै०थी असंख्यगुण आकाशप्रदेशोमां.
"	अन्यभवमां गति.	"	तै० तुल्य.

(४ थारो.)

स्थिति. ८	अल्पबहुत्व (६६ संख्या). ९	अन्तर (अनेक जीव आश्रित). १०	उ० अन्तर (एक जीवाश्रित). ११
ज०—अन्तर्मुहूर्त. उत्कृ०—३ पल्योपम.	पं०नी असंख्यगुण.	अन्तर न होय.	अन्तर्मु०अधिक ३३ सागर.
ज०—१०००० वर्ष उ०—३३ सागर } शुद्ध वैक्रिय ज०—अन्तर्मु० उ०—४ मास } उत्तर वैक्रिय	असंख्य.	अन्तर न होय.	आवलिकाना असंख्यातमा भाग जेटला पुद्गलपरावर्त.
ज०—अन्तर्मु० उ०—अन्तर्मु०	१००० (कदाचित्)	ज०—१ समय. उ०—६ मास.	०॥ पुद्गलपरावर्त.
भव्यनी—अनादिसान्त. अभव्यनी—अनादि अनन्त.	अनंत.	अन्तर न होय.	अन्तर नथी.
" "	"	"	"

॥ नवमो आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) प्राण ॥

उच्छ्वासनामकर्म अने उच्छ्वासपर्याप्तिवडे श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण करीने श्वासोच्छ्वास पणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जे ते श्वासोच्छ्वास प्राण कहेवाय. जीवने श्वासोच्छ्वास नामकर्मवडे श्वासोच्छ्वास लब्धि प्राप्त थाय छे, जेथी तद्योग्य पुद्गलोने श्वासोच्छ्वास पणे परिणमावी शके छे, अने श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिवडे ते पुद्गलोने श्वासोच्छ्वासपणे परिणमाववा विगेरे क्रिया करवाने शक्तिवाळो थाय छे, ए प्रमाणे श्वासोच्छ्वासलब्धि श्वासोच्छ्वासनामकर्मवडे, अने ते संबंधि व्यापार श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिवडे साध्य छे, कारणके उच्छ्वासलब्धि होते छते पण ते लब्धिने व्यापृत करवाने जीव पर्याप्तिवडेज समर्थ थाय छे, जेम बाण फेंकवानी शक्ति होते छते पण धनुष्य ग्रहणादि व्यापार विना सुभट ते शक्तिने सफळ करी शकतो नथी तेम पर्याप्ति विना जीव उच्छ्वास लेवा मुकवा रूप शक्तिने सफळ करी शकतो नथी, ए प्रमाणे श्वासोच्छ्वास लेवा मूकवामां बन्नेनुं प्रयोजनछे.

गाथामां "आणपाण' शब्द अभ्यंतर श्वासोच्छ्वास अने बाह्य श्वासोच्छ्वास एवा बन्ने अर्थवाळो छे, अर्थात् जे एकेन्द्रियादिजीवो नासिकाद्वारविना श्वासोच्छ्वास ले छे ते [1]अभ्यन्तर छे; अने श्रीन्द्रियादिप्राणिओ नासिकाद्वारा पण श्वासोच्छ्वास ले छे ते [1]बाह्य

---

१ श्री प्रज्ञापना सूत्रमां "आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा" ए पाठमां श्री मलयगिरिजी महाराजे आणमंति एटले उससंति अने पाणमंति एटले नीससंति अर्थात् आण एटले उच्छ्वास अने पाण एटले निःश्वास अर्थ करेल छे, अने पज टीकाकार महाराजे बीजा आचार्योनो करेलो अर्थ आगळनी फुटनोट प्रमाणे करेलो छे.

१–२ श्री प्रज्ञापना सूत्रमां उच्छ्वासपदमां कह्युं छे के "अण-

श्वासोच्छ्वास गणाय छे, आ श्वासोच्छ्वास पण पुद्गलोना विका-
र छे; श्वासोच्छ्वासनां पुद्गलो सूक्ष्म होवाथी इन्द्रियग्राह्य नथी.
सुखी जीवोने श्वासोच्छ्वास लेवा मूकवानो व्यापार बहु अल्प हो-
य छे, अने दुःखी जीवने श्वासोच्छ्वास व्यापार अधिक होय छे,
जेथी देवताओ वधुमां वधु ३३॥ पखने अन्तरे श्वासोच्छ्वास
लेवा मूकवानी क्रिया करे छे, अने अति दुःखी एवा नारक जी-
वो प्रति समय श्वासोच्छ्वास क्रिया करे छे. शेष जीवो अनिय-
मित अन्तरे श्वासोच्छ्वास क्रिया करे छे. पुनः श्वासोच्छ्वासनुं ग्र-
हण काययोगवडे अने विसर्जन पण काययोगवडे थाय छे, परन्तु
मन अने वचननी पेठे काययोगे ग्रहण अने मन वचनयोगे विसर्ज-
न थाय छे तेम नथी. 'जेथी श्वासोच्छ्वास योग' एवो व्यपदेश
थतो नथी (तेनुं विस्तृत कारण श्रीविशेषावश्यकमां छे.).

॥ दशमो आयुष्य प्राण. ॥

जेना वडे जीव ते भवनी अंदर अमुक काळसुधी टकी शके छे
ते आयुष्य कहेवाय, अथवा जेना वडे जीव परभवमां अवश्य जा-
य छे ते आयुष्य कहेवाय, अथवा विवक्षित भवमां जेटला काळसु-
धी जीव रहे तेटलो काळ आयुष्य कहेवाय. ए आयुष्य पण पुद्गलनो
समुदाय छे के जे पुद्गल समूहनी सहायवडे जीव जीवे छे. ए आ-
युष्य द्रव्यायुष्य अने कालआयुष्य एम २ प्रकारनुं छे.

॥ द्रव्यायुष्य अने कालआयुष्य. ॥

आयुष्यकर्मनां जे पुद्गलो ते द्रव्यायुष्य, जेम तेल विना दीपक

मायासे आनन्ति प्राणन्ति इत्येवमाख्यः स्फुरन्तो उच्छ्वास
श्वासक्रिया परिगृह्यते, उच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति इत्येवम् सु
षा. "

थकी । शकतो नथी तेम आयुष्यनां पुद्गलविना जीव जीवी शक
नथी, ए हेतुथी आयुष्य अवश्य पौद्गलिक ज छे.

[1]आयुष्य कर्मनां पुद्गलोनी सहायवडे जीव जे अमुक काळ
जीवी शके छे ते जीवनकाळनुं नाम 'कालआयुष्य' कहेवाय.
गळ कहेवाशे ते रीते द्रव्यआयुष्य संपूर्ण थयाविना जीव कदि
मरण पामतो नथी (एमां कोइ जातनो अपवाद छे ज नहि
अने काळआयुष्य तो जो अपवर्त्तनीय होयतो (काळआयुष्य)
र्ण कर्याविना मरणपामे अने अनपवर्त्तनीय होयतो संपूर्ण क
पण मरणपामे. ते अपवर्त्तनीय विगेरे भेद नीचे प्रमाणे छे.

॥ अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय आयुष्य ॥

(तथा सोपक्रमी अने निरुपक्रमी.)

जीवे आयुष्यनी स्थिति पूर्वभवमां एवी शिथिल (नर
बांधी होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात वगेरेथी ते बांधेली वि
ति (काळआयुष्य) पूर्ण कर्याविना (अधूरे आयुष्ये) मरण
मे, ते शिथिल आयुष्यनुं नाम अपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

जीवे पूर्वभवमां आयुष्यनी स्थिति एवी तीव्र (घन) बां
होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात लाग्या छतां पण ते बांधे
आयुष्य स्थिति (काळआयुष्य) पूर्ण करीने ज मरणपामे, अथ
ते शस्त्रादिकना आघातथी पण अपूर्ण आयुष्ये मरण न पामे ते
नपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

---

[1] प्रज्ञापनाजीमां एनुं नाम स्थितिआयुष्य पण कहेल छे
पुनः ते स्थाने बे भेद करतां पण घणु (७ लगभग) भेद प
हेला छे. परन्तु अत्रे विशेष उपयोगी बे भेद ज अंगीकार कर्या छे

ए प्रमाणे अपवर्तनीय अने अनपवर्तनीय भेद काळआयुष्य-मान छे, परन्तु द्रव्यआयुष्य (आयुष्य पुद्गलो) अपवर्तनीय अन-पवर्तनीय नथी. कारणके आयुष्यनां जेटलां पुद्गलो (आयुष्यना-जेटला परमाणु) जीवे ग्रहण करेला छे ते सर्व (परमाणुओ) क्षय थया बाद जीव मरण पामी शके. परन्तु आयुष्यनो एक पण परमा-णु जीवने क्षय करवो बाकी रह्यो होय अने जीव मरण पामे एम कदी पण बनी शकेज नहिं, अने काळआयुष्यमां तो सेंकडो वर्षनी स्थिति उपार्जन करी होय छतां अन्तर्मुहूर्तमां पण मरण पामी जाय एम बनी शकेछे. ए हेतुथी द्रव्यआयुष्य संपूर्णपणे अने काळआयुष्य अपूर्ण रहे छते पण जीवनुं मरण थइ शकेछे.

शंका—आयुष्य ए पुद्गल छे अने स्थिति ते पण आयुष्यनां पुद्गलनीज छे, तो सर्व पुद्गलनो क्षय थाय अने सर्व स्थितिनो क्षय न थाय ते केम बनी शके?

उत्तर—हे जिज्ञासु! ए शंका सत्य छे, परन्तु जेम कोडीआमां पूरेलुं तेल दीपकनी मोटी ज्योति करवाथी शीघ्र बळी जायछे त्यारे सर्व तेलनो क्षय थतां पण "आ दीपक अल्पकाळ बळयो" अथवा "दीपक अल्पकाळमां बुझाइ गयो" एवो व्यपदेश थाय छे, तेम आ-युष्यनां सर्वपुद्गल क्षय थया छतां पण आयुष्यनो काळ अपूर्ण रहे-वाथी वास्तविक रीते ते अपूर्ण काळे मरण पाम्यो एवो व्यपदेश थाय छे, कारणके जीवनुं जीवनुं आयुष्य पुद्गलोना आलंबनथीज छे. तथा १०० हाथनी लांबी करेली दोरीने एक छेडेथी सळगा-वी होयतो ते घणे काळे बळी रहे, परन्तु ते दोरीनुं गुंछळुं (गुंदाळु) करवामां आवेतो शीघ्र बळी जाय छे. तेम आयुष्यना पुद्गलो प्रथम समये बीजे समये त्रीजे समये जे रीते क्षय पामतां जाय तेम अनुक्रमे जो आयु पुद्गलोनो क्षय चालु रहे तो १०० वर्षे सर्व

थकी पकतो नथी तेम आयुष्यनां पुद्गलविना जीव जीवी शकतो नथी; ए हेतुथी आयुष्य अवश्य पौद्गलिक ज छे.

आयुष्य कर्मनां पुद्गलोनी सहायवडे जीव जे अमुक काळसुधी जीवी शके छे ते जीवनकाळनुं नाम 'काळआयुष्य' कहेवाय. आगळ कहेवाशे ते रीते द्रव्यआयुष्य संपूर्ण थयाविना जीव कदि पण मरण पामतो नथी (एमां कोइ जातनो अपवाद छे ज नहि), अने काळआयुष्य तो जो अपवर्त्तनीय होयतो (काळआयुष्य) पूर्ण कर्याविना मरणपामे अने अनपवर्त्तनीय होयतो संपूर्ण करीने पण मरणपामे. ते अपवर्त्तनीय विगेरे भेद नीचे प्रमाणे छे.

॥ अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय आयुष्य ॥

(तथा सोपक्रमी अने निरुपक्रमी.)

जीवे आयुष्यनी स्थिति पूर्वभवमां एवी शिथिल (नरम) बांधी होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात वगेरेथी ते बांधेली स्थिति (काळआयुष्य) पूर्ण कर्याविना (अधूरे आयुष्ये) मरणपामे, ते शिथिल आयुष्यनुं नाम अपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

जीवे पूर्वभवमां आयुष्यनी स्थिति एवी तीव्र (घन) बांधी होय के जेथी शस्त्रादिकना आघात लाग्या छतां पण ते बांधेली आयुष्य स्थिति (काळआयुष्य) पूर्ण करीने ज मरणपामे, अर्थात् ते शस्त्रादिकना आघातथी पण अपूर्ण आयुष्ये मरण न पामे ते अनपवर्त्तनीय आयुष्य कहेवाय.

---

१ प्रज्ञापनाजीमां एनुं नाम स्थितिआयुष्य पण कहेल छे. पुनः ते स्थाने बे भेद करतां पण घणु (७ लगभग) भेद पाडेला छे. परन्तु अत्रे विशेष उपयोगी बे भेद ज अंगीकार कर्या छे.

ए प्रमाणे अपवर्तनीय अने अनपवर्तनीय भेद काळआयुष्य-
नाज छे, परन्तु द्रव्यआयुष्य (आयुष्य पुद्गलो) अपवर्तनीय अन-
पवर्तनीय नथी. कारणके आयुष्यनां जेटलां पुद्गलो (आयुष्यना-
जेटला परमाणु) जीवे ग्रहण करेला छे ते सर्व (परमाणुओ) क्षय
थया बाद्ज जीव मरण पामी शके. परन्तु आयुष्यनो एक पण परमा-
णु जीवने क्षय करवो बाकी रह्यो होय अने जीव मरण पामे एम कदी
पण बनी शकेज नहिं, अने काळआयुष्यमां तो सेंकडो वर्षनी
स्थिति उपार्जन करी होय छतां अन्तर्मुहूर्तमां पण मरण पामी जाय
एम बनी शकेछे. ए हेतुथी द्रव्यआयुष्य संपूर्णपणे अने काळआयुष्य
अपूर्ण रहे छते पण जीवनुं मरण थइ शकेछे.

शंका—आयुष्य ए पुद्गल छे अने स्थिति ते पण आयुष्यनां
पुद्गलनीज छे, तो सर्व पुद्गलनो क्षय थाय अने सर्व स्थितिनो क्षय
न थाय ते केम बनी शके?

उत्तर—हे जिज्ञासु! ए शंका सत्य छे, परन्तु जेम कोडीआमां
पूरेलुं तेल दीपकनी मोटी ज्योति करवाथी शीघ्र बळी जायछे त्यारे
सर्व तेलनो क्षय थतां पण "आ दीपक अल्पकाळ बळ्यो" अथवा
"दीपक अल्पकाळमां बुझाइ गयो" एवो व्यपदेश थाय छे, तेम आ-
युष्यनां सर्वपुद्गल क्षय थया छतां पण आयुष्यनो काळ अपूर्ण रहे-
वाथी वास्तविक रीते ते अपूर्ण काळे मरण पाम्यो एवो व्यपदेश
थाय छे, कारणके जीवनुं जीववुं आयुष्य पुद्गलोना आलंबनथीज
छे. तथा १०० हाथनी लांबी करेली दोरीने एक छेडेथी सळगा-
वी होयतो ते पुरे काळे बळी रहे, परन्तु ते दोरीनुं गुंछळुं
(गुंचळुं) करवामां आवेतो शीघ्र बळी जाय छे, तेम आयुष्यना
ह्यो प्रथम समये बीजे समये बीजे समये ते रीते क्षय पामतां जाय
तेम अनुक्रमे जो आयु पुद्गलोनो क्षय चालु रहे तो १०० वर्षे सर्व

पुद्गलोनो क्षय थाय, परन्तु तेवी रीत अल्पकाळ चालु रह्या बाद ते रीति पुनः पलटाइने प्रतिसमय प्रथम करतां बधु ने बधु पुद्गलोनो क्षय थवा मांडे तो अन्तर्मुहूर्त्तमां पण तेज पुद्गलोनो सर्व क्षय थइ जाय, जेथी १०० वर्षं संपूर्ण न थया छतां पण (१०० वर्षे पूर्ण थनार) सर्व पुद्गलनो क्षय थइ गयो. तथा १ मण पाणीनी भरेली अपक्व (भट्ठीमां बराबर नहिं पाकेली) माटीनी गोळी थोडीवार सुधी तो बिंदु बिंदु जेटलो टपके, परन्तु थोडीवार पछी ते गोळीमां फाट पडवाथी तेमां भरेलुं १ मण पाणी घणा प्रमाणमां जवा मांडे जेथी अल्पकाळमांज सर्व जळनो क्षय थाय तेम अपवर्त (शिथिल) आयुष्य माटे पण जाणवुं. इत्यादि अनेक दृष्टांतो स्वबुद्धिए विचारवां.

॥ सोपक्रमी अने निरुपक्रमी आयुष्य. ॥

शस्त्रादि बाह्य निमित्तथी जे आयुष्यनो क्षय थाय ते "सोपक्रम आयुष्य' कहेवाय. अहिं उपक्रमनो अर्थ "बाह्य निमित्त" छे. अथवा आयुष्यना अन्तसमये जेने बाह्य निमित्त विद्यमान होय तेनुं आयुष्य पण [2]सोपक्रम आयुष्य कहेवाय.—तथा बाह्य निमित्तवि-

[1] आ अर्थ अपवर्तनीय आयुष्यवाळा जीवने माटे छे.

[2] आ अर्थ अनपवर्तनीय आयुष्यवाळा जीवना संबंधमां छे. कारणके ए जीवना आयुष्यनाः अंत समये उपक्रम विद्यमान होय छे परन्तु ते उपक्रम आयुष्यना क्षय करवामां हेतुभूत नथी कारणके अनपवर्तनीय आयुष्य उपक्रमवडे क्षय न थाय इति तत्त्वार्थवृत्त्यभिप्रायः. पुनः घणा ग्रंथकार अने सिद्धान्तकर्ता महात्माओ तो सोपक्रम अने निरुपक्रम ए बे भेदमात्रथी ज आयुष्यनुं वर्णन करे छे. परन्तु अपवर्तनीय अने अनपवर्तनीय भेदनी मुख्यता जणावता नथी. परन्तु श्रीतत्त्वार्थवृत्तिना अभिप्राये बन्ने भेदोनो परस्पर संबंध समजवाथी बहु स्पष्ट बोध थइ शके छे.

पुण्यनो क्षय थाय ते 'निरुपक्रम आयुष्य' कहेवाय छे, अनपवर्तनीय आयुष्य सोपक्रम अने निरुपक्रम एम बन्ने रछे, अने अपवर्तनीय आयुष्य तो सोपक्रमीज छे, जेना रना नीचे प्रमाणे छे.—

आयुष्य.

पवर्तनीय. — अनपवर्तनीय.

सोपक्रम. — सोपक्रम. निरुपक्रम.

१ अनपवर्तनीय आयुष्यना क्षय समये शस्त्रादि बाह्य संबंध होय अथवा न पण होय, अने अपवर्तनीय आ- य तो बाह्य निमित्त विना होइ शकेज नहिं. ए अ- आयुष्ये मरण पामनारा जे जीवने आयुष्यना अन्त व- घातादि निमित्तनो (आयुष्यना अन्त समये) संबंध हो- नुं आयुष्य सोपक्रम अनपवर्तनीय कहेवाय. अने जे जी- आयुष्यना अन्त समये शस्त्रघातादिनो संबंध न होय आयुष्य निरुपक्रम अनपवर्तनीय कहेवाय. अने अपूर्ण रण पामनारा सर्वे जीवोनुं आयुष्य तो सोपक्रम अपवर्त- कहेवाय.

॥ आयुष्यनां ७ उपक्रम. ॥

राग-स्नेह-अने भय ए ३ थी जे मरण थाय ते अध्यवसा- कहेवाय, अहिं एक पाणी पानारी स्त्री अति रूपवन्त यु- र) ने देखी मोहित थतां ते युवक ज्यारे चाल्यो गयो रागथी झूरी झूरीने मरणपामी इत्यादि ए 'रागनिमित्त' कहे-

शंका—जेम आयुष्य घटवाना उपाय छे, तेम आयुष्य वधवाना उपाय छे के नहि.

उत्तर—हे जिज्ञासु! आयुष्य वधवानो उपाय छे ज नहि. महासमर्थ इन्द्रो अने तीर्थंकर पण एक समयमात्र आयुष्य वधारवाने समर्थ नथी. कारण के आयुष्यनुं निर्माण पूर्वभवमां थतुं होवाथी त्यां आयुष्यबंध वखते जे स्थिति बंधाइ ते स्थितिज अहिं भोगववानी होय छे तो पूर्वभवमां बांधेला आयुष्यनी स्थिति आ भवमां केम वधारी [1] शकाय? अथवा पूर्वोक्त ७ उपक्रमोमांथी कोइपण एकादि उपक्रमथी १०० वर्षनुं आयुष्य घटी १ वर्ष मात्र जीवी शके तेम होय तेवा प्रसंगमां ते जीव उपक्रमथी बची जवाना उपायोथी ५० वर्ष जीवे तो ए अपेक्षाए ते जीवे पोतानुं आयुष्य औषधादिकथी वधार्युं एम व्यवहारथी कही शकाय परन्तु वास्तविक रीते तो वधार्युं नज कहेवाय.

शंका—अपवर्त्तनीय अने अनपवर्त्तनीय एम तरतमतावे आयुष्य बंधावामां हेतु शो ?

उत्तर—आयुष्यबंध वखते आयुष्यबंध योग्य अध्यवसाय जो तीव्र होय छे तो आयुष्यनां ग्रहण करेलां पुद्गलो आत्माना अमुक अमुक विभागमां घणां एकत्र (पिंडित) थइ जवाथी ते आयुः पुद्गल पिंड [2] अभेद्य थाय छे, अने मंदपरिणामे ग्रहण करेल

१ आयुष्यनी उद्वर्त्तना (स्थिति-रसनी वृद्धि) कर्मग्रंथमां कही छे. परन्तु ते पण ("बध्यमाना उद्वर्त्तना" ए वचनथी) बंधकाळ सुधी ज उद्वर्त्तना होय, अने बंधकाळ पूर्ण थया बाद भवान्तरमां पण वधी शके नहि.

२ ए अभिप्राय तत्त्वार्थसूत्रमां कह्यो छे ते आ प्रमाणे— अपवर्त्तननिमित्तैर्विषशस्त्रादिभिर्न अनपवर्त्यायुः ... संहतिमत्त्वात् ... [illegible]

आयुःपुद्गलो सर्व आत्मप्रदेशे विरल विरल पणे (छूटां छूटां) वेंचाइ जाय छे, जेथी उपक्रमने साध्य थइ शके छे. पुनः उपक्रमवडे आयुष्यने अपवर्त्ततो [टुंकुं करतो करतो] यावत् अंतर्मुहूर्त सुधी अपवर्त्ते छे (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त जेटलुं करी नाखे छे), त्यारबाद तथाविध अध्य.सायना अभावे अन्तर्मुहूर्तथी न्यून करी शके नहिं.

॥ कया जीवने कयुं आयुष्य होय? ॥

सर्वदेव-सर्वनारक-सर्व 'युगलिकनि पंच-अने युगलिकम-

व्यवच्छेदं वा एकनाडिकाविवरप्रक्षिप्तबीजनिष्पादितसस्यसंहति-
वत्रा विवराद्बहिः पतितबीजप्रसूतं हि सस्यमसंहतत्वात् प्रवि-
रलायां सस्यां प्रयत्नेन यथाऽऽदेयम्. एवं क्रियमाणमायुर्दल-
मनेकाध्यवसायपरिणामत्वाभाव्यात्शरीरेष्वप्यपि यथाऽऽदिका भाग-
परिणामो भवति तत्तस्यामवस्थामासाद्य यथायुष्कपुद्गलान्
बध्नाति ते नाडिकाप्रविष्टत्वात् संहतिभावे सस्यभेदा विषय-
धान्यादीनाम् इति " अर्थः -अथवा एक नाडिकावडे ग्रहण
करेलुं आयुष्य पिंडीभूत होवाथी घणा एकठा थयेला पुरुषोना
राशिवत् अभेद्य अथवा (खेडुत जे त्रिफणीथी खेतरमां धान्य
वावे छे ते त्रिफणीनी) एक नाडिका (नळी) ना छीद्रमार्गे
नाखेल बीजवडे उत्पन्न थयेला धान्य समूहनी माफक आयुष्य
अभेद्य (अनपवर्त्तनीय) होय छे. अने नळीना छिद्रथी बहार
पडेला बीजथी उत्पन्न थयेल धान्य या घास अपिंडित हो-
वाथी छुटुं छुटुं उगे छे अने सर्व धान्य ढोर वगेरे उखेडी नाख
शके छे, ए प्रमाणे शिथिल आयुष्य बांधतो आ आत्मा अनेक
अध्यवसाय परिणामना स्वभावथी सर्व शरीरमां व्याप्त छे तो
पण नाडिकामार्गपरिणाम वाळो (अमुक विभागमां विशेष
पुद्गल ग्रहण करनारो) होय छे. तेथी ते (नाडिकामार्गपरि-
णामरूप) अवस्था पामीने जे आयुष्यपुद्गलो बांधे छे ते नाडि-
कामां प्रवेश थयेला होवाथी पिंडीभूत थवे छने स्थिर उग
छति विशेषथी अभेद्य होय छे.

१ श्री सूत्रकृतांगसूत्रमां अने धर्मसंग्रहणिमां युगलिकनुं एम
पल्योपम आयुष्य अवशेषांने अन्तर्मुहूर्त जेटलुं थाय एम कहेलुं.

नुष्य निरुपक्रम अनपवर्त्तनीय आयुष्यवाळा छे–चरमशरीरी (तद्भव मोक्षगामी)–तीर्थंकर–गणधर–चक्रवर्त्ति–वासुदेव–बळदेव–सोपक्रम अने निरुपक्रम अनपवर्तनीय आयुष्यवाळा छे, शेष सर्व जीवो त्रणे प्रकारना (सोप० अप०१ सोप० अनप०२ अने निरु० अनप० ३) आयुष्यवाळा छे.

॥ कया जीवो क्यारे आयुष्य बांधे ? ॥

नारक–देव–अने [1]असंख्य वर्षायुवाळा युगलिकतिर्यंचअने युग० मनुष्यो ६ मास आयु बाकी होते परभवनुं आयुष्य बांधे छे, अने [2]निरुप० आयुष्यवाळा पृथ्वी–अप्–तेजस्–वायु–वनस्पति–द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–अने निरुपक्रमायुष्यवाळा पंचेन्द्रियजीवो आयुष्यनो त्रीजो भाग बाकी रहये बांधे अने सोपक्रमी आयुष्यवाळा सर्वजीवो त्रीजो नवमो के २७मोभाग बाकी रहये (अनियमितपणे) बांधे. घणा ग्रंथोमां तो एथी पण आगळ ८१मो–२४३मो इत्यादि भाग शेष रहये यावत् अन्त्य अन्तर्मु० शेष रहे पण परभवायु बांधे एम कह्युं छे.

ए प्रमाणे जीवोना आयुष्य प्राणनुं किंचित् स्वरूप कह्युं ते साथे जीवोना १० (दश) प्राणनुं स्वरूप कहेवायुं. ए १० प्राणो जीवोना द्रव्यप्राण कहेवाय छे, अने "नाणंच दंसणं चेव" गाथामां कहेलां ६ लक्षणो ते जीवना भावप्राण कहेवाय छे. द्रव्यप्राण संसारी जीवने ज होय छे, अने भावप्राण तो संसारी अने सिद्धने पण होय छे. जीवनिनां बाह्यचिन्हो ते द्रव्यप्राण अने अंतरंग लक्षणो

[1] ज्यां आयुष्यना संबधमां असंख्य वर्षं आवे त्यां असंख्यनी गणत्री पांगळोपमनी पूर्वनी उपरनी संख्याथी गणवी. एम कारणोकवृत्त्यांमां कह्युं छे.

[2] अनपवर्तनीय इत्यर्थः

ते भावप्राण कहेवाय. ए बे भावप्राण तो सर्व जीवने सामान्य होय छे. परन्तु प्रस्तुत प्रकरणना १० द्रव्यप्राण (बाह्यप्राण) सर्व जीवोने एकसरखा नहि होवाथी कया जीवने केटला प्राण होय ते कहेवाय छे.

॥ कया जीवने केटला प्राण होय? ॥

एनो उत्तर गाथा द्वारा दर्शाव्यो छे के सर्व एकेन्द्रिय जीवोने स्पर्शेन्द्रिय–कायबल–आयुष्य–ने श्वासोच्छ्वास ए ४ प्राण होय छे. द्वीन्द्रिय जीवोने पूर्वोक्त चार अने एक रसनेन्द्रिय अने वचनबल अधिक होवाथी ६ प्राण होय छे त्रीन्द्रियने घ्राणेन्द्रिय अधिक होवाथी ७ प्राण, चतुरिन्द्रियने चक्षुरिन्द्रिय अधिक होवाथी ८ प्राण, असंज्ञिपंचेन्द्रियने श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होवाथी ९ प्राण, अने संज्ञिपंचेन्द्रियने मनबल अधिक होवाथी १० प्राण छे.

॥ श्रीनवतत्त्वप्रकरणे प्रथमजीवतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

---

१ अहिं एकेन्द्रिय अने द्वीन्द्रिय जीवोने जो के नासिका नथी तोपण सर्वांगे श्वासोच्छ्वास लइ शके छे. पुनः द्वीन्द्रिय तो मुखथी पण श्वासोच्छ्वास लइ शके. तथा एकेन्द्रियो शरीर पर्याप्ति थया बाद औदारिक शरीरवडे ज आहारग्रहणादि क्रिया करता होवाथी कायबल प्राण पण तेओने युक्त ज छे. पुनः 'जीवविचारावचूरिमां' ने 'द्रव्यलोकप्रकाशमां' संमूर्छिम मनुष्यने सात आठ अने 'बृहत्संग्रहणिवृत्ति' तथा 'प्राचीनबालावबोधमां' नव प्राण कह्या छे, तेनो हेतु मालुम पडतो नथी, कारणके संमू० मनुष्य अवश्य अपर्याप्ता ज मरण पामे छे. तेम 'पन्नवणा' 'जीवाभिगम' विगेरेमां कह्युं छे माटे नव प्राणो मानतां तेओने पर्याप्ता मानवा जोइये. वळी अपर्याप्त जीवो मात्र त्रण पर्याप्ति ज पूर्ण करे छे. तो तेओने श्वासोच्छ्वास, भाषा, अने मन ए त्रण प्राण होइ शकता नथी. तेथी संमू० मनुष्यने ७ ज प्राण

॥ जीवतत्त्व परिशिष्ट. ॥

॥ संसारी जीवना (जुदी जुदी अपेक्षाए) भेद. ॥

१ प्रकारना—चैतन्य लक्षण (उपयोग)वडे.
२ प्रकारना—त्रस, स्थावर. वा व्यवहार, अव्यवहार.
३ प्रकारना—स्त्री, पुरुष, नपुंसकवेदी वा भव्य, अभव्य, जातिभव्य.
४ प्रकारना—देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारक. वा ३ वेद, ४ अवेद.
५ प्रकारना—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय.
६ प्रकारना—पृथ्वी, जळ, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रसकाय.
७ प्रकारना—सूक्ष्मएके०, बादर एके०, द्वी०, त्री०, चतु०, असंज्ञिपंचे०, संज्ञिपंचे०. वा ६ लेश्य, १ अलेश्य.
८ प्रकारना—१ पर्याप्त सूक्ष्मएकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्मएकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त बादरएकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त बादरएकेन्द्रिय, ५ द्वीन्द्रिय, ६ त्रीन्द्रिय, ७ चतुरिन्द्रिय, ८ पंचेन्द्रिय.
९ प्रकारना—१ अंडज, २ रसज, ३ जरायुज, ४ स्वेदज, ५ संमूर्छज, ६ पोतज, ७ उद्भिज, ८ औपपातिक (ए आठ त्रस अने), १ स्थावर. अथवा ५ स्थावर, ३ विकले०, अने १ पंचेन्द्रिय.

संभवे छे. एमां 'श्री द्रव्यलोकप्रकाश' विगेरेमां उत्पत्तिस्थान सहित आठ तथा 'बृहत्संग्रहणीवृत्ति' विगेरेमां वनस्पति सहित नव मरण कह्या तेनो विचार श्रीबहुश्रुतगम्य जाणवो. अहिं अपर्याप्तजीवोने यथायोग्य श्वासोच्छ्वास,भाषा, अने मन सिवायना प्राण समजवा. उपर कह्या प्रमाणे ए यथायोग्य द्रव्यप्राणोनो जे वियोग ते जीवनुं 'मरण' कहेवाय छे. कारणके जीव ज्यारे ए द्रव्यप्राण छोडी परभवमां जाय छे त्यारे (जीवनपणुं जीव जीवे छे एमां) मरण शब्दथी ज कहेवाय छे.

१० प्रकारना—५ स्थावर ३ विकले०, १ सं०पंचे०, १ असं०पंचे
११ प्रकारना—५ स्थावर, ३ विकले, ३ पंचे० (वेद भेदे).
१२ प्रकारना—६ अपर्याप्तषट्काय, ६ पर्याप्तषट्काय.
१३ प्रकारना—१० पर्याप्तापर्याप्तपांचस्थावर, ३ पंचे० (वेद भेदे).
१४ प्रकारना—ग्रन्थमां बतावेला, अथवा १४ गुणस्थानभेदे.
१५ प्रकारना—९ पंचेन्द्रिय (वेद भेदे ३ तिर्यंच, ३ मनुष्य, २ देव (नपुं०विना), (१ नारक नपुं०), २ बादर एके० (पर्याप्तापर्याप्त भेदे), १ सूक्ष्मएके०, ३ विकलेन्द्रियो.
१६ प्रकारना—२ एके० (पर्या० अपर्या०), ६ विकले० (पर्या० अपर्या०), २ पं० ति० (पर्या० अपर्या०), ६ देव, मनुष्य, नारक (पर्या० अपर्याप्त).
१७ प्रकारना—५ स्थावर, ३ विकले०, ९ पंचेन्द्रिय (१५ भेदोक्त).
१८ प्रकारना—पूर्वोक्त ९भेदना पर्याप्तापर्याप्त भेदे.
१९ प्रकारना—१० सू० ए० १, बा० ए० २, विकले० ३, (ए ५ पर्या० अप०), ९ पंचेन्द्रिय.
२० प्रकारना—पूर्वोक्त १० भेदोने पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.
२१ प्रकारना—२० स्थावर (पृथ्व्यादि पांचने सूक्ष्म-बादर तथा पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.), १ त्रस.
२२ प्रकारना—पूर्वोक्त ११ भेदोने पर्याप्तापर्याप्त भेदे गुणवाथी.
३२ प्रकारना—२२ एकेन्द्रिय (पांचसोत्रेसठभेदमां कहेवाशे ते), ६ विकलेन्द्रि०, ४ पंचेन्द्रिय (संज्ञि प० अ०, असंज्ञि प० अ०).
११६ प्रकारना—७ नारक, १० भवनपति, ८ व्यंतर, ५ ज्योतिषी, १२ कल्प, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर, १ मनुष्य, १ तिर्यंच, ए ५८ ने पर्याप्त अपर्याप्त भेदे गुणवाथी ११६ भेद थायछे.
५६३ प्रकारना-(नीचे कह्या प्रमाणे)

५८४ प्रकारना–पूर्वोक्त ३२ भेदमांथी संज्ञिना २ भेद बाद करी बाकीना ३० भेद पूर्वोक्त ११६ मां मेळवतां १४६ थाय, ते पुनः भव्य, अभव्य, दुर्भव्य, अने आसन्नभव्य ए ४ भेदे गुणतां १४६ + ४ = ५८४ भेद थाय छे. (आ सर्व प्रकारो 'जीवाभिगम,' 'संबोधप्रकरण' 'लोकप्रकाश' विगेरेमां बतावेला छे.)

॥ ५६३ जीवभेद. ॥

२२ एकेन्द्रिय–पृथ्वी, जळ, अग्नि, वायु, अने साधारणवनस्पति ए पांचे सूक्ष्म अने बादर मळी १० थाय, तेमां (बादर) प्रत्येकवनस्पति उमेरतां ११ थाय, ते पर्याप्ता अने अपर्याप्ता एम बे भेदे गुणतां एकेन्द्रियना सर्व भेद २२ थाय.

६ विकलेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, अने चतुरिन्द्रिय, ए त्रणने अपर्याप्त अने पर्याप्त भेदे गुणतां विकलेन्द्रियना ६ भेद थाय.

१४ नारक–सातेपृथ्वीना नारकने अपर्याप्त अने पर्याप्त भेदे गुणतां नारकना १४ भेद थाय.

२० तिर्यंचपंचेन्द्रिय–जळचर, स्थळचर, खेचर, उरःपरिसर्प अने भुजपरिसर्प ए पांचे संमूर्छिम तथा गर्भज गणतां १० भेद थाय, अने ते दशने अपर्याप्त-पर्याप्त भेदे गुणतां २० भेद होय.

३०३ मनुष्य–१५ [1]कर्मभूमि, ३० [2]अकर्मभूमि, अने [3]५६

---

[1] पांच भरत, पांच ऐरवत, पांच महाविदेह (१ जंबूद्वीपना भ० ऐ० म, २ धातकीखंडना भ० ऐ० म०, २ पुष्करार्धना भ० ऐ० महाविदेह). [2] ५ उत्तरकुरु, ५ देवकुरु, ५ हिमवंत, ५ हिरण्यवंत, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक, (उपर कहेला पांच भरत प्रमाणे). [3] जंबूद्वीपना हिमवंत अने शिखरी पर्वतनी पूर्व पश्चिममां चार चार दाढाओ मळी आठ दाढाओ पैकी एकेकी दाढा उपर सात, सात. सर्व मळी ५६ अंतर्द्वीपो जाणवा.

अन्तर्द्वीप ए १०१ क्षेत्रवर्ती संमूर्च्छिम मनुष्यो अपर्याप्तज होय, अने गर्भज मनुष्यो अपर्याप्त अने पर्याप्त पण होय, माटे १०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, तथा २०२ गर्भज मनुष्य मळी ३०३ मनुष्य भेद थायछे.

१९८ देव—१० भवनपति, १५ परमाधामी, ८ व्यन्तर, ८ वाणव्यन्तर, १० तिर्यग्जृंभक, ५ चरज्योतिषी, ५ स्थिरज्योतिषी, ३ किल्बिषिक, १२ सौधर्मादि बार कल्प, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक, अने ५ अनुत्तर, ए ९९ अपर्याप्त. अने ९९ पर्याप्त देव मळी देवना सर्वभेद १९८ छे. (ए रीते २२ ए॰), ६ वि॰, १४ ना॰, २० पं॰- ति॰, ३०३ म॰, १९८ देवना भेदो मळी जीवना सर्वभेद ५६३ थायछे.

॥ १४ जीवभेदना स्थानो. ॥

(१) सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रियोनुं स्थान—संपूर्ण लोकाकाश.
(२) सूक्ष्म पर्याप्त एकेन्द्रियोनुं स्थान— ”
(३) बादर अपर्याप्त एके॰नुं स्थान—लोकनो असंख्यातमो भाग.
(४) बादर पर्याप्त एके॰नुं स्थान— ”

१ पृथ्वीनुं स्थान—७ नरक, १ सिद्धशिला, पातालकळशाओनी ठीकरीओ, भवनपतिनां भवनो, नरकावासा (नीभिंतिओ अने भूमितळ), विमानो, पर्वतो, भूमिहट, जगतीओ, वेदिकाओ, विजयादिद्वारो, अने ८ कृष्णराजी, द्वीपो, समुद्रो विगेरेमां.

२ जळनुं स्थान—घनोदधिओ, समुद्रो, पातालकळशाओनाउदरभाग, भवनोनी अने विमानोनी वावडीओ, द्रहो, अने नदी, सरोवर, कुवा विगेरे जळाशयोमां.

३ अग्निनुं स्थान—मानुषोत्तर पर्वत सुधीना अढी द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्रमां (तेमां पण युगलक्षेत्रोमां नहि).

स्तिकायना) स्कंध--देश--प्रदेश—अने परमाणु, ए सर्व मळी अ-जीवद्रव्य (अजीवतत्त्व) १४ प्रकारे छे.

विस्तरार्थः—ए प्रमाणे (जीवनुं स्वरुप) जीवतत्त्व कहीने हवे अजीवतत्त्व कहेवाना प्रारंभमां प्रथम अजीवतत्त्वना १४ भेद दर्शावे छे ते आ प्रमाणे. (अजीवतत्त्व जीवनुं साहाय्यक द्रव्य छे.)

१ धर्मास्तिकाय (स्कंध).
२ धर्मास्तिकाय देश.
३ धर्मास्तिकाय प्रदेश.
४ अधर्मास्तिकाय (स्कंध).
५ अधर्मास्तिकाय देश.
६ अधर्मास्तिकाय प्रदेश.
७ आकाशास्तिकाय (स्कंध).
८ आकाशास्तिकाय देश.
९ आकाशास्तिकाय प्रदेश.
१० काळ.
११ पुद्गलस्कंध.
१२ पुद्गल देश.
१३ पुद्गल प्रदेश.
१४ पुद्गल परमाणु.

ए १४ भेदनु स्वरुप दर्शाववा प्रथम धर्मास्तिकायादि ५ अजीव पदार्थ अने स्कंधादिनो अर्थ कहेवाय छे.

॥ धर्मास्तिकाय. ॥

जीव अने पुद्गलने गति करवामां सहाय करनार जे द्रव्य (पदार्थ) ते 'धर्मास्तिकाय' कहेवाय. अहिं 'धर्म' एटले गतिसाहाय्यक गुण, 'अस्ति' एटले प्रदेशना, काय'–समूह, ते धर्मास्तिकाय.

आ जगतमां मूळ द्रव्य (पदार्थ) ६ छे. तेमां एक स्थानथी बीजे स्थाने जइ शके तेवां गतिक्रियावाळां जीव अने पुद्गल ए बे द्रव्य छे, तेमां जीव पोताना स्वभावे अने पुद्गलना [1]आलंबनथी अने

[1] आ भवमां भवधारणीय औदारिकादि देहना आलंबनथी अने परभवमां जतां कार्मणदेहनी प्रेरणाथी जीवनी गतिक्रिया प्रवर्ते छे, कारणके जीवने भवान्तरमां लइ जनार कार्मण शरीरज होय छे माटे.

कर्मनी प्रेरणाथी जेम गति करी शके छे, तेम पुद्गलो पण पोताना स्वभावथी तथा जीवनी प्रेरणाथी पण * गति करी शके छे, ए प्रमाणे ते बन्ने द्रव्यो गति क्रिया (कार्यमां) परस्पर संबंध वाला तथा संबंध विनाना पण छे जो के जीव-पुद्गलोनी गति क्रिया (कार्य) उपर बताव्या प्रमाणे प्रवर्ते छे, तोपण ते क्रियामां अवश्य अन्यद्रव्यनी अपेक्षा छे. पक्षिने उडवामां वायु, मत्स्यने चालवामां जल, चक्षुने चाय वस्तु देखवामां सूर्यादिप्रकाश विगेरे जेम उपकारी छे, तेम जीव-पुद्गलनी गतिमां धर्मास्तिकाय उपकारी द्रव्य छे. कारण असाधारण गुणवाळो पदार्थ होय तेज वस्तुतः उपकारी कहेवाय, माटे जो के लाकडी विगेरे बाधपुद्गलो अथवा जीव प्रयोग गतिक्रियामां कारण छे तोपण ते लाकडीमां अने जीवप्रयोगमां गतिसाहाय्यकनामनो असाधारण गुण नथी कारण ते बीजी क्रिया (कार्यो) मां पण उपकारी थाय छे. अने धर्मास्तिकायमां ते गति साहाय्यकत्व गुण असाधारण छे माटे ते उपकारी छे, वायुथी पक्षि उडी शके छे, मत्स्य जल होय तोज चाली शके छे, अने सूर्यनो प्रकाश होय तोज चक्षु वस्तुने देखी शके तेम धर्मास्तिकाय द्रव्य होय तोज जीव पुद्गलनी गतिक्रिया थइ शके अन्यथा नहि: ए धर्मास्तिकाय द्रव्यना निर्विभाज्य विभागो (प्रदेशो) असंख्य छे ने ते दरेक प्रदेश परस्पर स्पर्श संबंधथी साथे साथे जोडाइने रह्या छे जेथी ए पदार्थ १४ राज जेटलो जग्या रोकीने रह्यो छे, अने तेथी मुरजनिष्ठक आकारे रहे-

* " श्री प्रज्ञापनाजी " विगेरेमां पुद्गलना दशविध परिणामोमां गति परिणाम बताव्या छे. तेमज " श्री भगवतीजी" मां पण परमाणु उत्कृष्टगतिए एक समये उर्ध्वलोकान्तथी अधो-लोकान्त(१४राज क्षेत्र)मधी गति करी शके छे. तेम कहेलुं छे.

ल छे. अने ए पदार्थ जगतमां एकज छे. वळी भाषा–उच्छ्वास मन–वगेरे पुद्गलनु ग्रहण धर्मा० विना गतिना अभावे न थइ शके, माटे जीवनी गतिक्रियामां अने [1]भाषा–उच्छ्वास–मन–काय योग इत्यादि चल क्रियाओमां सर्वत्र धर्मास्तिकाय उपकारी छे.॥१॥

॥ अधर्माऽस्तिकाय ॥

जीव-पुद्गलने स्थिर थवामां जे सहाय करनार द्रव्य ते " अधर्माऽस्तिकाय " कहेवाय. अहिं गतिसाहाय्यकगुणथी विपरीत जे स्थिरसाहाय्यक गुण ते " अधर्म," तेनो अस्तिकाय एटले प्रदेशसमूह ते अधर्माऽस्तिकाय. जेम गतिक्रिया करता जीवपुद्गलने उपकारी द्रव्य धर्मास्तिकाय कहेवाय छे. तेम गतिक्रियाथी स्थिर थता माटे उपकारी द्रव्यने "अधर्मास्तिकाय" कहेवामां आवे छे. वटेमार्गु (मुसाफर) ने जेम छायास्थल मत्स्यने जेम द्वीप (बेट) अने उडता पक्षीने स्थिर थवामां जेम भूमि अथवा वृक्ष अथवा गिरिनुं शिखर उपकारी छे, तेम गति करता जीवपुद्गलने स्थिर थवा माटे अधर्मास्तिकाय द्रव्य उपकारी छे. जो अधर्मास्तिकाय द्रव्य न होय तो जीवपुद्गलनी गति ज चालु रहे पण स्थिरता न थाय. पुनः [2]बेसवामां–उभारहेवामां–आलंबनमां(–कोइवस्तुने धरीराखवामां)अने चित्तनी स्थिरतादि स्थिरकार्योमां आ अधर्मा०कारणरूपछे.

शंका—धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्य पण स्थिर छे तो तेओने उपकारी अधर्मास्तिकाय छे के नहि ? अने जो ते द्रव्योने स्थिर रहेवामां पण अधर्मा० उपकारी होय तो मात्र जीवपुद्गलने ज उ-

1. जीवानामागमचेष्टासु. गमनागमनादिषु । भाषामनोवाक्काय-योगादिष्वेति हेतुतामा ॥१॥(इति द्रव्यलोक द्वितीयसर्गः)

2. अथ निषदनस्थान-शयनालंबनादिषु । प्रयाति हेतुतां नित्यं योगादिस्थिरतासु च ॥१॥" ।इति द्रव्यलोके द्वितीयसर्गः।

पकारी छे एम केम कहेवाय ?

उत्तर—धर्मास्तिकायादि द्रव्यो अनादि स्वभावेन स्थिर छे, कारणके ते द्रव्योमां कोइपण काळे गतिक्रिया संभवतीज नथी तो पछी तेओने गतिक्रियाथी निवृत्त थवारूप स्थिरता पण क्यांथी होय ? के जेथी अधर्मास्तिकाय तेओने उपकार करे ? अर्थात् जेओ स्वभावेज स्थिर छे तेओने स्थिरतामां अन्यद्रव्यनी जरुर नथी, परन्तु जेओने गतिक्रियाथी निवर्तीने स्थिर थवुं छे तेओनेज अन्य सहायक द्रव्यनी अपेक्षा रहे छे. माटे गति परिणामी जीवपुद्गल ए बे द्रव्यनेज स्थिर थवामां अधर्मा० उपकारी छे. ए द्रव्यना पण धर्मास्तिकायना जेटला (सरखी संख्याए) असंख्य देशो तथा (प्रदेशो) छे, अने ते धर्मास्तिकायवत् चौदराज जेटला क्षेत्रमां सुप्रतिष्ठाकारे अथवा वैशाखसंस्थाने अवगाही रह्यो छे.

ए धर्मा० अने अधर्मा० बे द्रव्यो जेटला क्षेत्रमां (आकाशमां) रह्यां छे तेटलाज क्षेत्रनुं नाम लोक एवी संज्ञा छे. जेथी ए बे द्रव्यो लोक प्रमाण अवगाहवाळां कहेवाय छे. वळी ए बन्ने द्रव्यो दूधमां साकरनी पेठे परस्पर प्रवेश करीने रहेलां छे. ॥८॥

॥ आकाशास्तिकाय ॥

धर्मास्तिकायादि द्रव्योने रहेवाने अवकाश (जग्या) आपनार जे द्रव्य ते आकाशास्तिकाय. आ द्रव्यमां सर्व द्रव्यो व्याप्त थइने जग्या लइने रह्यां छे, जो आ द्रव्य न होय तो धर्मा० आदि द्रव्यो क्यां रहे ? माटे सर्व द्रव्योने अवकाश आपनार आ द्रव्य छे. वळी आ द्रव्यना प्रदेशो अनन्त छे अने ते चारे बाजु सर्व दिशाए अनन्त योजन जेटला अपार क्षेत्रमां रह्या छे. वळी आकाशद्रव्य लोकाकाश अलोकाकाश एम बे प्रकारे छे. त्यां जेटला आकाशमां

धर्मा० अने अधर्मा० रहेल छे तेटला आकाशनुं नाम लोकाकाश, अने ते शिवायनुं सर्व अलोकाकाश छे, लोकाका० असंख्य योजन जेटलो सुप्रतिष्ठआकारे छे, अने अलोकाकाश [१] पोला गोळा सरखो छे, वळी पूर्व पश्चिमादि दिशाओ पण आकाश द्रव्यना विभाग रूप ज छे परन्तु नैयायिकादिनी माफक नवीन कल्पित दिशाद्रव्यनथी आकाश विभागथीज "दैशिक परत्वापरत्व" व्यवहार थई शके छे. कारणके गोस्तनाकार आठ रुचक प्रदेशथी विजय दरवाजा तरफ (ज्यां भरत क्षेत्रनो सूर्य उगे छे ते तरफ) बे बे प्रदेशो वधती पूर्व दिशानीकळी छे, ए रीते शेष दिशाओ पण बे बे प्रदेशो वधती निकळेली छे. अने विदिशा एकेकप्रदेशनी पंक्ति रूप(मुठेलामोतीना एकसरी हार सरखी) नीकळी छे. अने ऊर्ध्व तथा अधोदिशा चार चार प्रदेशनी निकळी छे. ए दिशाओनी मर्यादा करनार आठरुचक प्रदेश (रुचक नामवाळा आठ आकाश प्रदेश) जंबुद्वीपना मेरुपर्वतनी तलहटीए मेरुना अंदरना मध्य भागमां छे. ने त्यांथी दिशा विदिशाओ निकळी छे. वळी ऊर्ध्वलोक विगेरे लोकाकाशना अनेक विभागो छे. लोकाकाश १४ राज लोक प्रमाण छे. ॥३॥

॥काळ.॥

द्रव्यना वर्तनादि पर्याय ते नैश्चयिक काळ, अने ज्योतिश्चक्रना भ्रमणथी उत्पन्नथतो जे समय–आवलि–मुहूर्तादि ते व्यवहारकाळ (१३मी गाथामां कह्यो छे.) काळ बे प्रकारे छे. वास्तविकरीते तो काळ ए परमाणुओना जेवो पदार्थ नथी, परन्तु सर्व द्रव्योमां वर्तनादि पर्याय साधारण रीते होवाथी उपचारे ते वर्तनादिपर्यायमां उपकारी होवाथी काळने द्रव्य गणेल

१ कारण के लोकाकाश जेटलो आकाश अलोक न गणाय अने लोकाकाश जेटलुं अंदरना भागमां पोलाण रहेवाथी.

गमेल छे. ए संबंधी सिद्धांत अने ग्रन्थोमां घणी चर्चा छे. हवे ते काळ द्रव्यमां प्रथम नैश्चयिककाळनुं स्वरूप दर्शाववा माटे तेना(काळना) कार्यरूप वर्तनादि पर्यायनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे.

॥ [1] नैश्चयिक काळनुं स्वरूप ॥

१ वर्तनापर्याय–सादि सान्तादि भेद वडे (सादि सान्त-सादि अनन्त–अनादि सान्त–अने अनादि अनन्त ए) चार प्रकार स्थितिमांथी कोइपण स्थितिमां कोइपण प्रकारे वर्तवुं ते 'वर्तना.' ए वर्तना प्रतिसमय बदलाया करे छे. परन्तु कोइपण प्रकारनी त्रिक्षित एक वर्तना बे समयसुधी टकती नथी, ए हेतुथी ए वर्तनाने पर्याय (पराट्टति) कहेवामां आवे छे. "द्रव्याणां सादिसान्तादिभेदैः स्थित्यां चतुर्विदि ॥ यत्केनचित् प्रकारेण, वर्तनं वर्तना हि सा ॥ १ ॥" इति काललोकप्रकाशवचनात्

२ परिणाम पर्याय—प्रयोग अने विश्रसादिथी उत्पन्न थयेली नवापणा अने जुनापणानी जे परिणति ते परिणाम, अर्थात् प्रयोगथी, स्वभावथी, अथवा उभयथी (ए त्रणेथी) द्रव्योमां जे नवापणुं अने भींतरा-जुनापणुं उत्पन्न थाय छे ते परिणमनने परिणाम कहेवामां आवे छे. ते ए द्रव्योमां जुनापणुं मटीने नवापणुं,

[1] आ नैश्चयिककाळ द्रव्योना वर्तनादि पर्यायरूप होवाथी जीवद्रव्यना वर्तनादिपर्यायोरूप काळ जीव. अने अजीवद्रव्योना वर्तनादिपर्यायोरूप काळ अजीव गणाय छे. ए रीते ...द्रव्य जीवाजीवरूप. जीवद्रव्य करतां अजीवद्रव्य ...गुण होवाथी ...कालने ... (इति ...) पुनः आ ...विककाळ ...छे. अने ... व्यावहारिक काळ ... छे.

अने नवापणुं मटीने जूनापणुं थवारूप परावृत्ति ते 'पर्याय' कहेवाय. कारणके कोइपण द्रव्य सदाकाळ जूनुं के नवुं रहेतुं नथी. अहिं नवुं एटले मेळविनानुं चोख्खुं एवो अर्थ नहिं, पण नवुं एटले अभिनव (नवा) पर्यायोनी उत्पत्तिवाळुं एवो अर्थ करवो. काललोकमां कह्युं छे के "द्रव्याणां या परिणतिः, प्रयोगविस्रसादिजा । नवत्त्वजीर्णताद्या च, परिणामः स कीर्त्तितः"॥१॥इति, अथवा परिणाम एटले द्रव्यनो अथवा द्रव्यना गुणनो जे स्वभाव ते परिणाम, कह्युं छे के- "धर्मादीनां द्रव्याणां यथोक्तानां च गुणानां स्वभावः स्वतत्त्वं परिणामः" इति तत्त्वार्थभाष्यवचनात्, ते परिणाम सादिपरिणाम अने अनादि परिणाम एम बे प्रकारे छे, त्यां धर्मा० अधर्मा० आ-आकाशा० अने जीव ए चार अरूपी पदार्थ अनादि परिणामवाळा छे, अर्थात् ए द्रव्योना गतिसाहाय्यकत्वादि स्वभाव अनादि अनन्त काळ परिणतिवाळा छे, अने पुद्गल द्रव्य सादि परिणामी छे, कारणके पुद्गलनो स्पर्शपरिणाम-रसपरिणाम वगेरे सर्व परावृत्तिधर्मवाळा छे. अहीं अपवाद ए छे के सर्व जीवमां जो के जीवत्वादि अनादि परिणामी छे. परन्तु योग अने उपयोग ए बे (परावृत्तिधर्मवाळा होवाथी) आदि परिणामि छे. इति तत्त्वार्थभाष्यानुसारेण

३ क्रियापर्याय—द्रव्योनी भूतकाळमां थयेली, भविष्यकाळमां थवानी अने वर्तमान काळमां थती जे चेष्टा ते क्रियापर्याय. ए अर्थ श्री काल लोकप्रकाशनो छे, अने तत्त्वार्थ भाष्यमां तो "क्रिया गतिः । सा त्रिविधा । प्रयोगगतिर्विस्रसागतिर्मिश्रिकेति." क्रिया एटले गति ते त्रण प्रकारे छे, प्रयोगगति (परना प्रयत्नथी उत्पन्न थयेली गति)--विस्रसागति (स्वभावे उत्पन्न थयेली गति)--अने मिश्रगति (उभयथी उत्पन्न थयेली गति) एवो अर्थ छे, त्यां गति एटले द्रव्योनुं स्वस्वप्रवृत्तिमां गमन ए अर्थ लेवाथी प्रथमना

अर्थ साथे अविरोधि छे.

४-५ परत्वाऽपरत्व पर्याय–जेना आश्रयथी द्रव्यमां पूर्वभावित्व अने पश्चाद्भावीनो व्यपदेश थाय ते परापरत्व पर्याय ३ प्रकारनो छे. ते आ प्रमाणे—धर्म अथवा ज्ञान "पर" (श्रेष्ठ) छे, ने अधर्म तथा अज्ञान"अपर"(हीन) छे ए व्यपदेश प्रशंसाकृत परापरत्व कहेवाय, १ तथा एकज दिशामां एकी वखते रहेल बे पदार्थमां जे पदार्थ दूर होय ते पर अने नजीक होय ते अपर, एवो जे व्यपदेश तेक्षेत्रकृत पराऽपरत्व कहेवाय.२तथा १६ वर्षनी स्थितिवाळा द्रव्यथी १००वर्षनी स्थितिवाळुं द्रव्य पर(उत्कृष्ट), अने १००वर्षनी अपेक्षाए १६ वर्षनी स्थितिवाळुं द्रव्य अपर, (जघन्य),एवो जे व्यपदेश, ते कालकृत परापरत्व कहेवाय३(अहिं बे पर्यायनो संबंध एकत्र कहेल छे.) ए प्रमाणे वर्तनादि ५ पर्यायो ते काळनोज उपकार छे. "वर्तना परिणामः क्रिया परत्वाऽपरत्वे च कालस्य"(इति तत्त्वा० अ०५ सू०). परन्तु परत्वापरत्वमां प्रशंसाकृत अने क्षेत्रकृत ए बे भेद काळ द्रव्यना उपकारथी नथी, एम जाणवुं "नदेवं प्रशंसाक्षेत्रकृते परत्वाऽपरत्वे वर्जयित्वा वर्तनादीनि कालकृतानि कालस्योपकार"[इतितत्त्वा०भा०]

अथवा वर्तमान एक समय ते (ऋजुसूत्रनयनी अपेक्षाए) नैश्चयिक काळ कहेवाय, कारणके वर्तमान समय विद्यमान छे. अने भूतकाळ व्यतीत थएल होवाथी, भविष्य काळ आवेलो नहिं होवाथी बन्ने अविद्यमान छे. माटे जे विद्यमान वर्तमान काळ ते नैश्चयिक काळ एम पण कही शकाय. काल लोकप्रकाशमां कह्युं छे के "वर्तमानः पुनर्वर्त्त-मानैकसमयात्मकः । असौ नैश्चयिकः सर्वोऽप्यन्यस्तु व्यावहारिकः ॥१॥" ए प्रमाणे निश्चयकाळनुं स्वरूप कह्युं. व्यावहारिक काळनुं स्वरूप चालु प्रकरणनी १३ मी गाथाना विवेचनमां कहेवाशे.

॥ व्यवहारिक काळनुं स्वरूप. ॥

आगळ "समयावलि मुहुत्ता" ए गाथामां कहेवाशे. ॥३४॥

॥ स्कंध, ॥

कोइपण पदार्थनो [1]आखो भाग के जे अनेक अणु मळीने थयो होय ते ते पदार्थनो [2]स्कंध कहेवाय. जेम अखंडमोती, अखंड मोदक, अखंड पत्थर ए सर्वनुं अखंड पणु स्कंध कहेवाय. तेम चौद राज प्रमाण वज्राकार धर्मास्तिकाय ते धर्मास्तिकाय स्कंध, ए प्रमाणे चौदराज प्रमाण वज्राकार अधर्मा० ते अधर्मा० स्कंध, अनंत योजन प्रमाण आकाश नो गोळो ते आकाशा० स्कंध, (लघुमां लघु अंगुलना असंख्यातमा भाग जेवडो अने वधुमां वधु १४ राज प्रमाण मोटो असंख्य प्रदेशात्मक एक जीव ते जीवस्कंध,(अजीवना प्रकरणमां जीवस्कंधनु प्रयोजन नथी तो पण प्रसंगतः जीवद्रव्यमां पण स्कंधत्वप्राप्ति दर्शाववाने अहिं कहेल छे.)एक आकाश प्रदेश बे आकाश प्रदेश त्रण आकाश प्रदेश यावत् असंख्य आकाश प्रदेश (१४ राज प्रमाण) जेवडा द्विप्रदेशी बे परमाणुनो बनेलो, त्रिप्रदेशी, चतुः प्रदेशी यावत् अनंत प्रदेशी पुद्गल विभागो पुद्गल स्कंध कहेवाय.

---

१ आ " आखो भाग " ने स्कंध एम कहेवामां अने तो परमाणुने पण स्कंध कहेवो पडे ते अनिष्ट छे माटे " अनेक अणुमळीने " एम कह्युं छे.

२ ' स्कन्दन्ते-शुष्यन्ति पुद्गलविघटनेन, धीयन्ते-पुष्यन्ति च पुद्गलचटनेनेति स्कन्धाः ' आ व्युत्पत्तिथी पुद्गलनुं भरावुं अने विखरावुं जेमां थाय ते स्कन्ध कहेवाय छे. माटेज प्राचीन महापुरुषोए धर्मास्तिकायादि शाश्वत द्रव्योमां स्कन्ध व्यवहार मान्यो नथी. केटलाक माने छे ते अपेक्षाए व्याख्यानथी.

पुनः जे पुद्गलनो प्रथम आखो भाग कल्प्यो होय तेमांथी कं-
इक विभाग जुदा छतां पण ते विभागने जो स्कंध तरीके गणवो
होय तो गणी शकाय. जेम आखुं हस्त ए स्कंध छे, परन्तु तेमां मू-
ळ पत्र या पट इत्यादि अवयवोने दरेकने स्कंध तरीके गणवा हो-
य तो गणी शकाय, पुनः पट स्कंधमांथी फाडीने एक स्कंध बना-
व्यो होय तो ते स्कंध पण स्कंध कही शकाय. अथवा पर्वतमांथी
तूटी पडेली मोटी शिला स्कंध कहेवाय. पुनः ते शिलामांथी तूटी
पडेलो ए पथर पण स्कंध कही शकाय. ए प्रमाणे पुद्गल द्रव्यना
अमुक कल्पेला स्वरूपमां छूटा पडेला या संबंध करी रहेला द्वि-
प्रदेशी सुधीना विभागने पण स्कंध कही शकाय, कारणके पुद्गल-
द्रव्यमां स्कंध अने देशनो व्यपदेश परस्पर अपेक्षा वाळो होवाथी
अनियमित छे. संबद्ध होय त्यां सुधी कल्पित अमुक भागने देश
मानवो एज उचित छे.

॥ देश. ॥

स्कंधनो अमुक भाग (जेम स्कंधमांनो जे न्यून विभाग ते देश
[illegible]हेवाय. देश-खंड-विभाग इत्यादि देशना एकार्थदर्शक शब्दो छे.
[illegible]न भागमां कोईनांथी कोइ विभाग तूटी गयो होय तो ते कोनी
[illegible]वना भाग कोईनी अपेक्षाए कोईनो देश. भाग कोई की-
[illegible] होय तो कोई स्कंध कोईक नवना आखा कोईकनी अपेक्षाए
[illegible] (भाग) कहेवाय, अथवा तूटेलो पथर ते नवना अखंड प-
[illegible]नी अपेक्षाए देश विभाग कहेवाय. ए प्रमाणे जे तूटायी अने-
[illegible] देश ते अप्रतिबद्ध देश कहेवाय. अने स्कंधथी कोइपण वि-
[illegible] संहित प्रतिबद्ध ते स्कंधनो कोई भाग अर्धो भाग इत्या-
[illegible]रवना करीए तो तेवो स्कंध प्रतिबद्ध कल्पित विभाग देश

[1]प्रतिबद्ध देश कहेवामां आवे छे. आ देश विभागनो व्यपदेश एक प्रदेशन्यून अनंत प्रदेशथी मांडीने यावत् द्विप्रदेशी विभाग सुधी थइ शके,[2] अने ते व्यपदेश अनंत प्रदेशात्मक संपूर्ण स्कंधथी मांडीने यावत् त्रिप्रदेशी स्कंध सुधीना सर्व स्कंधोमां थइ शके,[3] परन्तु द्विप्रदेशी स्कंधमां देश विभाग होइ शके नहि, कारण के ए स्कंधनो विभाग करतां जतां बन्ने विभागो छुटा थवाथी बे परमाणु कहेवाय अने संलग्न होय तो द्विप्रदेशी स्कंध अथवा बे प्रदेशो कहेवाय, पण देशविभाग कोइ रीते न कहेवाय. धर्मादि द्रव्योमां देश विभाग पण एज आ प्रमाणे छे.

१ श्री भगवतीसूत्रमां ३४मा शतकना सूत्रमां कह्युं छे के "स्कंधो देश प्रदेश सविभाग थाय छे [illegible] धर्मास्तिकायना विभागरूप देश [illegible] अधर्मादि [illegible] विभाग अने प्रदेश [illegible] थाय छे" ए प्रसंगना [illegible] विभाग [illegible] अप्रतिबद्ध देश अने प्रतिबद्ध देश [illegible] अविभागथी थयेला छे. कारण के धर्मास्तिकायादि अरूपी द्रव्योमां [illegible] देश विभागने प्रतिबद्ध देश नहीं. [illegible] पुद्गलस्कंधमां बन्ने विभागोने अप्रतिबद्ध देश नहीं. [illegible] पुद्गलस्कंधमां बन्ने प्रकारना देश पण होय छे.

२ एम एक प्रदेशन्यून [illegible] मांडीने द्विप्रदेशी सुधीनो [illegible] विभाग सुधीना पण विभागो [illegible] देश कहेवाय. जेम १० प्रदेशी स्कंधमां नवप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, सप्तप्रदेशी, षट्प्रदेशी, पंचप्रदेशी, चतुष्प्रदेशी, त्रिप्रदेशी, अने द्विप्रदेशी ए ८ देशविभाग कहेवाय तथा १० प्रदेशविभाग, अने १ स्कंध कहेवाय.

३ एम प्रदेशन्यूनत्व [illegible] विभाग संपूर्ण स्कंधमां संभवे छे, अने त्रिप्रदेशी सुधीना स्कंधमां त्रिप्रदेशी सुधी देश विभाग छे इत्यादि.

धर्मास्तिकाय जो के अखंड द्रव्य छे, एनो विभाग जुदो पडी शकतो नथी तो पण संपूर्ण धर्मास्ति०नी अपेक्षाए एक प्रदेश न्यून-धर्मा०, द्विप्रदेशन्यून धर्मा० यावत् द्विप्रदेशीधर्मा० सुधीना असंख्य विभागो कल्पी शकाय छे, ए हेतुथी प्रतिबद्ध देशनी अपेक्षाए धर्मास्तिकाय [1] देश कही शकाय छे. ए प्रमाणे अधर्मा० देश–आकाशा० देश.–अने (आ अजीव प्रकरणमां अनुपयोगी छे तो पण) जीव देश पण धर्मा० देशवत् जाणवा. तथा अनादि अनंत पुद्गल स्कंधो [मेरु -शाश्वतमंदिर–शाश्वत प्रतिमा वगेरे] पण प्रतिबद्धदेश वाळा छे, अने शेष अशाश्वत (क्षणभंगुरविनाशी) पुद्गलस्कंधो प्रतिबद्धदेश तथा अप्रतिबद्धदेश वाळा जाणवा. कारणके विभाग धर्मयुक्त पुद्गल स्कंधमांथी पण ज्यां सुधी विभाग जुदो नथी थयो ते दरम्यानमां पण धर्मास्ति० देशवत् देश पणानी कल्पना थइ शके छे. बाकी प्रतिबद्धदेश व्यपदेश स्कंधमां बुद्धिथी कल्पित विभागने मानवो तेज उचित छे.

प्रदेश.

स्कंधमां लागेलो जे परमाणु ते प्रदेश कहेवाय. प्र० उत्कृष्ट देश–विभाग ते प्रदेश. अर्थात् अति उत्कृष्ट विभाग ते प्रदेश कारणके प्रदेशथी परमन्यून विभाग कोइ पण नथी. छेल्लामां छेल्लो विभाग तेज प्रदेश छे. पुनः प्रदेश करतां नानो विभाग आ जगतमां कोइ नथी. ए हेतुथी अतिनानामां नाना विभाग ते प्रदेश कहेवाय. के जे विभाग एक परमाणु मात्र कल्पेल छे. त्यां धर्मा-

[1] जेम आकाश द्रव्य अखंड होवा छतां पण घटाकाश पटाकाश इत्यादि खंड आकाशनो व्यपदेश थाय छे, तेम अत्रे पण धर्मास्तिकाय अखंड द्रव्यनो घटधर्मास्तिकाय व्यपदेश थइ शके ते ते घटधर्मास्तिकाय संपूर्ण धर्मास्ति०नो देश कहेवाय.

स्तिकायना असंख्य अणुओ पिंडित थइने स्कंधरूपे अनादिकाळ-
थी परिणमेला होवाथी धर्मा०ना सर्व अणुओ (प्रत्येक अणु)
धर्मा०नो प्रदेश कहेवाय छे. ए प्रमाणे अधर्मा० प्रदेश, [1]आकाश-
प्रदेश अने जीवप्रदेश पण कहेवाय छे. तथा द्विप्रदेशी स्कंधथी
अनन्त प्रदेशी पुद्गल स्कंधोमां लागेला सर्व अणु (परमाणु) पुद्गल
प्रदेश कहेवाय छे.

॥ परमाणु. ॥

स्कंधने नहि वळगेलो एवो जे छूटो अणु ते परमाणु कहेवाय.
'परम'-उत्कृष्ट, 'अणु'-अणु ते परमाणु. त्यां धर्मास्तिकायना सर्व अ-
णुओ स्कंधमां वळगेला होवाथी धर्मास्तिकायनो परमाणु नथी,
अने तेवीज रीते अधर्मा० वगेरे ३ द्रव्यना (अधर्मा०-आकाश-
अने जीव द्रव्यना) अणुओ पण अनादि अनन्त काळसुधी स्कंधमां
वळगेला होवाथी ए ३ द्रव्यना परमाणु नथी. अने पुद्गल द्रव्यनो
वास्तविक रीते परमाणुज छे. अने स्कंध, देश, अने प्रदेश ए त्रणे
पुद्गल परमाणुना विकाररूप छे, कारणके ६ द्रव्यमां जीव अने पु-
द्गल द्रव्य विभावस्वभावी छे, त्यां जीवना देवत्व नरत्वादि अने
पुद्गलना स्कंधादि विभावस्वभाव छे, माटे तत्त्वथी तो परमाणु
ज पुद्गल छे, अने स्कंधादि तो उपचारथी (व्यवहारथी) पु-
द्गलरूपे गणाया छे.

प्रश्नः—६ द्रव्यमां धर्मास्तिकायादि ५ द्रव्यना स्कंध देश अने
प्रदेशादि कह्या अने काळद्रव्यना स्कंधादिनी गणत्री केम न करी?

---

१ धर्मा० अधर्मा० अने एक जीवना प्रदेशो सरखा [illegible] असंख्यात छे अने आकाशना [illegible] अनन्त अनन्त [illegible] अने आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी होवाथी आकाश [illegible].

उत्तर—प्रथम कही गया मुजब काळ ए प्रदेश समुदायात्मक द्रव्य नथी पण पांच द्रव्योनी वर्तनादि पर्यायरूप गुणने उपचारथी काळद्रव्य गणेल छे तो पछी अणुरहित काळना स्कंधादि भेद होइ शके. अने काळना प्रदेशो (अणुओ) नहि होवाथीज गाथामां पण काळ एकज द्रव्य भेदरूपे गणेल छे. अने शास्त्रकारो काळने अस्तिकाय-प्रदेशनो समूह नहि होवाथी कालास्तिकाय कहेता नथी पण मात्र " काळ " ए शब्दथीज ओळखे छे.

शंका—प्रदेश अने परमाणुमां तफावत शुं ?

उत्तर—प्रदेश अने परमाणुमां तफावत मात्र एटलोज छे के स्कंधने वळगेलो होय तो प्रदेश, अने स्कंधथी छूटो अणु होय तो परमाणु कहेवाय.

शंका—प्रदेश मोटो के परमाणु मोटो ?

उत्तर—प्रदेश अने परमाणु ए सरखा प्रमाण छे. किंचिमात्र पण नाना मोटा नथी, केवळ स्कंध प्रतिबद्ध होवाथी प्रदेश अने छूटापणाने लइने परमाणु एवो व्यपदेश अवस्था भेदने अंगे छे. जेम कोइक कन्या पियरमां होवाथी दीकरी अने तेज कन्या सासरे जवाथी वहु कहेवाय छतां ते कन्यामां कोइ जातनो फेरफार बनतो नथी तेम छूटो अणु ते परमाणु अने स्कंध प्रतिबद्ध अणु ते प्रदेश कहेवाय पण कद अथवा आकारमां कंइ तफावत पडे नहि.

ए परमाणु अने प्रदेश बन्ने सूक्ष्म द्रव्यना निर्विभाज्य भाग छे. ए परमाणु अथवा प्रदेशना बे विभाग न थइ शकाय, शास्त्रे सूक्ष्म द्रव्यनो अन्त्य विभाग तेज परमाणु छे. एवो ए परमाणु शस्त्रथी कापतां छेदाय नहि, अग्निमां बळे नहि, पवनथी उडे नहि, पाणीथी भींजाय नहि, एवो अति सूक्ष्म छे. पुनः ए परमाणुनी गति ना प्रकार सांभळो (?) कोइथी रोकाय नहि एवी 'अप्रतिहत

छे, अने एक आकाश प्रदेशमां अवगाही (समाइ) रहे छे. एवा दस बार पंदर पचीस सो हजार लाख के अबज सूक्ष्म परमाणुओ भेगा मळे तो पण दृष्टिगोचर थाय नहिं, एथी पण वधु संख्यात के असंख्यात–अनन्त परमाणुओ भेगा मळवां पण दृष्टिगोचर थाय नहिं परन्तु ज्यारे अमुक प्रमाणमां घणा अनंत बादर[*]परिणामी परमाणु भेगा मळे तोज दृष्टिगोचर थइ शके एवा अतिसूक्ष्म परमाणु होय छे. जाळीभाना तेजमां उडता रजकणमां, अने एक वालाग्रमां पण अनंत परमाणुओ रहेला छे. इत्यादि परमाणुनुं विस्तृत स्वरूप ग्रन्थान्तरथी जाणवा योग्य छे.

---

१ पवन-जळ अग्नि इत्यादिवडे परमाणु अप्रतिघाती छे परन्तु ३ प्रकारे प्रतिघाती पण छे. त्यां विस्रसाप्रतिघातथी एटले परमाणुनो अन्य परमाणु साथे संबंध थवाथी बाधक [illegible] प्रतिघाती. अलोकमां धर्मास्तिकाय नहिं होवाथी त्यां गतिसहायकथी आगळ धर्मास्तिकायनो उपकार परमाणु उपर नहिं होवाथी परमाणु आगळ [illegible] थाय छे-अथवा छे तेथी उपकाराभावप्रतिघाती. अने वळी (विस्रसा परिणामे) गति [illegible] परमाणुनी [illegible] नहिं थई सामां आवतां बीजा परमाणु अटकावे छे, ए हकीकतथी परमाणु [illegible]प्रतिघाती छे. ([illegible] ३ प्रकारना प्रतिघात [illegible] ५ मा [illegible] २१ मा [illegible] वृत्तिमां कह्या छे), माटे [illegible] परमाणुमां प्रतिघातित्व अने अप्रतिघातित्व [illegible] छे [illegible] एथी परमाणु अप्रतिघाती कहेवाय. [illegible] शब्दादि पुद्गलो [illegible] अप्रतिघाती होवा छतां वायु इत्यादिवडे प्रतिघात [illegible] [illegible] [illegible] परमाणुना ए ३ प्रकारे [illegible] [illegible] अप्रतिघातीपणुं नथी परन्तु अमुक अमुक [illegible] [illegible] प्रतिघात पण [illegible].

* बादर परिणामी [illegible]

॥ कया द्रव्यना स्कंधादि भेद केटला ? ॥

स्ति० (स्कंध)—एक छे.

स्ति० देश—असंख्य छे. (दरेक विभाग एवेक प्रदेश न्यून
कल्पवाथी बे न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण.)

स्ति० प्रदेश—असंख्य छे, ने धर्मा० देशनी संख्याथी बे अधिक

स्ति० (स्कंध)—एक छे.

स्ति० देश—असंख्य छे. (२ न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण.)

स्ति० प्रदेश—असंख्य छे, ने अधर्मा० देशनी संख्याथी
बे अधिक छे.

शास्ति० (स्कंध)—एक छे.

शास्ति० देश—अनंत छे. (२ न्यून स्वप्रदेश संख्या प्रमाण.)

शास्ति० प्रदेश—अनंत छे, ने आकाशा० देशनी संख्याथी
बे अधिक छे.

नकाय (स्कंध)—अनंत छे (जीव द्रव्य अनंत होवाथी.)

वकाय देश—एक जीवना देश (बे न्यून स्वप्रदेश संख्या
प्रमाण) असंख्य, अने सर्व जीवना देश

दृष्टिगोचर थाय. अने सूक्ष्मपरिणामी स्कंधो तो गमे
[illegible] संख्याथ [illegible] थाय अने [illegible] जेवडुं
. तोपण दृष्टिगोचर न थाय. माटे परमाणुओ परमाणु
ां तो न सूक्ष्मपरिणामी के न बादर परिणामी छे,
रे स्कंधरूपे परिणमे छे त्यारेज पूर्वोक्त बे रीते परि-
णम जाणवुं.

स्ति०दिकमां स्कंध [illegible]कल्पित छे, वास्तविक नहीं.
जेम पूर्वे १० प्रदेशी स्कंधना ८ देश विभाग दर्शा०
ाक्षे.

मळीने अनंत छे.

जीवास्तिकाय प्रदेश—एक जीवना असंख्य छे (धर्मा० या अधर्मा० प्रदेश संख्या जेटला.) सर्व जीवना प्रदेश मेळवतां अनंत छे.

पुद्गल स्कंध—अनंत छे.

पुद्गल देश—एक स्कंधमां एकथी मांडीने अनंत, (जेमके त्रिप्रदेशी स्कंधमां २ देश होइ शके, चतुःप्रदेशी स्कंधमां ३ देश होइ शके यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधमां १ न्यून प्रदेश संख्या प्रमाण अनंत देश होइ शके). ए प्रमाणे (प्रत्येक स्कंधमां गणतां) सर्व स्कंधोना मळीने पण अनंत देश छे.

पुद्गल प्रदेश—अनंत छे.

पुद्गल परमाणु—अनंत छे.

काळ—(स्कंध-देशादि नथी पण) समय अनंत छे. ए प्रमाणे संक्षेपथी अजीवना १४ भेदनुं स्वरूप कह्युं.

अवतरण—पूर्व गाथामां अजीवना १४ भेद कहीने हवे आ गाथामां कया द्रव्य अजीव छे ? अने कया द्रव्यनो शुं स्वभाव छे ? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ९ मी. ॥

धम्माऽधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा।
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥ ९ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

धर्माधर्मौ पुद्गला नभः कालः पञ्च भवन्त्यजीवाः।
चलनस्वभावो धर्मः, स्थिरसंस्थानोऽधर्मश्च ॥ ९ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

धम्म–धर्मास्तिकाय.
अधम्मा–अधर्मास्तिकाय.
पुग्गल–पुद्गलास्तिकाय.
नह–आकाशास्तिकाय.
कालो–काळ.
पंच–पांच (ए पांच)
हुंति–छे.
अजीवा–अजीव.

चलणसहावो–चालवामां सहाय आपवामां स्वभाववाळो.
धम्मो–धर्मास्तिकाय.
थिर–स्थिर रहेवामां (सहायआपवाना–इतिअध्याहार.)
संठाणो–स्वभाववाळो.
अहम्मो–अधर्मास्तिकाय.
य–अने.

गाथार्थ—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अने काळ ए पांच (पदार्थ) अजीव छे. त्यां जीव' अने पुद्गलने चालवामां सहाय आपवाना स्वभाववाळो धर्मास्तिकाय छे, अने स्थिर रहेवामां सहाय आपवाना स्वभाववाळो अधर्मास्तिकाय छे.

विस्तरार्थः—जीव अने पुद्गलने गति करवामां, सहाय कर-नार अथवा अपेक्षा कारणरूप जे द्रव्य ते धर्मास्तिकाय. जीव अने पुद्गलने स्थिर थवामां अपेक्षा कारणरूप (अथवा सहाय कर-नार) जे द्रव्य ते अधर्मास्तिकाय.

शंका—जीव अने पुद्गलमां गतिक्रिया करवानी अने स्थिर थवानी शक्ति शुं नथी के जेथी धर्मास्तिकाय अने अधर्मा० द्र-व्यथीज गतिक्रिया करी शके अने स्थिर थइ शके ?

१ आगळ १० मी गाथाना बीजा चरणमां कहेल [illegible] पु-[illegible] [illegible] प्रकृति [illegible] छे. जेथी आ [illegible] गाथामां [illegible] [illegible] जीव अने पुद्गलने [illegible] [illegible] [illegible].

उत्तर—हे जिज्ञासु ! धर्माऽस्तिकाय द्रव्य जीव अने पुद्गलने पाछळथी धक्को दइने अथवा आगळथी खेंचीने गतिक्रिया करावतुं नथी पण जीव अने पुद्गल पोतेज गतिक्रिया करवा समर्थ छे, छतां पक्षीने उडवामां जेम वायु, मत्स्यने तरवामां जेम जळ, अने चक्षुने देखवामां जे सूर्यादिनो प्रकाश अपेक्षा कारणरूप छे. तेम धर्मास्ति० पण जीव-पुद्गलनी गतिमां अपेक्षा कारणरूप छे. कारण ४ प्रकारनां छे, उपादान कारण–अपेक्षाकारण-निमित्तकारण अने- असाधारण कारण. तेमां घट बनाववामां कुंभार कर्त्ता छे त्यां मृत्तिका (माटी) ए घट रचनामां उपादान कारण, दंड चक्रादि निमित्त कारण, चक्र भ्रमण(चाकडानुं भमवुं.)असाधारणकारण, अने आकाशादि जेम अपेक्षा कारण छे, तेम जीवपुद्गलने गतिक्रिया करवामां अने स्थिर थवामां अनुक्रमे धर्मा० अने अधर्मा० द्रव्य अपेक्षा कारणरूप छे-बीजुं अधिक विवेचन पूर्व गाथामां दर्शाव्युं छे.

तथा पूरण (पूरावुं–मळवुं) अने गलन (गळवुं–झरवुं–विखरावुं–छूटा पडवुं) धर्मयुक्त जे पदार्थ ते पुद्गल द्रव्य कहेवाय. अहि परमाणु एज पुद्गल द्रव्य छे. ए परमाणुनो स्कंधरूपे मळवा योग्य, अने स्कंधथी विखरवा–छूटा पडवारूप धर्म होवाथी परमाणु ते पुद्गल कहेवाय छे. दरेक परमाणु मळवा अने विखरवाना धर्मवाळो छे, परमाणुओ ज्यारे परस्पर मळे छे त्यारे स्कंध बने छे, अने छूटा पडे छे त्यारे पुनः परमाणुज रहे छे. ए प्रमाणे परमाणुओ वारंवार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी, यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधरूपे परिणमे छे (मळे छे), अने ते स्कंधोथी छूटा पण पडे छे, त्यां कोइ पण एक परमाणु जघन्यथी १ समय अने उत्कृष्टथी असंख्य समय सुधी परमाणुरूपे छूटो रहे छे, तदनंतर अवश्य स्कंधपणे परिणमे छे. ए परमाणुनो जघन्यउत्कृष्ट काळ कह्यो. पुनः ए परमाणु ज्यारे स्कंधमां

लागे छे त्यारे " प्रदेश " एवी संज्ञाथी ओळखाय छे. पुनः
माणुओथी बनेला स्कंध–देश–अने प्रदेशरूप विकारो पण पुद्गल
कहेवाय छे. पुद्गलमां १० प्रकारना परिणाम (धर्म) रह्या छे
'सद्दंधयार उज्जोअ' गाथानां विवेचनमां कहेवाशे.

धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्योने अवकाश (जग्या) आपना
जे पदार्थ ते आकाशाऽस्तिकाय. अहिं काळ प्रथम कह्या मुजब औ-
पचारिक द्रव्य होवाथी, अने आकाश स्वयं बीजाने अवकाश आ-
पनार होवाथी आकाशद्रव्य शेष ४ द्रव्योनेज अवकाश आपवामां
उपकारी छे बीजुं अधिक वर्णन पूर्व गाथाना विवेचनमां दर्शाव्युं छे.

पांचे द्रव्योनुं जे वर्तनादि लक्षण ते (नैश्चयिक) काळ जेनुं
स्वरूप पूर्व गाथाना अने १३ मी गाथाना विवेचनमां दर्शाव्युं छे. अ-
ने व्यवहारकाळनुं स्वरूप'समयावलिमुहुत्ता'ए गाथामां दर्शावाशे.

ए पूर्वोक्त धर्मा०–अधर्मा०–पुद्गल–आकाशा०–अने काळ
ए पांच द्रव्य अजीव छे. हवे ए पांचे अजीव द्रव्यनां लक्षण ग्रंथ-
कार गाथाद्वारा दर्शावे छे के 'चलणसहावो' चलन स्वभाव युक्त ए-
टले चालनाने सहाय करवाना स्वभावयुक्त 'धम्मो'-धर्माऽस्तिकाय
छे. अने 'थिरसंठाणो'–स्थिर संस्थानवाळो अर्थात् स्थिर रहेनारने
सहाय आपवाना संस्थान-स्वभाववाळो'अहम्मो'-अधर्माऽस्तिकाय छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां धर्मास्ति० अने अधर्मा०नो स्व-
भाव कहीने हवे आ गाथामां आकाशास्तिकायनो स्वभाव अने पु-
द्गलना चार प्रकार कहे छे.

॥ मूळ गाथा १० मी. ॥

अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देसपएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥ १० ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अवकाश आकाशं, पुद्गलजीवानां पुद्गलाश्चतुर्धा ।
स्कंधा देशप्रदेशाः, परमाणवश्चैव ज्ञातव्याः ॥ १० ॥

॥ शब्दार्थः ॥

अवगाहो--अवकाश (जग्या) अवकाश आपवाना स्वभाववाळो.
आगासं--आकाशास्तिकाय.
पुग्गल--पुद्गलोने (अने)
जीवाणं--जीवोने.
पुग्गला--पुद्गलो.
चउद्दा--चार प्रकारना.
खंधा--स्कंध (आखो भाग)
देस--देश (न्यूनविभाग)
पएसा--प्रदेश (स्कंधप्रतिबद्ध अणु.)
परमाणु--सूक्ष्म अणु (स्कंधथी छूटो अणु)
चेव--निश्चय.
नायव्वा--जाणवा.

गाथार्थः—पुद्गल अने जीवोने (अध्याहारथी धर्मा॰ अधर्मा॰ कायने पण अवकाश (जग्या) आपवाना स्वभाववाळो आकाशास्तिकाय छे पुद्गलो चार प्रकारना छे, ते चार प्रकार निश्चयथी स्कंध--देश--प्रदेश--अने परमाणु जाणवा.

१ आ गाथामां कहेल पुग्गलजीवाण ए पाठनी अनुवृत्ति पूर्व गाथामां गयेली होवाथी त्यां कहेल धर्मा॰ अने अधर्मा॰ ने आश्रयी 'पुग्गलजीवाण' (एटले पुद्गल अने जीव) ए अर्थ घटी शके छे. परन्तु आकाशना संबंधमां तो धर्मास्तिकायादि चारे द्रव्यरूप अर्थ लेवो योग्य छे

शंका—जो एम होयतो गाथामां 'पुग्गलजीवाण' मात्रज पाठ केम कह्यो ?

उत्तर—धर्मा॰ अधर्मा॰ अने आकाश ए त्रणे द्रव्यना स्वभावनुं समानाधिकरण (त्रणेना स्वभावनी ग्राहकता) जीव अने पुद्गलमांज छे, माटे त्रणे द्रव्यना समानाधिकरणनो अर्थ आज गाथामां पुग्गल जीवाण ए पाठ पण योग्यज छे.

विस्तरार्थः—पुद्गलने अने जीवोने तथा अध्याहारथी धर्मा० अधर्मा०ने अवकाश (जग्या) आपवानो स्वभाव आकाश द्रव्यनो छे. ए आकाशद्रव्यना अभावे धर्मास्तिकायादिनुं अवस्थान असंभव छे. इत्यादि विशेष वर्णन गतगाथाना विवेचनमां आवी गयुं छे. तथा पुद्गलद्रव्यना स्कंध–देश–प्रदेश–अने परमाणु ए चार भेद छे. जे प्रथम विस्तरार्थमां कहेवाइ गया छे, अने शेष धर्मास्तिकाया-दिना त्रण त्रण भेद तथा काळनो एक भेद गाथाद्वारा कहेलो छे, जेथी सर्व मळी अजीवना १४ भेद संपूर्ण थया.

शंका—कया द्रव्यनो कयो स्वभाव ? ते कहेवाने प्रारंभ क-र्यां त्रण द्रव्यना स्वभाव कह्या अने अत्र पुद्गल द्रव्यनो स्वभाव कहेवानो प्रसंग छे छतां पुद्गलना भेद केम कह्या?

उत्तर—पुद्गलनो स्वभाव 'सद्दंधयारउज्जोअ' ए गाथामां आ-गळ कहेवानो छे, अने ते शब्दादि पुद्गलस्वभावो स्कंध रूप छे अने पुद्गलो वास्तविकरीते परमाणु रूप छे, तेथी परमाणुरूप पु-द्गलना स्कंधरूप शब्दादि स्वभाव केम होइ शके ? ए शंकानो अवकाश टाळवाने अर्थे आ गाथामां पुद्गलना चार भेद कहेवाइ गयु. ते योग्य छे. स्कंध देश प्रदेश अने परमाणु ए चारे पुद्गल प्रकारज छे एम जणा-

ए पुद्गल द्रव्य मात्र लोकाकाशपर्यंत सर्वत्र रहेल छे. पुनः पु-द्गलना स्कंधो द्विप्रदेशीथी मांडीने अनंतप्रदेशी सुधीना स्कंधो १४ राजलोकमां सघन छे. त्यां पुद्गलनो जघन्य स्कंध बे परमा-णुनो मळीने बने छे. स्कंध बनवानुं मुख्य कारण परमाणुमां रहे-लो स्निग्धता अने रुक्षता छे.('स्निग्धरुक्षत्वाद्बन्धः' इति तत्त्वा० व-चनात्). ते स्निग्धता अने रुक्षता पण परस्पर बे विगेरे अंश जेट-ली अधिक होय तोज बे परमाणुनो परस्पर संबन्ध थाय छे. जेमके

५ अंश स्निग्ध परमाणु साथे ७ अंश स्निग्ध अथवा रुक्ष परमाणुनो संबन्ध थाय, ('द्व्यधिकादिगुणानां तु' इति तत्त्वा० वचनात्). ए प्रमाणे शेष सर्वपुद्गलस्कंधोनी उत्पत्ति जाणवी, अने स्कंधनी उत्पत्ति थतां तेना देशादि (देश —अने प्रदेश) नी उत्पत्ति तो सापेक्ष होवाथी सहज छे, पुनः ए संबन्धी केटलुंक विवेचन अजीवना १४ भेदवाळी 'धम्माऽधम्माऽऽगासा'ए गाथाना विस्तरार्थमां कहेवाइ गयुं छे ने वधु जिज्ञासुए ग्रन्थान्तरथी जाणवुं.

अवतरण—पूर्वगाथामां पुद्गलना ४ प्रकार कहीने हवे आ गाथामां पुद्गलनां लक्षण (स्वभाव-धर्म-गुण)कया कया? ते दर्शावे छे

॥ मूळ गाथा ११ मी ॥

सद्दंधयारउज्जोअ, पभाछायातवेहि आ ।
वण्ण गंध रसा फासा पुग्गलाणं तु लक्खणं॥११॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

शब्दान्धकाराद्युद्योतः, प्रभाछायातपैश्च ।
वर्णो गंधो रसः स्पर्शः, पुद्गलानां तु लक्षणं ॥ ११ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सद्द–शब्द	वण्ण–वर्ण (रंग)
अंधयार–अंधकार	गंध–गंध
उज्जोअ–उद्योत	रसा–रस
पभा–प्रभा	फासा–स्पर्श
छाया-छाया	पुग्गलाणं-पुद्गलोनां
आतवेहि–आतप (तडका)वडे	तु–वळी
आ–अने	लक्खणं–लक्षण(स्वभाव) धर्म-गुण

गाथार्थः—शब्द, अन्धकार, चंद्रादिकनो ठंडो प्रकाश, प्रभा

छाया (प्रतिबिंब)—आतप (गरम प्रकाश) तडको आ वस्तु-
ओए करीने पुद्गलो ओळखाय छे. अने वर्ण गंध, रस अने स्पर्श
ए पुद्गलोनां लक्षण (–धर्म–गुण) छे.

विस्तरार्थः–गाथामां कहेला शब्दादि ए पुद्गलना परिणामो छे,
कारणके पुद्गलमांथी उत्पन्न थाय छे, अने शब्दादि जाते पण पु-
द्गल छे, जेमके शब्द ए पोते पुद्गलात्मक छे. हवे ते शब्दादिकनुं
किंचित् स्वरूप आ प्रमाणे छे.

॥ शब्दभेदो. ॥

शब्द एटले अवाज, ध्वनि, नाद इत्यादि. शब्द सचित्त अ-
चित्त अने मिश्र एम ३ प्रकारनो छे. त्यां जीवनो मुखद्वारा उच्चा-
रातो जे शब्द ते सचित्तशब्द, बे पत्थर अफळावाथी उत्पन्न थयेलो
ते अचित्त शब्द अने जीव प्रयत्नवडे वागता मृदंगादिकनो मिश्र-
शब्द. अहिं मिश्र भेद व्यवहारमात्रथी छे, कारणके वास्तविकरी-
ते तो मृदंगादिनो अचित्त शब्दज गणाय अथवा जीव प्रयत्नवडे
वागतो सरणाइ–शुङ्ग वगेरेनो मिश्रशब्द गणाय, अथवा शब्द
शुभ अने अशुभ एम बे प्रकारे छे, त्यां कर्णने आनंदकारी शुभ शब्द,
द,अने कर्णकटु अशुभ शब्द कहेवाय; अथवा शब्द व्यक्त अने अव्य-
क्त एम २ प्रकारनो छे त्यां द्वीन्द्रियादिकनो अने पशु इत्यादिकनो
शब्द स्पष्टअक्षरात्मक नहि होवाथी अव्यक्तशब्द अने पोपट-मनु-
ष्यादिकनो स्पष्ट अक्षरात्मक होवाथी व्यक्तशब्द कहेवाय. इ-
त्यादि अनेक भेद स्वबुद्धिए यथार्थ विचारवा.

॥ शब्दनी उत्पत्ति. ॥

शब्दनी उत्पत्ति अष्टस्पर्शी (बादर परिणामी) पुद्गलस्कंधो-
. अने शब्द पोते चतुःस्पर्शी पुद्गलस्कंध छे अर्थात् अष्टस्पर्शी

बादर परिणामी पुद्गलस्कंधमांथी तथाप्रकारना जीव प्रयत्नथ
अथवा स्वभावतः (ते अष्टस्पर्शी स्कंधमां कोइ विकार थवाथी)
तदन्तर्वर्त्ती (ते स्कंधावगाही) भाषावर्गणायोग्य पुद्गलो शब्दप
णे परिणमीने उछले छे, अने ते भाषावर्गणा चतुःस्पर्शी छे. पुन
ए शब्दनी उत्पत्ति जीव औदा०–वैक्रिय–ने आहा० ए त्रणदे
हद्वारा करे छे, परन्तु तैजस अने कार्मणादि कोइपण स्कंधमांथी
शब्दोत्पत्ति थती नथी, पुनः जे पत्थरादि अजीव पदार्थमांथी श
ब्दोत्पत्ति थाय छे ते पण निर्जीव औदारिक देहथीज जाणवी

अहिं नैयायिको शब्दनी उत्पत्ति आकाशद्रव्यथी माने छे ते
युक्तिपूर्वक नथी., कारणके अरूपी आकाशमांथी [१] रूपी शब्दनी
उत्पत्तिनो असंभव छे. माटे शब्द ए आकाशनो गुण नहि पण
पुद्गलनो परिणाम छे. पुनः शब्द जो पुद्गल पदार्थ न होय तो मुख
शब्द कूवामां भोंयरामां के गुफा वगेरेमां अथडाइने तेनो प्रतिश
ब्द–पडघो केम वागे ? माटे शब्दनो पडघो पडवाथी पण शब्द पु
द्गल परमाणुनो समुदाय छे, एम अनुमान थाय छे.

॥ अंधकार. ॥

अंधकार ए पण पुद्गलनो विकार छे, अर्थात् पुद्गलरूप छे.
अन्यदर्शन [नैयायिकादि] अंधकारने पदार्थ रूप मानता नथी, पण
" तेजनो अभाव ते अंधकार " एम माने छे, परन्तु जे चक्षुःस्प
कृष्णवर्णरूप जे अंधकार ते पुद्गलज.

॥ उद्योत. ॥

१ श्री विशेषावश्यकादिकमां पण देहथी भाषानी उत्प
त्ति प्रगट रीते कही छे.

२ ७ मी गाथामां वचन योगना वर्णन प्रसंगे शब्दनुं
रूपी पणु फुटनोटमां दर्शाव्युं छे.

चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-तारा-रत्न-आगीआ इत्यादिपदार्थोना तथा जीवोना शीतप्रकाश ते सर्व उद्योत कहेवाय छे, अने अग्नीनो उष्ण प्रकाश छे. तेथी "उद्योतमां" न गणी शकाय. ए उद्योत प्रकाश चंद्रादिकना विमानमांथी विमानना प्रतिसमय निकळतो पुद्गलप्रवाह छे, जेम वर्त्तमानसमयमां ग्यासलाइट अने विजळी वगेरेना तेजनो परमाणुप्रवाह प्रत्यक्ष देखाय छे, तेम चंद्रादिकनो प्रकाशरूप परमाणुप्रवाह पण कंइक अव्यक्त छेतोपण किरणरूपे प्रत्यक्ष देखाय छे, अने प्रत्यक्ष देखानो होवाथी ते प्रकाश पुद्गलरूप छे, अहिं सूर्यनोप्रकाश उद्योतना अर्थमां लीधो नथी तेनुं कारणके ते आगळ " आतप " शब्दथी कहेवाशे.

॥ प्रभा. ॥

चंद्रादिकना अने सूर्यना प्रकाश किरणोमांथी निकळतो जे बीजो उपप्रकाश ते प्रभा कहेवाय, के जेनाथी अप्रकाशितस्थानमां रहेल पदार्थो पण देखी शकाय छे, अने ए प्रभा ते पण प्रकाश पुद्गलोमांथी विरल विरलपणे (आछो-आछो) वहेतो प्रकाशप्रवाह छे, परन्तु साक्षात् प्रकाशरूप नहिं होवाथी ए अव्यक्त प्रकाशने प्रभा शब्दथी ओळखी शकाय छे, प्रकाशमांथी विरल विरलपणे जो प्रभारूप पुद्गल प्रवाह न वहेतो होय तो प्रकाश पासे रहेला पदार्थो पण न देखी शकाय, जेथी सूर्यादिकनो किरणप्रकाश ज्यां नथी पडतो तेवा घर विगेरे स्थानोमां रात्रि होय, माटे प्रकाशमांथी पण बीजो उपप्रकाश वहे छे के जेथी घरमां पण अजवाळुं पडे छे. ते उपप्रकाशनुं नाम प्रभा छे, पुनः अग्निना सूक्ष्म तेमने पण उपलक्षणथी प्रभामां अन्तर्गत गणवुं एम संभवे छे.

॥ छाया. ॥

प्रकाशमां, दर्पणमां, जळ वगेरे निर्मळ चीजोमां पडतुं पदार्थ-

नु प्रतिबिंब ते छाया कहेवाय छे, सूर्यमांथी जेम किरणरूपे पुद्गल-प्रवाह वहे छे, तेम दरेक बादरपरिणामी पुद्गलस्कंधमांथी पण प्रतिसमय तदाकार सूक्ष्मस्कंध समुदाय (जलना फुवारानी माफक) र-ह्या करे छे, ते प्रतिसमय वहेतो सूक्ष्मस्कंध समुदाय सूर्यादिनो प्रकाशरूप निमित्त पामीने कृष्णवर्णे एकत्र पिंडित थाय छे. जेने लोकमां "छाया पडी अथवा शीळुं पडयुं" कहे छे, अने ते वहेतो सूक्ष्मस्कंधसमुदाय दर्पण, जळविगेरेमां निर्मलतानुं निमित्त पामी साक्षात् तदाकाररूपे पिंडित थइ जाय छे, के जेने प्रतिबिंब कहेवामां आवे छे, माटे ए छायारूप प्रतिबिंब बादर परिणामी पुद्गलद्रव्यमांथी व्हेतो सूक्ष्मपुद्गलस्कंध समुदाय होवाथी पुद्गलरूप छे, अथवा प्रतिबिंबरूपे थवुं ए पुद्गलनो धर्म–गुण छे आ संबन्धि विशेष जाणवाना जिज्ञासुओए 'द्रव्यलोकप्रकाश' वगेरे ग्रंथो जोवा.

॥ आतप. ॥

सूर्यना विमानमांथी आवतो जे उष्णप्रकाश ते आतप कहेवाय छे. सूर्यनुंविमान स्वतः शीत छे तोपण आगळ कहेवाता आतपनामकर्मना उदयवडे विमानमां रहेला पृथ्वीकाय जीवोनो प्रकाश उष्ण आवे छे, जेने "तडको" अथवा "तावडो" कहेवामां आवे छे. ए तडको सूर्यनामे इन्द्रदेवनो नथी पण आतपनामकर्मोदयी बादर पृथ्वीकायना पिंडरूप (सूर्यना) विमाननो छे. ए उष्णप्रकाश ते पृथ्वीकायिकजीवोना औदारिक शरीरमांथी पुद्गलना प्रवाहरूपे निकळतो होवाथी प्रकाश जेमांथी नीकळे छे ते पण पुद्गल, अने प्रकाश पोते पण पुद्गलज छे. प्रथम कही गयेल उद्योतनी प्रकृति पण ए प्रमाणेज विचारवी.

॥ वर्ण. ॥

वर्ण एटले रंग ते कृष्ण–काळो, नील–लीलो, रक्त–रातो,

पीत-पीळो, अने श्वेत-धोळो एम पांच प्रकारे छे. बीजा वादळी
वदो-गुलाबी-इत्यादि रंग ए पांच मूळ रंगमांथी अमुक अमुक
रंगना मीश्रणथी उत्पन्न थाय छे. माटे ए पांच सिवायना बीजा व-
र्ण सर्व सान्निपातिक वर्ण जाणवा. वर्तमान विज्ञानीओ लाल-पी-
ळो-अने वादळी ए त्रण प्रकारना मूळ वर्ण, अने बीजा बधा मि-
श्रवर्ग छे एम कहे छे, परन्तु सर्वज्ञोक्त मूळ वर्ग पांच छे, ए कृष्णा-
दिवर्ण प्रत्येक एक गुण कृष्ण (एक अंश काळो), द्विगुण कृष्ण
(बे अंशकाळो). संख्यगुण कृष्ण असंख्यगुणकृष्ण अने अनन्त
गुणकृष्ण इत्यादि तारतम्यभेदे अनन्त प्रकारना छे. तथा ए कृष्णा
दिवर्ण परमाणु पुद्गलमां होय छे. त्यां एक परमाणुमां प्रगटपणे ए-
कवर्ण होय, अने सत्तापणे पांचेवर्ण होय. पुनः जे परमाणु कृष्ण-
वर्ण छे ते परमाणुनो कृष्णवर्ण पलटाइने रक्तादि कोइपण वर्ण (ज-
घन्यथी १ समयमां अने उत्कृष्टथी असंख्य समयमां) उत्पन्न था-
य, ए प्रमाणे एक परमाणुमां पांचेवर्ण अनुक्रमे पलटाइ पलटाइने
आविर्भाव तिरोभावने (प्रगटता अने प्रच्छन्नता) पामे छे. पुनः
ए कृष्णादि कोइपण वर्ण धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां होतो
नथी परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे माटे (चक्षुरिन्द्रियना वि-

१ स्वाभाविक परमाणुओ प्रत्येकवर्णवाळा छे अने ते प-
रमाणुओ अतिशयज्ञानिओने दरेकमां भिन्न भासे तथा अनेक
मां समकाळे पांचवर्णो जणाय छे. अने तेमांथी बनेला स्कन्धो
ओ पछी वर्णनी प्रधानता होवाथी व्यवहारे कृष्णादि एक व-
र्णवाळा अने अनेक वर्णोनी प्रधानता होवाथी व्यवहारे द्वि-
द्विवर्णवाळा कहेवाय छे. पण निश्चयदृष्टिए अनन्तप्रदेशी स्कन्धो
पांचे वर्णवाळा होय छे. जेमज स्वाभाविकपुद्गलोमां पांचज वर्ण
छे. बाकी कृत्रिम रंगना वर्णोना अनेक भांगाओ पडे छे. नैया-
यिक-वैशेषिक बौद्ध समान दर्शनकारो कृष्ण-शुक्ल-नील वर्णो-
ने निमित्तकारणे स्वीकारे छे. वादळी ए बीजा भिन्नवर्ण नथी कृष्ण-
नील अमुक गुण तारतम्यथी वादळीपणे उत्पत्ति थाय छे माट-
बीजाना संयोगथी थता वर्णो मुख्यथी जेवा रक्तादि वर्णो छे-
म कहो ए सर्व विचारतां वर्ण पांचज छे ते सिद्ध छे.

पयरूप) ए कृष्णादि वर्ण परमाणु पुद्गलनो गुण छे, परन्तु कृष्णादि वर्ण पोते पुद्गल नथी, माटे वर्ण ए पुद्गलनुं गुणरूप लक्षण छे,

॥ गंध. ॥

घ्राणेन्द्रियनो (नाकनो) जे विषय ते गंध सुगंध अने दुर्गंधना भेदथी बे प्रकारे छे, ए सुगंध अथवा दुर्गंध धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहि परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे, माटे गंध ए पुद्गलनु लक्षण अथवा पुद्गलनो गुण छे, पुनः एक परमाणुमां प्रगटपणे एकज गन्ध होय इत्यादि वर्णन वर्णना वर्णनने अनुसारे जाणवुं

॥ रस. ॥

जिव्हेन्द्रियनो–रसनेन्द्रियनो जे विषय ते रस ते तिक्त–[1]तीखो, कटु–[2] कडवो, आम्ल–खाटो, कषाय–तूरो, अने [3] मधुर––मिष्ट ए प्रमाणे ५ प्रकारनो छे. ए रस धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहि परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होय छे माटे रस ए पुद्गलनुं लक्षण छे. अने एक परमाणुमां प्रगट पणे एक रस होय इत्यादि वर्णन वर्णना वर्णनने अनुसारे जाणवुं.

॥ स्पर्श. ॥

स्पर्शेन्द्रियनो जे विषय ते स्पर्श कहेवाय अने ते शीत–ठंडो, उष्ण–गरम, स्निग्ध–चिकणो, रुक्ष–लुखो, गुरु–भारी, लघु–हलको, मृदु–कोमळ, अने कर्कश–खडबचडो ए प्रमाणे आठ प्रकारनो छे. ए शीतादिस्पर्श धर्मास्तिकायादि कोइपण द्रव्यमां नहि परन्तु मात्र पुद्गलद्रव्यमांज होवाथी स्पर्श ए पुद्गलनुं लक्षण–गुण कहे-

१–२ केटलाएक, ग्रंथोमां तिक्त पटले कडवो अने कटु पटले तीखो एवो पण अर्थ आवे छे, परन्तु विशेष वपराता अर्थ तिक्त तीखो इत्यादि ठीक छे पुनः मारवाडमां घणे ठेकाणे कडवा पदार्थने तीखो अने तीखा पदार्थने कडवोज कहे छे,

३ खारो रस मधुरमां अन्तर्गत थाय छे, अथवा पांच रसमांथी मिश्रभावनो खारो रस छे. (लवणो मधुरान्तर्गत इत्येके, संसर्गज इत्यपरे इति तत्त्वा० वृत्ति)

वाय. एक परमाणुमां जुदा जुदा समयने आश्रयी शीत–उष्ण–स्निग्ध–अने रूक्ष ए चार स्पर्श होय, अने एक परमाणुमां एक समये तो शीत अने स्निग्ध, अथवा शीत अने रूक्ष, अथवा उष्ण अने स्निग्ध अथवा उष्ण अने रूक्ष ए चार प्रकारमांथी कोइपण प्रकारे बे स्पर्श होइ शके. अने आठ स्पर्शनो मात्र बादर परिणामी स्कंधमांज होय.

इत्यादि पुद्गलोनां लक्षणोनुं किंचित् स्वरूप कह्युं

अवतरण—पूर्वगाथामां पुद्गलोनां धर्म कहेवाथी धर्मा०–अधर्मा०–आकाशा०–अने पुद्गल ए चार अजीवद्रव्यनां लक्षण कहेवाइ गया. अने हवे पांचमा (अजीवद्रव्य) कालनां लक्षण कहेवाय छे.

॥ मूलगाथा १२ मी. ॥

१ । अत्र च स्निग्धरूक्षशीतोष्णाख्याश्चत्वार एवाणुषु संभवन्ति. स्कंधेष्वष्टावपि यथासंभवमभिधानीयाः इति प्रज्ञा० ६ मा अध्ययना १३ मा सूत्रनी वृत्ति पुन: ५ मा अध्ययना २८ मा सूत्रनी वृत्तिमां अष्टविधः स्पर्शो मतश्चरितः स्कंधेषु यथासंभव. परमाणुषु पुनश्चतुर्विधः स्पर्शो मान्यः स च शीतोष्णस्निग्धरूक्षरूप. तत्राप्येकपरमाणौ परस्पराविरोधिद्वयं समस्ति इति.) पुन: बृहत् संग्रहमां तो लघु अने मृदु स्पर्श परमाणुमां अवस्थित (पराकृति पामता नथी एवा रहेनारा) मानेला छे. जेथी एक परमाणुमां एक समयेज चारस्पर्श एकसाथे होय अने ६ स्पर्श बांधवा आश्रे होय एम मानी शकाय छे परन्तु बहुमने परमाणुमां ४ स्पर्श स्वीकार्य छे. तथा हलकुभारादि स्पर्शोनां (औदारिकस्कंधोमां) शीतादि ४ स्पर्श एकसमये अथवा जुदे जुदे समये हाय छे. स्पर्शो आश्रयी औदारिक वै०–अने आहा० वर्गणा अष्टस्पर्शी होय छे. अने स्पर्शो आश्रयी तैजसा० वर्गणाओ सर्व शीतादि चतुःस्पर्शी अने गौरव परिणाम ग्रहण करे छे. ए उपरथी भाषा–श्वासोo मन अने कार्मण चतुःस्पर्शी स्कंधो छे.

एगाकोडि सतसट्ठि, लक्खा सत्तहुत्तरी सहस्सा य।
दोयसया सोलहिया, आवलिया इग मुहुत्तम्मि ॥१२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एका कोटिः सप्तषष्टिर्लक्षाः सप्तसप्ततिः सहस्राश्च ।
द्वे च शते षोडशाधिके, आवलिका एकस्मिन्मुहूर्ते॥ १२॥

॥ शब्दार्थः— ॥

एगा-एक	दोय सया-बसें
कोडि-क्रोड	सोल-सोळ
सतसट्ठि-सडसठ	
लक्खा-लाख	अहिया-अधिक
सत्तहुत्तरी-सित्योतेर	आवलिया-आवलिका
सहस्सा-हजार	इग-एक
य-वळी	मुहुत्तम्मि-मुहूर्तमां

गाथार्थः—एक मुहूर्तमां एक क्रोड सडसठलाख सित्योतेर हजार बसेंने सोळ अधिक(१६७७७२१६)एटली आवलिका थाय छे

विस्तरार्थः—आ गाथामां विशेष वक्तव्य नथी, पुनः १६७७७२१६ आवलीओनुं १ मुहूर्त कयीरीते थाय ते आगळनी 'समयावलिमुहुत्ता' ए गाथामांज दर्शावशे.

अवतरण—पूर्वगाथामां एकमुहूर्तमां थती आवलिकाओनी संख्या कहीने हवे आ गाथामां अनुक्रमे वृद्धि पामता काळनां जुदां जुदां नाम दर्शावे छे.

॥ मूळगाथा १३ मी. ॥

समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य।
भणिओ पलिआ सागर, उस्सप्पिणि सप्पिणी कालो॥१३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

समय आवलिका मुहूर्ता, दिवसाः पक्षाश्च मासा वर्षाणि च
भणितः पल्याः सागराः, उत्सर्पिण्यवसर्पिणी कालः॥१३॥

॥ शब्दार्थः ॥

समय—समय	भणिओ—कहेलो छे
आवलि—आवलिका	पलिया—पल्योपम
मुहुत्ता—मुहूर्त	सागर—सागरोपम
दीहा—दिवस	उस्सप्पिणी—उत्सर्पिणी
पक्खा—पक्ष—पखवाडीउं	सप्पिणी—अवसर्पिणी
मास—मास—महिनो	कालो—काळ अथवा काळचक्र
वरिसा—वर्ष	

गाथार्थः—समय—आवली—मुहूर्त—दिवस—पखवाडीउं—मास—वर्ष—पल्योपम—सागरोपम—उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी—अने काळचक्र ए सर्वने काळ कहेलो छे.

विस्तरार्थः—आ गाथा व्यावहारिककाळना लक्षणवाळी होवाथी ते व्यवहारिककाळना स्वरूपपूर्वक समयादिभेदनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे,

॥ व्यावहारिक काळनुं स्वरूप.॥

१ समय—आवलि—मुहूर्त इत्यादि अनेक भेदवाळो व्यवहारिककाळ सूर्य चंद्रनी गति उपरथीज गणाय छे. कारणके दिवस अने [...]धि तथा मासवर्षादिकनी उत्पत्ति सर्व सूर्य चंद्रनी गतिना आधा[...] छे. त्यां अति निकृष्ट—अल्प काळ के जे निमेषमात्र काळनो [...] असंख्यातमो भाग छे ते समय कहेवाय छे. कोइक तरुण अने [...]र्य पुरुष भालानी तीव्र अणीथी पोताना संपूर्ण बळवडे कमळनां [...] पत्रने भेदे त्यां एक पत्र भेदतां पण असंख्य समयो व्यतीत [...] अने एक पत्रथी बीजे पत्रे भालो पहोंचे तेटलामां पण असं[...] समय थाय. छतां ए सूक्ष्मता स्थूलदृष्टिवाळाने मालम नहि [...]ी एवी रीते १०० पत्र भेदानुं अभिमान थाय छे. पुनः

एक जीर्ण वस्त्रने शीघ्र फाडतां छतां पण एकेक तंतुने तुटतां असंख्य असंख्य समय वीतीजाय छे. पुनः आंखनो एक पलकारो थाय तेटलामां पण असंख्य समय वीतिजाय छे. एवो आ परम सूक्ष्म समय छे.

२ कहेला स्वरूपवाळा जघन्ययुक्त असंख्य समयो मळीने जे काळ विभाग थाय ते एक आवलिका कहेवाय छे. सू० निगोदादि जीवोनुं जघन्य (टुंकामां टुंकु) आयुष्य एवी २५६ आवलियो जेटलुं होय छे. तेथी २५६ आवलियोनो १ क्षुल्लक भव कहेवाय.

४४४६ $\frac{२४५८}{३७७३}$ आवलिका जेटलो काळ प्राण अथवा श्वासोच्छ्वास कहेवाय. अहिं नीरोगी अने युवान सुखी पुरुषनो श्वासोच्छ्वास गणवो, परन्तु रोगी अने दुःखीनो श्वासोच्छ्वास अनियमित काळ प्रमाणवाळो होवाथी न गणाय, कह्युं छे के

" हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो ।
एगे ऊसास नीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥ १ ॥ "

अर्थः—हृष्ट-विषादरहित, जरारहित, क्षुधादिवडे अहृष्ट-दुर्बळ नहिं थयेल एवा प्राणीनो जे एक उच्छ्वास अने एक निश्वास ते बे मळीने १ प्राण एम कहेवाय छे. एवा ७ प्राण जेटलो काळ १ स्तोक कहेवाय छे, एवा ७ स्तोक जेटलो काळ १ लव कहेवाय छे, एवा ७७ लव जेटलो काळ १ मुहूर्त्त कहेवाय छे. मुहूर्त एटले बे [1] घडी जेटलो संपूर्ण काळ जाणवो १ प्राणमां पूर्वोक्त क्षुल्लकभव १७॥ (१७ $\frac{१३९५}{३७७३}$) थाय, अने १ मुहूर्तमां ६५५३६ क्षुल्लकभव थाय छे. तथा १ मुहूर्तमां प्राण ३७७३ थाय छे. पुनः मुहूर्तमां १

१ वर्तमान समयना कलाक अने मिनिटना हिसाबे २४ मिनिटनी घडी, अने ४८ मिनिटनुं एक मुहूर्त गणाय.

समय न्यूनकालथी मांडीने यावत् ९ समय सुधीनो सर्व काळ वि-
भाग अन्तर्मुहूर्त्त कहेवाय छे, शास्त्रमां घणो व्यवहार अन्तर्मुहूर्त
नी गणत्री पर आवे छे अने ए प्रमाणे अन्तर्मुहूर्त्त असंख्य प्रकारनां
नानां मोटां गणी शकाय. पुनः मुहूर्त त्यां चंद्रमुहूर्त्त अने सूर्यमुहू-
र्त ए [1] बे प्रकारे छे. लोकमां तथा लोकोत्तरमां (जैन दर्शनमां)
३० मुहूर्त्तनो दिवस इत्यादि गणवामां चंद्रमुहूर्त्तनो व्यवहार चाले
छे, ११— चंद्रमुहूर्त्तनुं १ सूर्यमुहूर्त थाय छे तेनो व्यवहार जग-
त् प्रचलित नथी. एवा ३० मुहूर्त्तनो १ दिवस थाय छे ते ३०
मुहूर्त्तनां नाम आ प्रमाणे—

रुद्र-श्रेयस्-मित्र-वायु-सुपीत-अभिचंद्र-माहेन्द्र-बल-
वान्-पक्ष्म-बहुसत्यक-ऐशान-त्वष्ट्र-भावितात्मन्-वैश्रमण-
वारुण-आनंद-विजय-विश्वसेनक-प्राजापत्य-उपशम-गंध-
र्व-अग्निवैश्यक-शतवृषभ-आतपवान्-अमम-ऋणवान्-भौ-
म-वृषभ-सर्वार्थ-राक्षस आ अनुक्रम सूर्योदयथी प्रारंभीने गणवो.

३० मुहूर्त्तनो (चंद्रमुहूर्त्तनो) १ दिवस थाय. ते दिवस सू-
र्यदिवस, अने चंद्रदिवस एम बे प्रकारे छे त्यां ३० मुहूर्त प्रमाण
(६० घडी जेटलो) अहोरात्र ते सूर्यदिवस, अने २९ $\frac{३२}{६२}$ मुहू-
र्त प्रमाण चंद्रनी कळावृद्धिथी उत्पन्न थती जे तिथि ते चंद्रदिवस
कहेवाय. लोकमां सूर्यदिवसनुं नाम अहोरात्र, अने चंद्रदिवसना
नामे तिथि कहेवानो व्यवहार चाले छे. एक पखवाडियामां १५ दि-
वस अने १५ रात्रि आवे छे ते दिवस रात्रिनां नाम आ प्रमाणे—

१ अंतर्मुहूर्तनी [illegible] अधिक [illegible]
[illegible]

पूर्वांग--सिद्धमनोरम--मनोहर-यशोभद्र-यशोधर-सर्वकामसमृद्धक-इन्द्रमूर्धाभिषिक्त-सौमनस--धनंजय-अर्थसिद्ध-अभिजात-अत्यशन-शतंजय-अग्निवेश्मन-अने-उपशम. ए प्रमाणे चतुष्प्रहरात्मक दिवसनां(अहोरात्रिनां)नाम कर्या.

तथा उत्तमा-सुनक्षत्रा-एलापत्या-यशोधरा-सौमनसा-श्रीसंभूता-विजया-वैजयंती-जयंती-अपराजिता-इच्छा-समाहारा-तेजा--अतितेजा--देवानंदा ए रात्रिना नाम कर्या. १५ मी देवानंदा रात्रिनुं बीजुं नाम निरति पण छे. ए प्रमाणे सूर्यदिवस संबंधि दिवस रात्रीनां नाम कहीने हवे चंद्रदिवससंबंधि (तिथिसंबन्धि) दिवस अने रात्रिनां नाम कहेवाय छे.

दिनतिथिनां नाम-नंदा-भद्रा-जया-तुच्छा(लोके रिक्ता)पूर्णा रात्रितिथिनां नाम-उग्रवती-भोगवती-यशोमती-सर्वसिद्धा-अने शुभनामा. ए पांचे पखवाडीयामां त्रण त्रणवार आववाथी१५ तिथियो थाय. त्यां एकम--छठ--ने अगियारसने दिवसे दिनतिथि नंदा अने रात्रितिथी उग्रवती ए प्रमाणे पांच पांच तिथीने अंतरे गणत्री करवी.

पूर्वोक्त १५ सूर्यदिवसनुं १ सूर्यपक्ष, अने १५ तिथीयोनुं १ चंद्रपक्ष थाय. पण लोकव्यवहार चंद्रपक्षने पखवाडीउं गणे छे.

पूर्वोक्त २ पक्षनो १ मास--महिनो थाय ते पांच प्रकारनो छे.

३० अहोरात्रिनो १ ऋतुमास (अथवा बीजुंनाम कर्ममास)	२७ $\frac{२१}{६७}$ अहोरात्रिनो १नक्षत्रमास
३०॥ अहोरात्रिनो १ सूर्यमास	३१ $\frac{१२१}{१२४}$ अहोरात्रिनो १ अभिवर्द्धितमास
२९ $\frac{३२}{६२}$ अहोरात्रिनो१चंद्रमास	

अहि लोकव्यवहारमां २९ $\frac{३२}{६२}$ अहोरात्रिनो एटले संपूर्ण३०

तिथिनो १ चंद्रमास चाले छे.

तथा ६ मासनुं १ सूर्यायन थाय छे. ते पण १८३अहोरात्रि प्रमाण १दक्षिणायन अने उत्तरायण एम बे प्रकारनुं छे, पुनः चंद्रायन १३ $\frac{४४}{६७}$ अहोरात्रिनुं थाय छे, परन्तु विशेष लोकव्यवहारमां सूर्यायन गणाय छे.

तथा १२ मासनुं १ वर्ष गणाय. ते पण मासना भेदवडे पांच प्रकारनुं छे, त्यां दरेक मासना दिवसने १२ वडे गुणतां

३६० अहोरात्रिनुं १ ऋतुवर्ष (वा कर्मवर्ष)

३६६ अहोरात्रिनुं १ सौरवर्ष (सूर्यसंवत्सर वर्ष)

३५४ $\frac{१२}{६२}$ अहोरात्रिनुं १ चान्द्रवर्ष

३२७ $\frac{५१}{६७}$ अहोरात्रिनुं १ नक्षत्रवर्ष

३८३ $\frac{४४}{६२}$ अहोरात्रिनुं १ अभिवर्धितमास

तथा ५ सूर्यसंवत्सरनुं (५ सूर्यवर्षनुं) १ युग थाय. ८४ लाख सूर्यवर्षे १ पूर्वांग थाय. ८४ लाख पूर्वांगे (७०५६०००००००००० सूर्यवर्षे) १ पूर्व थाय ८४ लाख पूर्वे १ त्रुटितांग १ त्रुटित थाय, ए प्रमाणे आगळ अटटांग-अटट-अववांग-अवव-हुहुकांग-हुहुक-उत्पलांग-उत्पल-पद्मांग-पद्म-नलिनांग-नलिन-अर्थनिपुरांग-अर्थनिपुर-अयुतांग-अयुत-नयुतांग-नयुत-प्रयुतांग-प्रयुत-चूलिकांग-चूलिका-शीर्षप्रहेलिकांग अने शीर्षप्रहेलिका ए सर्व ८४ लाख गुणा अनुक्रमे जा-

१ प्रमांगने ८४ लाख पूर्वे १ प्रमांग. ८४ लाख प्रमांगे १

णवा. काळ संख्यानी मर्यादा शास्त्रकारे अहिं सुधीज ([1] शीर्षप्रहेलिका सुधीज) दर्शावी छे, एथी आगळनी घणी मोटी संख्या प्यालानी उपमाए दर्शावी छे जे सर्व शास्त्रान्तरथी जाणवा योग्य छे.

पूर्वे कहेलां असंख्यातवर्ष प्रमाण १ पल्योपम थाय. पल्योपमनां असंख्यवर्षोनी गणत्री स्थूलबुद्धिजीवथी न थइ शके माटे तेनी गणत्री शास्त्रकारे प्यालानी उपमाथी संक्षेपमां आ प्रमाणे दर्शावी छे—१ योजन लांबो—१ योजन पहोळो—अने १ योजन उंडो एवा कूवानी अंदर उत्तरकुरुक्षेत्रना मनुष्योनुं मस्तक मुंडावीने एकथी सात दिवस सुधीमां उगेला केशनां असंख्यभाग करी (ते कूवो)भरीये ने सो सो वर्षे एकेक खंड काढतां जेटलां वर्ष थाय तेटलां वर्ष प्रमाण १ पल्योपम कहेवाय ([2] पल्योपमना ६ भेद वगेरे अधिकवर्णन शास्त्रान्तरथी जाणवुं.)

पूर्वे कहेला १० [3] क्रोडा क्रोडी (१००००००००००००००

लता तदनन्तर आगळ महालतांग, महालता, नलिनांग, नलिन, महानलिनांग, महानलिन, पद्मांग, पद्म, महापद्मांग, महापद्म, कमलांग, कमल, महाकमलांग, महाकमल. कुमुदांग, कुमुद, महाकुमुदांग, महाकुमुद, त्रुटितांग, त्रुटित, महात्रुटितांग, महात्रुटित, अडडांग, अडड, महाअडडांग, महाअडड, ऊहांग, ऊह, महाऊहांग, महाऊह, शीर्षप्रहेलिकांग, अने शीर्षप्रहेलिका,

१ १८७५५१७९५५०११२५९५४१९००९६९९८१३४३०७७०-९७४६५४९४२६१९७७७४७६५७२५७३४५७१८६८१६ ए मिंडर आंकडा उपर १८० बिंदु—शून्य मूकवाथी २५० अंक प्रमाण माथुरी वाचनाने शीर्षप्रहेलिकानी संख्या थाय छे, अने उपर दर्शाव्या मुजब गणतां १९४ आंकडानी संख्या थाय

२ बादर उद्धार-सूक्ष्म उद्धार-बादर अद्धा-सूक्ष्म अद्धा-बादर क्षेत्र सूक्ष्मक्षेत्र ए रीते पल्योपमना ६ प्रकार अंथांतरोमां नहिं होवाथी अहिं मात्र सू० अद्धा पल्योपमनुं प्रमाण कह्युं छे.

३ क्रोडने क्रोडथी गुणतां क्रोडाक्रोडी थाय.

००) पल्योपमे १ [1] सागरोपम थाय.

१० कोडाकोडी सागरोपमे १ उत्सर्पिणी अने १० कोडाकोडी सागरोपमनी १ अवसर्पिणी काळ थाय छे. पुनः एकेकना ६–६ [2] आरा (विभाग) छे तेनां नाम–सुषम सुषम नामे पहेलो आरो ४ को० को० सागरोपमनो, सुषम नामे बीजो आरो ३ को० को० साग० नो, सुषम दुषम नामे त्रीजो आरो २ को० को० साग० नो, दुषम सुषम नामे ४थो आरो ४२००० वर्षन्यून १ को० को० साग० नो, दुषम नामे पांचमो आरो २१००० वर्षनो, अने दुषम दुषम नामे ६ ट्ठो आरो २१००० वर्षनो छे, ए प्रमाणे सर्व आराना १० को० को० सागरोपम संपूर्ण थाय छे. ए ६ आरा उत्सर्पिणी काळमां चडता, अने अवसर्पिणी काळमां उतरता आवे छे माटे उत्सर्पिणी-चडतोकाळ, अने अवसर्पिणी-पडतो काळ कहेवाय छे. अर्थात् उत्सर्पिणीमां प्रथम दुषम दुषम बीजो दुषम इत्यादि रीते, अने अवसर्पिणीमां पेहेलो सुषम सुषम, बीजो सुषम इत्यादि अनुक्रमे होय छे. उत्सर्पिणीमां [3] सुख विगेरे अनुक्रमे अधिक अधिक, अने अवसर्पिणीमां सुख वगेरे अनुक्रमे हीन हीनतर थतुं जाय छे.

२० को० को० सागरोपम प्रमाण (अवस० उत्स० मळी) १ काळचक्र थाय छे. गाथामां कहेल कालो–काळ शब्दनो सामान्य रीते समयआवलि इत्यादि काळ अथवा २० को० को० सा० प्रमाण काळचक्र एम बन्ने अर्थ थइ शके छे.

---

1. पल्योपम वा सागरोपमना पण ६ प्रकार जाणवा.
2. काळरूपी चक्रना आरा समान होवाथी.
3. सुख—संघयण—आयुष्य—उंचाई—वर्ण गन्ध रस स्पर्श- सद्गुण प्रजाजनना रसकस इत्यादि.

अथवा भूतकाळ, वर्त्तमानकाळ, अने भविष्यकाळ ए रीते ३ प्रकारनो काळ छे. त्यां भूतकाळ अने भविष्यकाळ अनंत समयात्मक, अने वर्त्तमान काळ एक समयात्मक छे. भूतकाळ करतां भविष्यकाळ अनंत गुण छे अथवा जेटलो भूतकाळ व्यतीत थयो तेटलो भविष्यकाळ छे एम बन्ने मान्यता भिन्न भिन्न महर्षिओनी छे. ने ते सापेक्षिक होवाथी अविरोधी छे. पुनः आ व्यावहारिक काळ पण अरूपी अने अढीद्वीपवर्त्ती छे, कारण के अढीद्वीप बहार सूर्य चंद्रनी गति नथी माटे त्यां दिवस-वर्ष-मास इत्यादि व्यवहार नथी, ज्यां दिवस त्यां दिवसज छे, अने ज्यां रात्रि त्यां सदाकाळ रात्रिज छे, माटे अढी द्वीप बहार सर्व द्वीप समुद्रोमां, देवलोकमां, अने साते नरक पृथ्वीओमां जे १०००० वर्षनुं आयुष्य इत्यादि सर्व व्यवहार चाले छे ते अढीद्वीपमां चालता सूर्य चंद्रनो गतिने अनुसारे जाणवो. कह्युं छे के—

" लोगाणुभागजणिअं, जोइसचक्कं भणंति अरिहंता।
सव्वे कालविसेसा, जस्स गइविसेसनिप्फन्ना ॥ १ ॥ "

(अर्थ—जेनी गति विशेषवडे सर्व काळभेदो उत्पन्न थयेला छे तेवा ज्योतिश्चक्रने अरिहंत भगवंत लोकस्वभावजनित (लोकस्वभावे उत्पन्न थयेल गतिवाळुं कहे छे.)

॥ काळ द्रव्य संबन्धि संक्षिप्त कोष्टक ॥

निर्विभाज्यकाळ प्रमाण	१ समय
० समयनुं	१ जघ० अन्तर्मुहूर्त्त
जघ० युक्त असंख्य समयनी	१ आवली
२५६ आवलीनी	१ क्षुल्लकभव

२२२३ १२२९/३७७३ आवलिनो	१ उच्छ्वास वा निश्वास.
४४४६ २४५८/३७७३ आवलिनो वा साधिक १७॥ क्षुल्लकभवनो	१ प्राण (श्वासोच्छ्वास)
७ प्राणनो	
७ स्तोकनो	१ स्तोक
३८॥ लवनी	१ लव
२ घडी वा ७७ लव अथवा ६५५३६ क्षुल्लक भवनो अथवा बे घडीनो	१ घडी
समयोन २ घडीनो	१ मुहूर्त
३० मुहूर्तनो	उत्कृ० अन्तर्मुहूर्त
१५ दिवसनो	१ दिवस
२ पक्षनो-(३० दिवसनो)	१ पक्ष (पखवाडीउं)
६ मासनुं (१८३ दिवसनुं)	१ मास
१२ मासनुं (२ अयननुं)	१ अयन
५ वर्षनुं	१ वर्ष
८४ लाख वर्षनुं	१ युग
७० क्रोड ५६ लाख क्रोड (७०५६०००००००००००)वर्षनुं	१ पूर्वांग.
असंख्यवर्षनो	१ पूर्व
१० कोडाकोडि पल्योपमनो	१ पल्योपम
१० को० को० सागरोपमनो	१ सागरोपम
	१ उत्सर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी
१ उत्स० अवस० नु (२० को० को० सागरोपमनु)	१ कालचक्र
अनन्तकालचक्रनुं	१ पुद्गल परावर्त.

अवतरण—प्रथमनी १३ गाथा सुधीमां १ जीव द्रव्य अने ५ अजीव द्रव्यनुं जुदुं जुदुं स्वरूप कहीने हवे सामान्यतः छए द्रव्य अमुक अमुक द्वार (परस्पर तफावत वाळी बाबत) जाणवा योग्य छे ते द्वारनां (बाबतोनां) नाम कहे छे.

॥ मूळ गाथा १४ ॥

परिणामि जीव मुत्तं, सपएसा एगखित्त किरिया य

निच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ॥ १४ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

परिणामी जीवो मूर्त्तः, सप्रदेशः एकः क्षेत्रं क्रिया च ।

नित्यः कारणं कर्त्ता, सर्व्वगतमितराप्रवेशः ॥ १४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

परिणामि-परिवर्तनपामनार वा लोह अने अग्निवत् परस्पर मळी (जनार.)	निच्चं-नित्य-शाश्वत
जीव-जीव	कारण-कारण
मुत्तं-मूर्तिमंत-रूपी	कत्ता-कर्त्ता
सपएसा-सप्रदेशी	सव्वगय-सर्वगत-सर्वव्यापी
एग-एक	इयर-इतर (उलट)
खित्त-क्षेत्र	अप्पवेसे-अप्रवेशी (तद्रूप नहि थनार.)
किरिया-क्रियावाळां-सक्रिय	

गाथार्थः—६ द्रव्यमां परिणामि-जीव-रूपी-सप्रदेशी-एक-क्षेत्र-सक्रिय-नित्य-कारण-कर्त्ता-सर्वव्यापी इतर प्रवेश द्रव्यो वधां वर्या छे.

विस्तरार्थः—छ ए द्रव्योमां परस्पर विशेषता अने अविशेषता जाणवामाटे ग्रन्थकर्त्ताए परिणामी इत्यादि सरनियम १२

द्वार सूचना रूपे मात्र कह्यां छे ते १२ द्वार कहेवानुं तात्पर्य ए छे के—पूर्वोक्त छ द्रव्यमां परिणामी अने अपरिणामी द्रव्य कयां? पूर्वोक्त छ द्रव्यमां सजीव अने निर्जीव द्रव्य कयां? इत्यादि विचारवुं ते आ प्रमाणे—

॥ ६ द्रव्यमां [1]परिणामी अने अपरिणामि ॥

परिणाम एटले एक अवस्था छोडीने बीजी अवस्थामां जवुं ते, श्री महाराजाए परिणाम पदनो अर्थ कर्युं छे के—

" परिणामो ह्यर्थान्तर-गमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम्
न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥ १ ॥"

अर्थः—परिणाम एटले अर्थान्तर-धर्मान्तरनी प्राप्ति, परन्तु सर्वथा (एकान्ते) एकज धर्ममां अवस्थान अथवा ते धर्मनो सर्वथा विनाश नहिं तेने बुद्धिमंतोए परिणाम कहेलो छे. जेम जीवनो परिणाम देव मटीने मनुष्य थवुं. अने अजीवनो परिणाम स्थिरत्वादिधर्ममांथी गत्यादि धर्ममां जवुं ते. त्यां परिणाम सामान्यतः जीवपरिणाम अने अजीवपरिणाम एम बे प्रकारे छे, तेमां पण जीवपरिणाम १० प्रकारनो छे. ते नीचे मुजब—

१ गतिपरिणाम—देवत्वादि चार गति ते.
२ इन्द्रियपरिणाम—स्पर्शादि ५ इन्द्रियो ते.
३ कषायपरिणाम—क्रोधादि ४ कषाय, अथवा अनंतानुबंध्यादि ४ कषाय छे.
४ लेश्यापरिणाम—कृष्ण लेश्यादि ६ लेश्याओ
५ योगपरिणाम—मनयोग-वचनयोग अने काययोग.

---

१ परिणाम एटले स्वस्वभावमां परिणमवुं ए अर्थथी तो
…ए द्रव्य परिणामी कहेवाय, परन्तु अहिं आगळ कहेवातो
…त्यादि परिणाम ग्रहण करवानो छे.

६ उपयोगपरिणाम—मतिज्ञानादि १२ उपयोग.
७ ज्ञानपरिणाम—मत्यादि ५ ज्ञान ने ३ अज्ञान.
८ दर्शनपरिणाम—मिथ्यात्व, क्षयोप० सम्यक्त्व, अने मिश्रसम्यक्त्व.
९ चारित्रपरिणाम—सामायिकचारित्रादि ५ प्रकारनां चारित्र.
१० वेदपरिणाम—स्त्रीवेद–पुंवेद–नपुंसकवेद.

जीव ए १० प्रकारना परिणामने (धर्मने) पामतो होवाथी जीवद्रव्य परिणामी गणाय छे. पूर्वोक्त गत्यादि जीवपरिणाम प्रायोगिक (कर्मोपाधिजन्य) छे, परन्तु जीवना स्वाभाविक नथी.

तथा अजीवपरिणाम १० प्रकारे छे—

अने ते अजीव परिणाम पुद्गल द्रव्यनेज होय छे माटे पुद्गलद्रव्य पण परिणामी छे ते पुद्गलना १० प्रकारना परिणाम नीचे मुजब.

पुद्गलोना १० [1] प्रकारना परिणाम (धर्म)

१ पुद्गलोनुं परस्पर जे मळवुं (जोडावुं) ते बंधनपरिणाम
२ पुद्गलोमां गतिक्रिया उपजवी ते गतिपरिणाम.
३ पुद्गलोनुं आकृतिपणे गोठवावुं ते संस्थानपरिणाम,
४ पुद्गलोनुं छूटा पडवु (विखरवु) ते भेदपरिणाम-
५ पुद्गलोमां ५ प्रकारना वर्ण उपजवा ते वर्णपरिणाम.
६ पुद्गलोमां २ प्रकारना गंध उपजवा ते गंधपरिणाम.
७ पुद्गलोमां ५ प्रकारना रस उपजवा ते रसपरिणाम.
८ पुद्गलोमां ८ प्रकारना स्पर्श उपजवा ते स्पर्शपरिणाम

१ ए सिवाय बीजा प्रकाशपणुं-अंधकारपणुं-प्रतिबिंबपणुं विगेरे अनेक परिणाम यथायोग्य बन्धनादि परिणामान्तर्गतपणे ग्रहण करवा. पुनः आदि पुद्गल शब्दथी स्कंधादि चारे भेद यथासंभव ग्रहण करवा.

९ पुद्गलोमां [1] गुरुत्व, [2] लघुत्व, [3] गुरुलघुत्व, अने [4] अ
घुत्व, उपजवुं ते [5] अगुरुलघुपरिणाम.

१० पुद्गलोमां ध्वनि–अवाज उपजवो ते शब्दपरिणाम.

पुद्गलद्रव्य ए १० प्रकारना परिणाम (धर्म) वाळुं
पुद्गलद्रव्य परिणामी छे. धर्मास्तिकायादि द्रव्यमां पूर्वोक्त
कोइपण परिणाम(धर्म) नहि होवाथी धर्मास्तिकायादि ४ द्रव
रिणामी अने जीव तथा पुद्गल परिणामी छे. (आ परि
स्वरूप श्री प्रज्ञापनासूत्रना परिणाम पदमांथी संक्षेपे उद्धरेल

॥ ६ द्रव्यमां जीव कोण अने अजीव कोण

छ द्रव्यमां जीवत्व स्वभाववाळु एक जीव द्रव्य जीव
ने शेष पांच द्रव्य अजीव छे.

॥ ६ द्रव्यमां रूपी कोण अने अरूपी कोण

वर्ण–गंध–रस–स्पर्श ए रूप कहेवाय, अने ए वर्णा
जेने होय ते रूपी कहेवाय. त्यां वर्णादि पुद्गलद्रव्यनेज
माटे पुद्गलद्रव्य रूपी, अने शेष ५ द्रव्य अरूपी छे.

---

१ पत्थर विगेरेमां जेम भारीपणुं. (अधोगतिना कारण

२ वराळ अने धूम विगेरेमां जेम हलवापणुं (उ
तिना (कारणरूप)

३ वायु विगेरेमां जेम गुरु हलवापणुं(तिर्यग्गतिना का

४ परमाणु विगेरेमां जेम न लघुपणुं न गुरुपणुं
थः स्थिरताना कारण रूप).

५ ए अगुरुलघुपरिणाम पुद्गल सिवाय धर्मास्तिका
अरूपि द्रव्योमां पण छे. औदा०-आहा०-वै०-ने तैजस ए
गुरुलघु छे. तथा कार्मण-मन-उच्छ्वास अने भाषा अगुरुलघु द्र

॥ ६ द्रव्यमां सप्रदेशी कोण अने अप्रदेशी कोण? ॥

६ द्रव्यमां धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्यना स्कंध देश अने प्रदेश " धम्माऽधम्माऽऽगासा " ए गाथामां कहेल छे, अने जीव पण असंख्य प्रदेशनो पिंड कह्यो छे माटे ए ५ द्रव्य सप्रदेशी-प्रदेश युक्त, अने काळ अप्रदेशी छे,

॥ ६ द्रव्यमां एक कोण अने अनेक कोण ? ॥

सर्व जगतमां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, अने आकाश ए त्रण द्रव्य एकेक छे, अने [1] जीव अने [2] पुद्गल अनंत होवाथी तथा काळ (समय) पण अनंत होवाथी जीव अने काळ अनेक छे.

॥ ६ द्रव्यमां क्षेत्र कोण अने क्षेत्री कोण ? ॥

जेमां पदार्थ रहे ते क्षेत्र (–आधारभूत ते क्षेत्र) कहेवाय, अने तेमां रहेला पदार्थो क्षेत्री कहेवाय. आकाशमां सर्व पदार्थ (द्रव्य) रहेला छे. माटे आकाश द्रव्य क्षेत्र अने शेष ५ द्रव्य क्षेत्री छे

॥ ६ द्रव्यमां सक्रिय अने अक्रिय कोण ? ॥

गति वगेरे क्रिया करनार जे द्रव्य ते सक्रिय (–क्रिया सहित) अने गत्यादि क्रिया रहित ते अक्रिय कहेवाय. त्यां जीव अने पुद्गल बे द्रव्य गति वगेरे क्रियावाळां होवाथी सक्रिय. अने शेष चार द्रव्य अक्रिय छे,

॥ ६ द्रव्यमां [3] नित्य अने अनित्य कोण ? ॥

सदाकाळ एकज अवस्थामां रहेनार जे शाश्वत पदार्थ ते नि-

---

१ सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय जीवो अने सिद्ध अनंत होवाथी.

२ परमाणु अनंत छे, द्विप्रदेशी स्कंधो अनंत छे यावत् अनंत प्रदेशी स्कंधो सुधीना सर्व स्कंधो अनंत अनंत छे माटे

३ निश्चयनये ६ ए द्रव्य नित्य छे. अने अनित्य पण छे

स्य अने विनाशी पदार्थ अनित्य कहेवाय. त्यां जीव देवत्वादि कोइपण एक अवस्थाए कायम नहि रहेतां देव मटीने मनुष्य थाय, मनुष्य मटीने तिर्यंच थाय. तिर्यंच मटीने पुनः नारक थाय इत्यादि अनेक कारणे 'जीवद्रव्य अनित्य छे, तथा पुद्गलद्रव्य पण परमाणु मटीने स्कंध थाय, काळो मटीने पीळो थाय इत्यादि

ते आ प्रमाणे—धर्मास्तिकाय अरूपी—अचेतन—अक्रिय—अने गति सहायक ए चार गुण तथा स्कंध पर्याय ए पांचवडे नित्य छे तथा देश—प्रदेश—अने अगुरुलघु ए त्रण पर्यायवडे अनित्य छे.—तथा अधर्मास्तिकाय अरूपी—अचेतन-अक्रिय—अने स्थिति सहायक ए चार गुण तथा स्कंध पर्यायवडे नित्य छे. अने देश—प्रदेश—तथा अगुरुलघु ए त्रण पर्याय वडे अनित्य छे.— तथा आकाशास्तिकाय अरूपी-अचेतन-अक्रिय अने अवगाहदान ए चार गुण तथा स्कंध पर्याय ए पांच वडे नित्य, अने देश—प्रदेश——तथा अगुरुलघु पर्यायवडे अनित्य छे.— तथा काळ अरूपी—अचेतन...अक्रिय-अने वर्त्तनादि लक्षण ए चार गुणवडे नित्य छे, अने अतीत अनागत-वर्तमान तथा अगुरुलघु ए चार पर्यायवडे अनित्य छे.— तथा जीवास्तिकाय ज्ञान-दर्शन-चारित्र अने वीर्य ए ए चार गुण तथा अरूपी-अनवगाह-अने अव्याबाध ए त्रण पर्याय मळी ७ वडे नित्य छे. अने एक अगुरुलघु पर्याय वडे अनित्य छे. (इति [illegible]ध्यात्मसार प्रश्नोत्तर.)

१ शंका—सिद्धना जीवो नित्य के अनित्य ?
[illegible]—जे पदार्थ नित्य होय ते अनादि अनंत भागे होय, अ[illegible]
मे सिद्धपणुं सादि अनन्त भागे होवाथी अनित्य छे.
कारणके सिद्धपणुं अनादि काळनुं नथी.

अनेक परावृत्तधर्मोना कारणे ¹ पुद्गलद्रव्य पण अनित्य
अने धर्माऽस्तिकायादि ४ द्रव्यनो तेवो विनश्वर स्वभाव नहिं
वाथी धर्मास्तिकायादि ४ ² द्रव्यो नित्य छे.

॥ ६ द्रव्यमां कारण अने अकारण कोण ? ॥

जे द्रव्य (कोइना) उपयोगमां (कार्यमां) आवे ते द्र
कारण, अने जेना उपयोगमां आवे ते अकारण, धर्माऽस्ति
यादि पांचे द्रव्यो जीवना उपयोगमां आवे छे, माटे धर्मास्ति
वगेरे ५ द्रव्यो कारण, अने जीवद्रव्य अकारण छे.

शंका—५ द्रव्यो जीवने शुं उपयोगमां आवे छे ?

उत्तर—हे जिज्ञासु ! पांचे द्रव्यो जीवने उपकार करनारां
पण जीवद्रव्य कोइ द्रव्यने उपकार करतुं नथी ते आ प्रमाणे—
जीवने (अने पुद्गलने पण) गतिक्रियामां उपकारी ³ धर्मास्ति० छे
जीवने (अने पुद्गलने पण) स्थितिक्रियामां उपकारी ⁴ अधर्मा० छे
जीवने (अने धर्मा० दिकने पण) अवकाश आपवामां उपकारी

१ शाश्वत मंदिरो-शाश्वती प्रतिमाओ-अने शाश्वता मे
रु वगेरे पदार्थो नित्य के अनित्य ? ए शंकाना समाधानमां
समजवानुं के ए पदार्थो स्कंधना देखावथी तो नित्य छे, पर
न्तु ए स्कंध जे पुद्गलद्रव्यनो बनेलो छे ते पुद्गल द्रव्य नित्य
नथी कारणके ए शाश्वत स्कंधोमांथी पण प्रतिसमय अनंत पु
द्गल परमाणुओ खरे छे. अने पुनः नवा आवी मळे छे जेथी स्कं
ध वा आकार शाश्वत छे पण पुद्गलद्रव्य अशाश्वत छे.

२ काळ द्रव्य प्रतिसमय बदलाय छे छतां नित्य केम !
ए शंकानुं ! समाधान जोके नैश्चयिककाळ १ समय रूप होव
थी बदलाया करे छे तोपण अतीत, वर्तमान, अनागत, ए त्रणे
काळद्रव्य कोइ काळे विनाश पामतुं नहि होवाथी काळद्रव्य नित्य छे.

३-४ गतिस्थित्युपग्रहो धर्माऽधर्मयोरुपकारः (तत्त्वा० ५—१७)

[1] आकाश द्रव्य छे,

जीवने [2]शरीर–[3]वचन–[4]मन–[5]उच्छ्वास–[6]सुख–[7]दुःख–[8]जी-
वित–अने [9]मरणमां पुद्गलद्रव्य उपकारी छे.
जीवने वर्तनादि पर्यायमां [10] कालद्रव्य उपकारी छे.

अथवा बीजी रीते कारण अकारणपणानो विचार आ प्रमाणे–
जीवनी गतिक्रियामां धर्मा० काय, स्थितिक्रियामां अधर्मास्तिकाय.
अवगाह क्षेत्रमां आकाश, वर्तनादिमां काल, अने शरीर रचना-
दिकमां पुद्गल कारणरूप छे, पण जीव ए पांच द्रव्यना कोइपण
कार्यमां कारणरूप नथी माटे जीवद्रव्य अकारण, अने शेष
द्रव्य कारण छे.

शंका—धर्मास्तिकायादि द्रव्यनो उपकार जेम जीव मळे छे,
पुद्गल मळे पण छे तो पुद्गलद्रव्यने अकारण द्रव्य केम
कहेवाय ?

उत्तर—अहिं कारण विगेरे जे द्वार विचारवानां छे ते एवी
रीते के ते द्रव्यमां बीजुं द्वार न ज घटवुं जोइए मात्र एकज द्वारनुं
अधिकारीपणुं एक द्रव्यने होवुं जोइए, ते प्रमाणे अहिं पुद्गलने

---

१ आकाशस्यावगाहः (तत्त्वा० ५—१८)
२-३-४ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् (तत्त्वा० ५-१९)
सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च (तत्त्वा० ५-२०) औदारिकादि
शरीर पुद्गलपरिणतिरूपे होवाथी जीवने शरीररूपे पुद्गल-
द्रव्य उपकारी छे.
५-६ भाषा-मन-उच्छ्वास ए सर्व रूपे पुद्गलो उपकार करे छे.
७—८ चंदनादि पुद्गलद्रव्यथी सुख अने कंटकादि अनिष्ट
पुद्गलथी दुःख थाय छे. माटे.
९ आयुष्य पुद्गलना सद्भावे जीवित, अने अभावे मर-
ण प्राप्त थाय छे माटे जीवन-मरणमां पुद्गलोप उपकार छे.
१० वर्तनापरिणामः क्रिया परत्वाऽपरत्वे च कालस्य
(तत्त्वा० ५—२२)

जो अकारण तरीके मानीशुं तो पुनः ते पुद्गल जीवने उपकारी होवाथी जीवना संबन्धमां कारण थाय छे ए प्रमाणे एक द्रव्यना संबन्धे अकारण अने बीजा द्रव्यना संबन्धे कारणपणुं मानतां व्यवस्था तुटी जती होवाथी एक द्रव्यमां एकज द्वार घटे तेवी रीते विचारवु. माटे जीवद्रव्य कोइनुं उपकारी नथी अने जीवद्रव्यने बीजां द्रव्यो उपकारी छे ए हेतुथी जीवद्रव्य ज अकारण छे, ने शेष कारण छे.

शंका—जीवद्रव्य शुं कोइने पण उपकारी नथी ?

उत्तर—जीवद्रव्य जीवद्रव्यने [1] परस्पर उपकारी छे, परन्तु कारणादि द्वार पर द्रव्य [2] प्रत्ययिक होवाथी [3] स्वद्रव्य प्रत्यय विरोधकारक नथी.

॥ ६ द्रव्यमां कर्त्ता अने अकर्त्ता कोण? ॥

जे द्रव्य अन्य द्रव्यनी क्रिया प्रत्ये अधिकारी होय (स्वामी होय) ते कर्त्ता, अने जे अन्य द्रव्यनी क्रिया प्रत्ये अधिकारी (स्वामी) न होय ते अकर्त्ता कहेवाय. अहिं " कर्त्ता एटले क्रियानो करनार " ए सामान्य अर्थने अनुसारे तो छ ए द्रव्य कर्त्ता होइ शके, परन्तु कर्त्ता एटले सर्व द्रव्यनो अधिकारी (पोतेज उपभोग करनार होवाथी स्वामी) " एवो अर्थ ग्रहण करवो योग्य छे. त्यां धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्योनी गतिसहायकादि क्रियाओनो उपभोग करवामां अधिकारी जीव द्रव्य छे माटे जीव द्रव्य कर्त्ता अने शेष ५ द्रव्य अकर्त्ता छे. अहिं पुद्गल धर्मादिकनी क्रियानो उपभोगी छे तो पण पुनः पुद्गलनो उपभोगी

१ परस्परोपग्रहो जीवानाम (त.वा० ५-२१)

२ कारणादि द्वार परद्रव्यनी अपेक्षाए विचारवानां होवाथी

३ जो द्रव्य पोते पोतानु उपकारी होय तो तेथा पोतानुं उपकारादि निमित्त विरोध कारक नथी.

नीवथी छे, माटे पुद्गलने कर्त्ता कहेवामां सांकर्य दोष आव
वाथी पुद्गल ६ द्रव्यना 'सामुदायिक संबन्धमां अकर्त्ता ग

॥ ६ द्रव्यमां सर्वव्यापी अने देशव्यापी कोण

जे द्रव्य सर्व जग्याए रहेलुं होय ते सर्वगत अथवा
व्यापी, अने जे द्रव्य अमुक (थोडी) जग्यामां रहेलुं ह
असर्वगत अथवा देशव्यापी कहेवाय, त्यां आकाश द्रव्य
अनंतानंत योजनप्रमाण लोकालोकव्याप्त होवाथी सर्वव्या
अने धर्मास्तिकायादि ४ द्रव्य लोकाकाश जेटली (१४ राज
प्रमाण—असंख्य योजन जेटली) जग्यामां रहेल होवाथी, अ
काळद्रव्य अढीद्वीप मात्र व्याप्त होवाथी देशव्यापी छे,

॥ ६ द्रव्यमां सप्रदेशी अने अप्रदेशी कोण ? ॥

एक द्रव्यनुं बीजा द्रव्यरूपे थइ जवुं ते प्रदेश कहेवाय, अने ए
थी बीजा द्रव्यरूपे थइ जनार जे द्रव्य ते सप्रदेशी कहेवाय, अने
जे द्रव्य अन्यद्रव्य रूपे न थतां स्वरूपे ज कायम रहे ते अप्र-
देशी कहेवाय. त्यां कोइपण द्रव्य बीजा द्रव्य रूपे थतुं नथी, जो-
के सर्व द्रव्यो एकज जग्यामां परस्पर संबंधीने रह्यां छे. पण धर्मा-
स्तिकाय ते अधर्मास्तिकायादि थतुं नथी. जीवद्रव्य पुद्गल पणे प-
रिणमतुं नथी ए प्रमाणे कोइ द्रव्य कोइ पण अन्य द्रव्यपणे परि-
णमतुं नहि होवाथी सर्व द्रव्य अप्रदेशी छे पण सप्रदेशी कोइ

---

१ अहिं कारण अने कार्य विगेरे बेउलां द्वारो ६ द्रव्यना
समुदाय संबंधीज विचारेलां छे, अने जो प्रत्येक द्रव्यमां प्र-
त्येक करण कारणादि द्रव्य विचारीए तो कोइ द्रव्यमां कं-
इक लागु पडी शके छे. जेम पुद्गल द्रव्य धर्मा० विगेरेनां अपे-
क्षाए कर्त्ता, अने जीवनी अपेक्षाए अकर्त्ता, इत्यादि प्रत्येकना
दशे द्वारोनी प्रवृत्ति व संबंध विचारवी योग्य छे,

नथी अर्हि पुद्गल द्रव्य स्वद्रव्यमां रहीने पररूप (पृथ्वी जळ रूपे, जळ वराळ रूपे, अग्नि धूम रूपे. आहार माटी रूपे, इत्यादि रीते पररूपे) थइ जाय छे. परन्तु पुद्गल फीटीने जीवादि द्रव्य बने नर्हि माटे अप्रवेशी छे. इति गाथोक्त द्वाराणि विवृतानि ॥

॥ अथ षद्सु द्रव्येषु परिणाम्यादिविभागयन्त्रकम्. ॥

६ द्रव्यनामानि.	परिणा०	जीव.	मूर्त.	सप्रदे०	एक.	क्षेत्र.	सक्रिय	नित्य.	कारण.	कर्ता.	सर्वग.	अप्र०
धर्मास्तिकाय.	०	०	०	१	१	०	०	१	१	०	०	१
अधर्मास्तिकाय.	०	०	०	१	१	०	०	१	१	०	०	१
आकाशास्तिकाय	०	०	०	१	१	१	०	१	१	०	१	१
जीवास्तिकाय.	१	१	०	१	०	०	१	०	०	१	०	१
पुद्गलास्तिकाय.	१	०	१	१	०	०	१	०	१	०	०	१
काल.	०	०	०	०	०	०	०	१	१	०	०	१

हवे विशेषथी ६ द्रव्यमां द्रव्यादिद्वार कहेवाय छे.

॥ ६ द्रव्यमां द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव-गुण-ने आकृति. ॥

धर्मास्तिकाय—द्रव्यथी १-क्षेत्रथी लोकाकाश प्रमाण-काळथी अनादि अनंत-भावथी वर्ण गंधादि रहित-गुणथी गतिसहायक, अने आकृतिथी वज्राकार छे.

अधर्मास्तिकाय—गुणथी स्थिति सहायक. शेष द्रव्यादि धर्मा० वत्)

आकाशाऽस्तिकाय—द्रव्यथी १–क्षेत्रथी लोकालो
–काळथी अनादि अनन्त–भावथी वर्णादि रहित–गुणथी अ
दाता–अने आकृतिथी [1] गोळा समान

जीवाऽस्तिकाय—द्रव्यथी अनन्त, क्षेत्रथी एक जीव
थि जघन्य अंगुलनो असंख्यातमो भाग, उत्कृष्टथी एक तथा अ
जीव आश्रयि सर्व लोक प्रमाण—काळथी अनादि अनन्त—
थी वर्णादि रहित–गुणथी ज्ञान दर्शनादि गुण युक्त–अने आ
रथी देहाकार अथवा (समुद्घातनापेक्षाए लोकाकार.)

पुद्गलाऽस्तिकाय—द्रव्यथी अनन्त–क्षेत्रथी लोक प्रमाण
काळथी अनादि अनन्त–भावथी वर्ण–गंध–रस–स्पर्श युक्त–गुण
थी पूरण गलन स्वभावी–आकृतिथी दीर्घ–चतुरस्र–त्रिकोण-
वर्तुल—परिमंडल.

काळ—द्रव्यथी १–क्षेत्रथी २॥ द्वीप प्रमाण–काळथी अना-
दि अनंत–भावथी वर्णादि रहित—गुणथी वर्तनादि लक्षण युक्त
[2] आकृतिथी अवक्तव्य इत्यादि ६ द्रव्यनुं यत्किंचित्
स्वरूप कह्युं.

॥ द्वितीयाजीवतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

---

१ एमां पण लोकाकाशनो आकार सुप्रतिष्ठ सरखो, अने अलोकाकाशनो आकार पोला गोळा सरखो छे.

२ काळ वास्तविक. रीते द्रव्य नहि होवाथी काळनो अ- मुक आकार छे. एम कहेवुं अशक्य छे.

॥ अजीवतत्त्वपरिशिष्टम्. ॥

॥ अजीवना ५६० भेद. ॥

अरूपो अजीवना ३० भेद—१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मा० देश, ३ धर्मा० प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय, ५ अधर्मा० देश, ६ अधर्मा० प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय, ८ आकाशा० देश, ९ आकाशा० प्रदेश, अने १० मो काळ. तथा धर्मा०, अधर्मा०, आकाशा०, अने काळ ए चारना प्रत्येकना द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव-अने गुण ए पांच पांच भेद गणतां २० भेद थाय. ए प्रमाणे प्रथमना १० अने बीजीवारना २० भेद मळी अरूपी अजीवना ३० भेद थाय.

॥ रूपी अजीवना ५३० भेद. ॥

५ वर्ण, २ गंध, ५ रस, ८ स्पर्श, अने ५ संस्थान ए २५ गुणमां जे गुणना भेद गणवा होय ते गुण अने तेना विरोधी गुण गुण शिवायना शेष सर्व गुण भेद ते गुणमां प्राप्त थाय माटे पांच वर्णमां कृष्णवर्णने अंगे गणीए तो २५ मांथी प्रथम कृष्णवर्ण अने त्यारबाद कृष्णवर्णमां समकाळे नहिं गणवा योग्य शेष चार वर्ण पण बाद करतां शेष २० गुणभेद १ कृष्णवर्णमां संभवे, ए प्रमाणे नीलवर्णमां पण पांचे वर्ण विना २० गुणभेद होय, तेथी दरेक वर्णमां २०-२० गणतां ५ वर्णना ५×२०=१०० वर्ण भेद थाय. ए रीते ५ रसमां दरेक रसने अंगे (५ रस शिवायना) २०-२० भेद गणतां १०० रसभेद थाय. पुनः पांच संस्थानमां दरेक संस्थानने अंगे (५ संस्थान शिवायना) वीस वीस भेद गणतां १०० संस्थानभेद थाय. पुनः २ गंधमां दरेक गंधने अंगे (२ गंध शिवायना) २३-२३ भेद गणतां २३×२=४६ गंध भेद थाय.

अने दरेक स्पर्शने अंगे (एक विवक्षित अने बीजो विरोधी एम २ स्पर्शविना शेष) २३-२३ भेद गणतां आठे स्पर्शना २३×८ =१८४ स्पर्शभेद थाय. जेथी सर्व मळी रूपी अजीवना ५३० भेद थाय. तेनुं संक्षिप्त कोष्टक नीचे प्रमाणे—

धर्मा०	स्कंध-देश-प्रदेश ३	वर्णना	५×२०=१००
अधर्मा०	,, ,, ,, ३	रसना	५×२०=१००
		संस्था०	५×२०=१००
आकाशा०	,, ,, ,, ३	गंधना	२×२३=४६
		स्पर्शना	८×२३=१८४
काळ	१		५३०
	१०-अरूपी अजीव.		रूपी अजीव.

धर्मा०	द्रव्य-क्षेत्र-काळ-भाव-गुण ५
अधर्मा०	,, ,, ,, ,, ,, ५
आकाशा०	,, ,, ,, ,, ,, ५
काळ	,, ,, ,, ,, ,, ५
	अरूपी अजीव-२०

॥ कालविचार. ॥

लोकरूढिये कालना कृत-त्रेता-द्वापर-कलियुग ए प्रमाणे [illegible] कल्पेला छे तेमां कृतयुग १७२८००० सत्तर लाख अठावीश [illegible]र वर्षनो, त्रेतायुग १२९६००० बार लाख छन्नुं हजार वर्षनो, [illegible]युग ८६४००० आठ लाख चोसठ हजार वर्षनो अने कलि- [illegible]३२००० चार लाख बत्रीश हजार वर्षनो छे, सर्वना मळी

४३२०००० तेंतालीश लाख वीश हजार वर्ष थया, एक पूर्वमां एक क्रोड त्रेसठ लाख अने तेत्रीश हजार त्रणसें अने तेत्रीस वार चारे युगोनी परावृत्तिओ अने चारे युगना समहितकालनो एक तृतीयाम १।३ भाग व्यतीत थाय छे.

दसवैकालिक चूर्णिमां — पुद्गल अने नोपुद्गल ए प्रमाणे अजीव बे भेदे छे पुद्गलना ६ भेद १ सूक्ष्म, २ सूक्ष्म सूक्ष्म, ३ सूक्ष्म बादर, ४ बादरसूक्ष्म, ५ बादर, ६ बादर बादर ए भेदोना अनुक्रमे १ परमाणु, २ सूक्ष्मपरिणत अनन्तप्रदेशीस्कन्ध, ३ गन्ध, ४ वायु, ५ जल, ६ पृथ्व्यादि.

नो पुद्गलना—धर्मास्तिकायादिक ३ भेदो छे.

॥ इत्यजीवतत्त्वपरिशिष्टम्. ॥

॥ १ पुण्यतत्त्वम् ॥

अवतरण—नवतत्त्वमां जीव अने अजीव तत्त्वनुं स्वरूप
करीने हवे त्रीजा पुण्यतत्त्वनुं स्वरूप कहे छे. त्यां आ गाथामां पु-
ण्यना ४२ भेदमां प्रथम १७ भेद गणावे छे,

॥ मूळ गाथा १५ मी ॥

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पंचिंदिजाइ पणदेहा ।
आइतितणुणुवंगा, आइमसंघयण संठाणा ॥१५॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सातोच्चैर्गोत्रमनुष्यद्विक-सुरद्विकपंचेन्द्रियजातिपंचदेहाः ।
आदित्रितनूनामुपांगा-न्यादिमसंहनननसंस्थानानि ॥१५॥

॥ शब्दार्थ ॥

सा-शातावेदनीय.
उच्चगोअ-उच्चगोत्र
मणुदुग-मनुष्यद्विक
सुरदुग-देवद्विक
पंचिंदिजाइ-पंचेंद्रियजाति
पणदेहा-पांच शरीर.
आइ-प्रथमनां
ति-त्रण
तणुण-शरीरनां
उवंगा-उपांग.
आइम-प्रथम.
संघयण-संघयण
संठाण-संस्थान

१ बधां देवोमां पर्याप्त पंचेंद्रीय तीर्यंच मनुष्यगति जोनारमां

गाथार्थः—शातावेदनीय–उच्चगोत्र–मनुष्याद्विक (मनुष्य
गति अने मनुष्यानुपूर्वी)–देवद्विक (देवगति–देवानुपूर्वी)–पं
चेन्द्रियजाति, पांचे शरीर–प्रथम त्रण शरीरनां उपांग (औदारि
उपांग–वैक्रिय उपांग–आहारक उपांग)–प्रथम संघयण (वज्र
ऋषभनाराच)–अने प्रथम संस्थान (समचतुरस्र) ए सर्व (१
वस्तु) पुण्यना उदयथी मले.

विस्तरार्थः—पुनाति एटले पवित्र करे ते पुन्य कहेवाय
अर्थात् जे कार्यो करवाथी अशुभ कर्मवडे मलिन थयेलो आत्मा धी
रे धीरे पवित्र एटले शुभ कर्मवालो थइ अनुक्रमे मोक्ष पहोंचे ते
कार्य पुन्य कहेवाय छे, तथा ए पुन्यना कार्य करवाथी जे शुभक

भटके छे. ते कर्म घाति-अघाति भेदथी बे प्रकारे छे, घातिकर्म ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय अन्तराय ए चारे प-ण आत्मगुणना घातक होवाथी पापतत्त्वमांज गणाय छे. अने अघातिकर्म-वेदनीय-आयु नाम अने गोत्र ए चार शुभ अशुभ उभय स्वरूप छे, तेमां अशुभ प्रकृतिओ जे संक्लिष्ट अध्यवसाय वाळा जीवोने बंधाय छे. ते पापमां गणी छे अने शुभ-प्रशस्त प्रकृतिओ जे विशुद्ध अध्यवसायवाळा जीवो बांधे छे. वळी कर्मना बन्ध उदय उदीरणा अने सत्ता विगेरे अनेक अ-वस्थाओ छे के जेने आश्रयी भेदोमां अनेक विकल्पो थई छे तेमां अहीं पुण्य-पापतत्त्वमां गणातां प्रकृतिओ बन्धावस्थाथी लेवानी छे. ते बन्धमां ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण २६ मो-हनीय. ५ अन्तराय, मळी ४५ घाति प्रकृतिओ पापतत्त्वमां ग-णवानी छे, १ असाता० वेदनीय. १ नीचगोत्र १ नरकायु ए त्र-ण पण त्रण कर्मनी पापमां छे, तेम ए त्रणमां पांच तथा नाम कर्मनी ६७ प्रकृतिओमां वर्णचतुष्क प्रशस्ताप्रशस्त हेई बे व-खत गणवानुं होवाथी ७१ पैकी ३४ अशुभ नाम प्रकृति पापमां छे अने बाकी रहेला ३७ प्रशस्त नाम प्रकृति पुण्यमां गणवी एटले १ वेदनीय, ३ आयुष्य, ३७ नाम प्रकृति, १ गोत्र मळी ४२ पुण्य प्रकृति जाणवी (मु- नि ड ड. ग.)

शुभ कर्म पण पुण्य कहेवाय. ए प्रमाणे पुण्यनां पुण्य-
पुण्यफल रूप वे अंग छे. ने ते परस्पर कारण का-
केमके पुण्यनी क्रियाथी पुण्य (शुभकर्म) उपार्जन
थाय छे) माटे पुण्यनी क्रिया ए कारण छे अने बं-
कर्म ते कार्यरूप छे. हवे जे क्रिया वडे पुण्य बंधाय छे.
यो आ प्रमाणे छे—

(पुण्य बांधवानां कारण.)

पात्र देवाथी	२ पात्रने पाणी देवाथी.
स्थान आपवाथी	४ पात्रने शयन आपवाथी,
स्त्र आपवाथी	६ मनना शुभ संकल्पथी.
शुभ व्यापारथी	८ कायाना शुभ व्यापारथी

ादिकथी

मोक्ष मार्गने अभिमुख थयेला मुनि सुपात्र, धर्मी गृहस्थ
करुणा करवा योग्य अपंगादिक जीवो पात्र ए त्रणेने
थी ओळखवा. अने शेष सर्व अपात्रमां गणाय. तेमां
ने ' सुपात्र धमनी बुद्धिए अन्नादिक आपवाथी अ-
महानिर्जरा पूर्वक महा पुण्य उपार्जन थाय. अने धर्मी
न्नादिक आपवाथी मुनिनी अपेक्षाए अल्प पुण्य उपा-
अपंगादिक दुःखी जीवोने अन्नादिकथी उद्धार करतां
न थाय, ते सिवायनो गमे ते जीव घरने द्वारे आवी
ने निराश करी काढतां मारो धर्म निंदाशे माटे तेम
देवानी इच्छाए आपे तो पुण्य उपार्जन करे, अने अ-
र्मोदपणाथी लक्ष्मीनी असारता दर्शाववाने माटे (श्री

गौतमने पौद्गलादिक सुखनी, भने देवादिक सद्गु-
ानो अभिलाषा धर्मराग होवाथी पुण्य बंधाय.

तीर्थंकरादि दीक्षा लेनार जीवोनी पेठे) गमे ते जीवने दान आपे तो पण [१] पुण्य बंधाय ए सर्व विगत पात्रत्वने अपेक्षीने कहीशेष भेद सुगम छे.

हवे ते बंधायलुं पुण्य कये कये प्रकारे उदय आवे छे–भोगवाय छे ? तेज ४२ प्रकारे पुण्य भोगववानो संबन्ध गाथामां कह्यो छे. ते आ प्रमाणे.—

१ शातावेदनीय—जे कर्मना उदयथी सुखनो अनुभव थाय ते कर्म तथा ते सुखनो अनुभव बन्ने पुण्यमां कहेवाय.

उच्चगोत्र—जे कर्मना उदयथी उच्चकुळ–जाति–धन–ठकुराइ इत्यादि प्राप्त थाय ते कर्म तथा उच्चकुळ वगेरे सर्व पुण्य कहेवाय.

---

१ प्रसंगे ए पण ख्याल रहेवो जोइए के——

१ श्वान-कबूतर-वगेरे जीवोने अन्नादिक आपवाथी तथा जीवितदान आपवाथी पण पुण्य बन्धाय छे. कारणके तेमां करुणा भावथीज पुण्य बन्धाय छे

२ जेह आवेला ब्राह्मण-बावा-जोगी-संन्यासी विगेरे जे जेओ सम्यधर्मथी विमुख छे तेओने "आ पण धर्मी जीवो छे" अथवा " आपणे धमने आपीशुं तो धर्म थशे पुण्य थशे " एवी बुद्धिथी आपवुं नहि. पण श्रावकना अभंगद्वार होवाथी कोइपण वखते आवेलो जीव मनथी निराश थइ पाछो न जाय. अने जाय तो मारो धर्म जगतमां हलको गणाय, अथवा "मारो दाक्षिण्य गुण न गणाय" एम विचारीने अवश्य आपवुं जोइए कारणके एवी पोतामां दान गुण प्रगटे, धर्म मारो गणाय. अने अन्य जीवो पण धर्माभिमुखी थाय.

३ कतलखाना जीवो छुटा थाय – बचाय – छोडाववामां ते सदाव्रत बंधाववामां पुण्य थाय छे कारणके घणा जीवो तेथी शांत था आत्माओ शान्ति करे छे, तथा पर्वादिकमां इष्ट मृत्यु होवाने मरवाना ढेर बनाववामां इत्यादि अनेक कार्यमां पुण्य माने छे. परन्तु ते अज्ञानता छे, एम स्पष्ट रीते आ ग्रंथमां कह्युं छे, अने आ तरी रीते पुण्य बंधायुं होय तो

३ मनुष्यगति—जे कर्मना उदयवडे मनुष्यपणुं प्राप्त थाय ते कर्म तथा मनुष्यपणुं बन्ने पुन्य कहेवाय.

४ [1]मनुष्यानुपूर्वी—जे कर्मना उदयवडे वक्रगतिए जतो मनुष्यगति वाळो जीव पोताने ज्यां उत्पन्न थवुं होय त्यां ज जइ शके ते कर्म तथा ते कर्मनो उदय बन्ने पुन्य कहेवाय.

५ देवगति—जे कर्मना उदयथी देवपणुं प्राप्त थाय ते.

६ देवानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी देवपणामां ज्यां उत्पन्न थवुं होय तेज क्षेत्रमां जइ देवपणे उत्पन्न थाय ते.

७ पंचेन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी पंचेन्द्रियपणुं प्राप्त थाय ते कर्म तथा पंचेन्द्रियपणुं बन्ने पुन्य कहेवाय.

८ [1]औदारिकशरीर—जे कर्मना उदयथी औदारिक श-रीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

९ [1]वैक्रियशरीर—जे कर्मना उदयथी वैक्रिय शरीरनी प्रा-प्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

दरेक जीवोना सुखने माटे जेमणे गेही धान्य उगाडी आप-वां, दरेकने माटे मकानो बांधी आपवां, दरेकने परलावो आ-पवां अने दरेक जीवो जेमां जेमां पोते सुख मानता होय ते-वां तेवां साधन मेळवीने बनावी आपवां तो पछी पापनु था-ई जवुं थाशो रहुं ! माटे ए मान्यता अज्ञानमूलक छे. प-रन्तु नरकनो जीव अथवा ज्यारूप बंदो जीव आपणी पासे आव्यो होय तो आपणे करुणाभावथी तेने पाणी अने अ-न्न आपी शान्त करवो ए धरम छे. आ संबन्धमां घणो ज विचार धर्ममार्गने बाध न पहोंचे तेम विचारवुं.

१ ऋजुगतिए (सीधी गतिए) जता जीवने आनुपूर्वी-उदय नथी पण वक्रगतिए जता जीवने जे देशान्तरे वक्र-जाय ते देशाने जे कर्म जीवने बळदने नाथनी पेठे पा-डे ते बळदना कर्मनुं नाम आनुपूर्वी कहेवाय छे.

१० [१] आहारक—जे कर्मना उदयथी आहारकशरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

११ [२] तैजस—जे कर्मना उदयथी तैजस शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा शरीर बन्ने पुन्य कहेवाय.

१२ [३] कार्मण—जे कर्मना उदयथी कार्मण शरीरनी प्राप्ति थाय ते कर्म तथा का० शरीर बन्ने [४] पुन्य कहेवाय.

१३ औदा० उपांग—जे कर्मना उदयथी औदा० शरीरने आंख–नाक–कान–इत्यादि अवयवो प्राप्त थाय छे ते. (अहिं अवयव विनानुं पण औदा० शरीर एकेन्द्रिय जीवोने होय छे माटे अवयवोनी प्राप्ति पुण्यरूपे जाणवी.).

१४ वैक्रियउपांग—जे कर्मना उदयथी वै० शरीरने अवयवो (आंख–नाक–कान–आंगळीओ) इत्यादि प्राप्त थाय ते. (अहिं वायुकायना वै० शरीर ने अवयवो होता नथी ने देवादिकने होय छे माटे पुण्यप्रकृतिरूप छे).

१५ आहारक उपांग—जे कर्मना उदयवडे आहा० शरीरने अवयवोनी प्राप्ति थाय ते (अहिं कोइपण आहा०शरीर अवयव विनानुं थतुं नथी पण एकेन्द्रियने शेष अवयव विनानुं औ-

१—२ ३—४—५ ए पांचे शरीरनुं विस्तृत वर्णन ७ मी गाथाना अर्थमां आवी गयुं छे माटे अहिं तो नाम मात्र दर्शावेल छे.

६ कार्मण शरीर भवमां भ्रमण करावनार छे छतां पुन्य रूप केम गणाय ? ए संबन्धि समजवानुं ए छे के–सर्व पौद्गलिकसुखो अने दुःखो कार्मण शरीरना प्रभावथी छे, परन्तु पौद्गलिकसुखमां कार्म० शरीरनी मुख्यता गणीने पुण्यप्रकृतिमां गणेल छे.

१ शंका– वनस्पतिने शाखा-प्रशाखा पुष्प-फळ इत्यादि अनेक अवयव छतां एकेन्द्रियनुं औदा०शरीर उपांगरहित केम कहेवाय ?

दा०शरीर घृडुं थाय छे तेम आहा०शरीर न थाय माटे आहा०उ-पांग कर्मनी आवश्यकता छे. जो ए कर्म न होयतो आहा०शरीर रह हुंद आ प्रमाणे उपांगनी अंदर १ अंग २ उपांग ३ अंगोपांग ए त्रणे पण समजवा. १ अंग—बे भुजा. बे उरु, पृष्ठ, मस्तक. उदर. छाती, ए आठ छे, २ उपांग—आंगळीओ विगेरे. ३ अंगोपांग—रेखाओ विगेरे. जेथी शोभनिक थाय माटे ए उपांगकर्म पुण्यरूप छे.)

१६ वज्रऋषभनाराच संघयण—जे कर्मना उदयथी वज्रऋषभनाराच संघयण प्राप्त थाय ते. (अहिं संघयण एटले हाडकांना सांधानुं बंधारण ते ६ प्रकारनुं छे तेमांनुं आ पेहेलुं संघयण छे. त्यां वज्र–खीली, ऋषभ–हाडनो पाटो, अने नाराच–वांदरीनुं बच्चुं जेम माने हाथनी आंटी मारी मजबूत वळगी रहे छे तेम बे हाडकांना बे छेडा परस्पर एकबीजाने आंटी मारी मजबूत रीते वळगी रहे ते मर्कटबन्ध कहेवाय. तेमां पेहेला संघयण वाळा जीवनां हाडकांना ज्यां सांधा होय ते सांधाने स्थाने आवेलां बे हाडकांना बे छेडा एकबीजाने मर्कटबन्ध माफक वळगी रहेला होय ने ते मर्कटबन्ध उपर हाडकानो मजबूत पाटो उपर नीचे वींटाइ रहेलो होय छे, अने एक हाडकानी खीली ते पाटाउपरथी ठेठ नीचे सुधी पाटो–अने बे हाडना छेडाने भेदीने रहेली होय छे जेथी ए सांधो एवो मजबूत थाय छे के मोटी शीलाओथी ६ माससुधी कचडता पण ते हाडकांना सांधा छुटा थवाना मात्र पोढाज थाय छे, एवां संघयणनी प्राप्ति खरेखर पुन्यवि-[illegible] न ज होय! बीजां पांच संघयणनुं स्वरूप पापतत्त्वमां आवशे.)

उत्तर—ते दरेक अवयवना अधिष्ठाता जीवो जुदा जुदा छे [illegible]ण के अवयवो यथायोग्य शोभन पण बुद्धजीवना बनाईला [illegible]थी. माटे पंचेन्द्रियने उपांगनो उदय नथी.

१७ समचतुरस्र संस्थान—जे कर्मना उदयथी समचतुरस्र संस्थाननी प्राप्ति थाय ते. (अहिं संस्थान एटले जीवना शरीर नो लक्षणयुक्त आकार ते ६ प्रकारनो छे तेमां आ प्रथम संस्थान छे. आ संस्थानवाळो जीव पर्यंकासने बेठो होय ते वखते डाबा पगना ढींचणथी जमणा खभा सुधीनी लंबाइ, जमणा पगना ढींचणथी डाबा खभासुधीनी लंबाइ, जमणा ढींचणथी डाबा ढींचण सुधीनी लंबाइ. पर्यंकासनना मध्यभागथी ललाटोपरिभाग सुधीनी उंचाइ एम सव रीते मापतां लंबाइओ सरखे दाथे आवी रहे ते समचतुरस्र संस्थान कहेवाय. तेमां सम एटले सरखा, चतुः एटले चार ने अस्र खूणा, अर्थात् जेना चारे खूणा सरखा मापना होय ते समचतुरस्र कहेवाय. अथवा जे मनुष्य पोताना अंगुल वडे १०८ अंगुलथी उंचो होय ते पण समचतुरस्र संस्थानी होय. सर्व तीर्थंकरो अने सर्व देवो समचतु० संस्थानीज होय ने शेष जीवो बन्ने प्रकारे होय.

शंका—मनुष्यने अपेक्षीने तो समचतु०नो ए अर्थ संभवे पण गर्भजतिर्यंचोनु समचतु० संस्थान होय छे तो ते केवीरीते मापी शकाय ?

उत्तर—समचतुरस्र शब्दनो व्युत्पत्तिनिमित्तनी अपेक्षाए उपर कह्यो ते अर्थ जाणवो पण प्रवृत्तिनिमित्तथी तो सामुद्रिकशास्त्रोक्तलक्षणयुक्त शरीराकृतिने समचतुरस्र कहीए. अने ते उपलक्षणयुक्त संस्थान तो गर्भजतिर्यंचोने पण संभवे, कारण के श्री सर्वज्ञे हाथी–घोडा–बळद वगेरे जे जीवोना अवयवोनुं प्रमाण शरीरना जेटलामे भागे जोइए ते सघळा स्वरूप रीते दर्शाव्युं छे ने ते प्रमाणे होवाथी समचतुरस्र संस्थानी कहेवाय. बाकीना पांच संस्थानोनु स्वरूप पारतम्यमां कहेवाशे. ॥

अवतरण—पूर्व गाथामां पुन्यना १७ भेद गणावीने हवे आ गाथामां बाकी रहेला पुन्यना २५ भेद गणावे छे.

॥ मूल गाथा १६ मी ॥

वन्नचउक्काऽगुरुलहु-परघा उस्सास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइ निमिण तसदस,सुरनरतिरिआउ तित्थयरं॥१६।

॥ संस्कृतानुवादः ॥

वर्णचतुष्काऽगुरुलघु-पराघातोच्छ्वासातपोद्योतं ।
शुभखगतिनिर्माणत्रसदशक-सुरनरतिर्यगायुस्तीर्थंकरं॥१६॥

॥ शब्दार्थः ॥

वन्नचउक्क-(शुभ)वर्ण-गंध-रस ने स्पर्श ए चार.
अगुरुलहु-अगुरुलघुनामकर्म.
परघा-पराघातनामकर्म
उस्सास-श्वासोच्छ्वासनामकर्म
आयव-आतपनामकर्म.
उज्जोअं-उद्योतनाम कर्म.
सुभखगइ-शुभविहायोगतिनामकर्म
निमिण-निर्माणनामकर्म.
तसदस-त्रस वगेरे १० नामकर्म
सुर-देवनु आयुष्य.
नर-मनुष्यनु आयुष्य.
तिरिआउ-तिर्यचनु आयुष्य.
तित्थयरं-तीर्थंकरनामकर्म.

गाथार्थः—शुभवर्ण-शुभगंध-शुभरस-शुभस्पर्श-अगुरुलघु-नामकर्म-पराघातनामकर्म-श्वासोच्छ्वासनामकर्म- आतपनामकर्म-उद्योतनामकर्म-शुभविहायोगतिनामकर्म- निर्माणनामकर्म- त्रसनाम-कर्म-बादरनाम०-पर्याप्तनाम० प्रत्येकनाम०-स्थिरनाम०-शुभनाम०-सौभाग्यनाम०-सुस्वरनाम०-आदेयनाम०-यशनाम०-देवायुष्य-मनुष्यायुष्य-तिर्यचायुष्य- अने तीर्थंकरनाम० ए सर्व (२५) पु-न्यना उदयथी थाय छे.

विस्तरार्थः—वर्णचतुष्कमां वर्ण एटले रंग–गंध एटले गंध–रस एटले स्वाद—अने स्पर्श एटले स्पर्श ते अहिं शुभ ग्रहण करवाना होवाथी ते शुभवर्णादिकनां नाम आप्रमाणे—

१८ शुभवर्ण—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर श्वेत (धोळुं)–रक्त (लाल)–अने पीत (पीळुं) वर्णनुं थाय ते कर्म अने प्राप्त थयेलो शुभवर्ण बन्ने पुन्य गणाय.

१९ शुभगंध—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर सुरभि गंधवाळुं थाय ते, जेम मोगरो–गुलाब–केवडो इत्यादिक जीवोनु॰

२० शुभरस—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर आम्ल (खाटुं)–मधुर[1] (मिष्ट)–अने कषायली (तूरुं) होय ते जेम अनुक्रमे आमली–शेलडी–अने हरडे वगेरे जीवोनुं.

२१ शुभस्पर्श—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर उष्ण–मृदु (कोमळ)–स्निग्ध (चिकणुं)–अने लघु (हलकुं) होय ते जेमके अनुक्रमे अग्नि–कमळ–गुंदा–अने आकडानुं तूर इत्यादि जीवोनु.

२२ अगुरुलघु—जे कर्मना उदयथी जीवनु शरीर पोताने निर्वहन न थइ शके एवुं अति भारी अने हवामां उडी जाय तेवुं अति हल्कुं पण न थाय परन्तु मध्यमसर थाय ते. (दरेक जीव मात्रनु शरीर अगुरुलघुज होय छे.)

२३ पराघात—जे कर्मना उदयथी जीवनी एवी प्रभा पडे के बीजो सामो जीव गमे तेवो बळवान होय छतां पण तेने देखतां ज लाचार बनी जाय ते

२४ उच्छ्वास—जे कर्मना उदयथी जीव सुखपूर्वक श्वासोच्छ्वास लइ मूकी शके तेवी लब्धिवाळो थाय ते. (ए कर्मनो उदय सर्व पर्याप्त जीवोने ज होय छे.)

---

१ लवणनो जे खारो रस ते पण बीजा पदार्थोने मधुर रसवाळा बनावनार होवाथी मिष्ट-मधुररसमां गणाय छे.

२५ आतप—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर पोते शीत छतां उष्णप्रकाशयुक्त होय ते, जेमके सूर्यना विमानगत पृथ्वीजीवो तथा सूर्यकांत मणीना जीवोने. ए कर्म खर बादरपृथ्वीकाय पर्याप्त जीवोनेज होय परन्तु अग्निने पण नहिं.

२६ उद्योत—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर शीतप्रकाशयुक्त थाय ते. जेमके सूर्य शिवाय चार ज्योतिषी विमानना पृथ्वीकाय-आगीआ-वगेरेने (उत्तरवै० शरीरने पण.)

२७ [1]शुभविहायोगति—जे कर्मना उदयथी जीवनी गति (चाल) हंस अने बळदना सरखी मलपती होय ते. जेमके हंस-हाथी-बळद-वगेरे जीवोने. (अहिं शुभ-सारी विहायस्-आकाशमां—खुल्ली जगामां गति—गमन करवुं-चालवुं ए व्युत्पत्त्यर्थ छे.)

२८ निर्माण—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर ज्यां जेवुं जोइए त्यां तेवुंज बने ते. ए कर्म सुतार सरखुं छे

२९ थी—३८ (त्रसादि १० प्रकृति आगळनी गाथामां कहेवाशे.)

३९ देवायुष्य—जे कर्मना उदयथी देवभवमां रहेवाना कारण रूप देव संबन्धि आयुष्यनी प्राप्ति थाय ते (जेम देवोने)

४० मनुष्यायुष्य—पूर्ववत्

४१ [2]तिर्यंचायुष्य—पूर्ववत्

१ आकाश शिवाय कोइनी पण गति थती नथी छतां विनाम कर्म जुदुं होवाथी आकाश वाचक विहायस् विशेषण मुकवुं पडे छे.

२ तिर्यंच जीवो पोताना जीवनने मार्के समजी मरवा इच्छता नथी माटे तिर्यंचनुं आयुष्य पुण्यरूप छे. अने नारकी जीवो पोताना शरीरमांथी छुटवानेज इच्छे छे माटे नारकीनुं आयुष्य पापमां गणाशे

४२ तीर्थंकर—जे कर्मना उदयथी त्रणे भुवनमां पूज्य पणुं प्राप्त थाय, चतुर्विध संघ स्थपाय, अने सर्व जीवोनो उद्धार थाय छे. (जेम ऋषभदेवादिकने)

अवतरण—पुण्यतत्त्वना ४२ भेदमां जे त्रसनुं दशक कर्युं ते त्रस वगेरे १० प्रकृतियो (भेद) कई कई ? ते आ गाथामां गणावे छे.

॥ मूळ गाथा १७ मी. ॥

तस बायर पज्जत्तं, पत्तेय थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

त्रसबादरपर्याप्तं, प्रत्येकं स्थिरं शुभं च सुभगं च ।
सुस्वरादेययशस्त्रसादिदशकमिदं भवति ॥ १७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

तस—त्रसनामकर्म	पत्तेय—प्रत्येक नामकर्म
बायर—बादरनामकर्म	थिरं—स्थिर नामकर्म
पज्जत्तं—पर्याप्तनामकर्म	सुभं—शुभ नामकर्म

प्रश्न—जेम देवायु-नरायु नी साथे तेनी गति-आनुपूर्वीओ पुण्यप्रकृतिमां गणी छे तेम तिर्यंचायुनी साथे तेनी गति-आनुपूर्वी केम गणतरीमां लीधी नथी ?

उत्तर—जे विशुद्ध अध्यवसाये बंधाय अने शुभ रस पणे भोगवाय तेज पुण्य प्रकृति गणाय छे अने संक्लिष्ट अध्यवसाये बंधाय ते पाप प्रकृति गणाय छे जे माटे शतकादि प्रकरणोमां कह्युं छे के-बायालेपि पसत्था, विसोहिगुणमुक्कडस्स जीयस्स बायालीसमपसत्था इय उक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥ १ ॥ " वळी आयुष्यकर्म भिन्न छे अने नामकर्मना उत्तर भेदरूप गति आनुपूर्वीकर्मो भिन्न छे माटे तेना बन्धकारणो पण भिन्न भिन्न छे

च-वळी
सुभगं-सौभाग्य नामकर्म | जसं-यश नामकर्म
सुस्सर-सुस्वर नामकर्म | तसाइ-त्रस विगेरे
आइज्ज-आदेय नामकर्म | दसगं-१० भेद
| इमं-ए प्रमाणे होइ-छे.

गाथार्थः—त्रसनाम०-बादरनाम०-पर्याप्तनाम०-प्रत्येकनाम०-स्थिरनाम०-शुभनाम०-सौभाग्यनाम०-सुस्वरनामकर्म-आदेयनाम०-अने यशनाम०-ए प्रमाणे त्रस वगेरे १० प्रकृतियो-भेद छे.

विस्तरार्थः—त्रसदशक एटले त्रस नाम कर्म विगेरे १० प्रकृति ते त्रसदशक कहेवाय. ते आ प्रमाणे—

१ त्रस—जे कर्मना उदयथी जीवने त्रसपणुं (एक स्थानथी बीजे स्थाने जवानी शक्ति) प्राप्त थाय ते अहिं वायु अने अग्नि ए बे स्थावर छतां पण गतिक्रियावाळा छे परन्तु तेओनी गतिक्रिया प्राप्त-भय अने अनिष्टपणाना कारणथी नथी माटे शास्त्रविकरीते गतित्रस कहेवाय पण लब्धि (-नामकर्मना उदयथी) त्रस नहिं

बादर—जे कर्मना उदयथी जीवने स्थूल शरीर (इन्द्रियगोचर थइ शके तेवुं शरीर) प्राप्त थाय ते. अहिं एक पृथिवीकायादि जीवनुं शरीर इन्द्रियगोचर थतुं नथी तो पण अनेक पृथिवीकाय-जीवोना शरीर एकठां थये दृष्टिगोचर थाय छे माटे एक पृथिवीकायादिकनुं शरीर पण बादर कहेवाय.

३ पर्याप्त—जे कर्मना उदयथी जीव स्वयोग्य पर्याप्तियो पूर्ण करीने मरण पामे ते.

४ प्रत्येक—जे कर्मना उदयथी एकेक जीव एक शरीरवाळा होय ते (अथवा एक शरीर एकज जीवने प्राप्त थाय ते)

५ स्थिर—जे कर्मना उदयथी जीवने शरीरना दांत-हाडकां अवयवोने स्थिरतानी प्राप्ति थाय ते—

६ शुभ—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो नाभि उपरनो भाग परने स्पर्श थतां प्रीति उपजावनार थाय ते.

७ सौभाग्य–जे कर्मना उदयथी कंइ पण उपकार कर्या विना पण जीव लोकने प्रीति उपजावनार होय ते.

८ सुस्वर–जे कर्मना उदयथी जीवनो कंठ-अवाज मधुर होय ते.

९ आदेय—जे कर्मना उदयथी जीवनुं वचन अयुक्त अने गांडु घेलुं होय तो पण लोक तेना पर बहु आदर भाव राखे अने इश्वरना वचन सरखुं माने ते.

१० यश—जे कर्मना उदयथी अवळां काम करे तो पण लोकमां तेनी कीर्त्तिज गवाय ते.

ए प्रमाणे [1] ४२ प्रकारे पुण्य उदयमां आवे छे, माटे पुण्यतत्त्वना उदयने आश्रयी ४२ भेद गण्या छे.

॥ इति तृतीयपुण्यतत्त्वविस्तरार्थः समाप्तः ॥

॥ पुण्यतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

आ पुण्यतत्त्वना ४२ भेदमांथी नरकादि चार गतिमां कया कया भेद होय ते कहेवाय छे—

१ नरकगतिमां—[2] शातावेदनीय पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियनामकर्म, तैजसनामकर्म, कार्मणनामकर्म, वैक्रियउपांगनामकर्म, [3] वर्णादि४

---

१ तत्त्वार्थकारने मते सम्यक्त्वमोहनीय १ हास्य २ रति ३ पुरुषवेद ४ ए चार मोहनीयकर्मनी प्रकृतिओ पण पुण्यमां ग्रहण करी छे.

२ जिनेश्वरोना जन्मकल्याणकादि प्रसंगे होय.

३ (जो के नारक जीवोनां शरीर स्थूलदृष्टिए कृष्णवर्णादि अशुभ वर्णचतुष्क वाळां छे तोपण सूक्ष्मदृष्टिए ए शरीरोमां अल्पांशे शुभ वर्णचतुष्क पण छे.)

पराघात, उच्छ्‌वास, निर्माण, त्रस, बादर, पर्याप्त,
स्थिर, अने शुभनामकर्म, ए २० पुण्यभेद नारक जी-
वोने होय.

तिर्यचगतिमां—मनुष्यत्रिक, देवत्रिक, अने आहारक-
द्विक जिननाम ए ९ विना शेष ३३ पुण्यभेद तिर्यचने होय.

मनुष्यगतिमां—देवत्रिक, तिर्यचनुं आयुष्य अने आ-
तप विना शेष ३७ पुण्यभेद मनुष्यने होय.

देवगतिमां—मनुष्यत्रिक, तिर्यगायु, औदारिकद्विक,
आहारकद्विक अने जिननाम ए १० विना शेष ३२ पु-
ण्यभेद देवगतिमां होय.

एकेन्द्रियने—शातावेदनीय, औदारिकअंग, तैजस, का-
र्मणअंग, वर्णादि ४, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्‌वास,
उद्योत, निर्माण, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ,
तिर्यगायु ए २२ पुण्यभेद एकेन्द्रिय जीवोने होय.

द्वीन्द्रियने—शातावेदनीय, औदारिकद्विक, तैजस, कार्मण,
वर्णादि ४, अगुरुलघु, पराघात, उच्छ्‌वास, उद्योत, निर्माण, ति-
र्यगायु, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, त्रस, ए २२ पुण्यभेद.

त्रीन्द्रियने—द्वीन्द्रियवत् २२

चतुरिन्द्रियने—

पंचेन्द्रियने—आतपविना ४१ पुण्यभेद होय.

॥ इति पुण्यतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

१४ पूर्वधर लब्धिवंत साधुनेज होय ?
आहार पर्याप्तपृथ्वीकायने ज होय.
बादरपर्याप्तलब्धिवाला वायुकायनी अपेक्षाए,
बादरपर्याप्त केटलाक पृथ्वीकायनी अपेक्षाए.

रागो ते प्रशस्त राग पुण्यबंधनुं कारण, अने स्त्री धन कुटुंब इत्यादि संसारपर रागभाव राखवो ते अप्रशस्त राग पापबंधनुं कारण अने धीरे धीरे राग दशानो त्याग करवो ते मोक्षनुं कारण छे. परन्तु प्रथम प्रशस्तरागथी अप्रशस्तरागनो नाश करवो अने त्यारबाद प्रशस्त राग धीरे धीरे स्वाभाविक रीतेज ओछो थता जाय छे. ए अनुक्रम छे. तेवीज रीते प्रशस्तक्रोध पहेले थई अने धर्मनां कारणोनो विनाश करनार उपर जे क्रोधादि थाय ते प्रशस्त क्रोध. अने पोतानुं अनिष्ट करनार उपर क्रोध द्वेष थाय ते अप्रशस्त क्रोधादि इत्यादि रीते सूक्ष्म बुद्धिए विचारतां जे जे [1] मोक्षाभिमुखी कारणो होय तेज विचारी पुण्य पापनो बन्ध विचारवो. ए संबंधि अधिक वर्णन जाणवुं होय तो श्री अर्थदीपिका ग्रंथथी जाणवुं.

हवे पूर्वोक्त १८ प्रकारे बंधातुं पाप जीवोने ८२ प्रकारे उदय आवे छे. ते आ प्रमाणे—

१ मतिज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोथी थतुं जे अर्थोनुं अभिमुख ज्ञान ते मतिज्ञान, अने ते ज्ञाननुं आच्छादन करनार जे कर्म ते मतिज्ञानावरण.

२ श्रुतज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोथी थतुं जे अर्थोनुं अभिलाप्य ज्ञान ते श्रुतज्ञान, अथवा द्वादशांगीरूप जे शास्त्र ते श्रुतज्ञान. अने तेने आवरनार जे कर्म ते श्रुतज्ञानावरण.

[1] [illegible]

३ अवधिज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहाय विना साक्षात् रूपीपदार्थनुं जे ज्ञान ते अवधिज्ञान तेनुं आवरण.

४ मनःपर्यायज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहायवि-ना मनपणे परिणमेला पुद्गलोनुं (अथवा संज्ञीपंचेन्द्रियना मनोभा-वनुं जे ज्ञान ते मनःपर्याय अथवा मनः पर्यवज्ञान तेनुं आवरण.

५ केवलज्ञानावरण—मन अने इन्द्रियोनी सहायविना सर्वपदार्थनुं साक्षात् ज्ञान ते केवलज्ञान तेनुं आवरण.

६ दानान्तराय—जे कर्मना उदयथी भाव अने सामग्री छ-तां पण दान न दइ शकाय ते.

७ लाभान्तराय—जे कर्मना उदयथी वस्तुनो लाभ न मळे ते.

८ भोगान्तराय—जे कर्मना उदयथी भोग्य एटले एकवा-र भोगववा योग्य वस्तु (आहारादि) न भोगवी शकाय ते.

९ उपभोगान्तराय—जे कर्मना उदयथी उपभोग एटले वारंवार भोगववायोग्य वस्तु (स्त्री-आभूषण वगेरे) न भोगवी श-काय ते.

१० वीर्यान्तराय—जे कर्मना उदयथी बळ हीण थाय ते.

ए प्रमाणे ५ ज्ञानावरण अने पांच अन्तराय मळी १० भेद कह्या. पुनः आठ कर्मना अनुक्रममां एटले ज्ञाना० कर्म बाद बीजुं जे दर्श-ना० कर्म तेना ९ भेद पण पापना उदय रूप छे ते आ प्रमाणे—

११ चक्षुदर्शना०—जे कर्मना उदयथी चक्षुवडे देखी शकाय नहि ते.

१२ अचक्षुदर्शना०—जे कर्मना उदयथी चक्षु सिवायनी जी इन्द्रियोवडे पदार्थनुं सामान्य ज्ञान न थइ शके ते.

१३ अवधिदर्शना०—जे कर्मना उदयथी रूपी पदार्थनो क्षात् सामान्य बोध न थाय ते.

१४ केवलदर्शना०—जे कर्मना उदयथी साक्षात्पणे सर्व

पदार्थनो बोध न थइ शके ते. (अहिं सर्वत्र ज्ञान एटले विशेष उपयोग, अने दर्शन एटले सामान्य उपयोग एवो अर्थ जाणवो.)

१५ निद्रा—जे कर्मना उदयथी सुखे (एक शब्दमात्रथी) जागी शकाय तेवी अल्प पण निद्रा आवे ते. (पाप रूप ज छे)

१६ निद्रानिद्रा—जे कर्मना उदयथी घणीवार ढंढोळो त्यारे जागे तेवी गाढनिद्रा आवे ते.

१७ प्रचला—जे कर्मना उदयथी बेठां बेठां अथवा उभां उभां ऊंघ आवे ते

१८ प्रचलाप्रचला—जे कर्मना उदयथी चालतां चालतां ऊंघ आवे ते (जेमके घोडा वगेरेने).

१९ थीणद्धी—जे कर्मना उदयथी दिवसनुं चिंतवेलुं कार्य रात्रे ऊंघमां ज करे ते. (आ निद्रावाळो जीव ऊंघमांथी ऊंघमां जागता माणसनी पेठे घरमां फरे-हरे-बजारमां जइ वस्तुओनुं लेवडदेवड करे-वनमां जइ वनपशुओथी युद्ध पण करे-हाथीना दंतुशळ प-ण काढी लावे, इत्यादि सर्व कार्य जागवानी पेठेज करे, वळी ए निद्रावाळो जो प्रथमसंघयणी होय तो ऊंघमां वासुदेवथी अर्धा-बळ जेटलुं बळ होय, अने शेष जीवोने जाग्रत अवस्थाना बळथी त्रणगणुं मात्र आठगणुं बळ होय). ए पांचे निद्रा आत्मानी दर्शनशक्तिने रोकवा आवे छे माटे दर्शनावरणमां गणाय छे नहिंतर आत्माने तो सुख-रूप ज अनुभवाय छे. ए ९ भेद दर्शनावरणना कह्या.

२० नीचगोत्र—जे कर्मना उदयथी हीन कुल-जाति-कु-ळ-इत्यादि प्राप्त थाय ते.

२१ असातावेदनीय—जे कर्मना उदयथी जीवने दुःख अनुभव प्राप्त थाय ते

२२ मिथ्यात्व—जे कर्मना उदयथी जीव सत्यपदार्थने अस-

ी अने असत्य ने सत्यरूप जाणे तेवी विपरीत श्रद्धा ते·
ी ३२—(आगळनी थावरसुहुमअपज्जं गाथामां
कनो अर्थ कहेवाशे ते जाणवो)

नरकगति—जे कर्मना उदयथी नारकीपणुं प्राप्त थाय ते
रकानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी वक्रगतिए नरके जता
तिश्रेण तरफ वळवुं थाय ते.

रकायुष्य—जे कर्मना उदयथी नरकनुं आयुष्य प्राप्त·

थी ३९ अनंतानुबंधि क्रोध-मान-माया-लोभ-जे
उदयथी अनन्त संसार बंधाय सम्यक्त्व रोकाय, अने
प्राप्त थाय अने आखी जींदगी सुधी टके, तथा अ-
ण साथे आवे एवो होय ते.

थी ४३ अप्रत्याख्यानी क्रोध-मान-माया-लो-
तिथादिकवडे स्हेज पण प्रत्याख्यान (त्याग वृत्ति) न·
ावरिरतिचा० रोकाय, अने तिर्यचगति प्राप्त थाय अने
ी रहेनारो होय ते,

थी ४७ प्रत्याख्यानी क्रो०-मा०-मा०-लो०—जे
ई सर्व सावद्यव्यापारनो त्याग न थइ शके (पण लेश
ले होय), सर्वविरतिचारित्रने रोके, अने मनुष्यग-
थाय अने ४ मास रहेनार होय ते,

थी ५१ संज्वलन क्रो०-मा०-मा०-लो०—जे क्रो·
महात्यागी वैरागी महात्माओ पण शब्दादि इष्ट अ-
यो पामीने कंइक रुचि अरुचिभाव धारण करनारा
आ कषाय चारित्रमां अतिचार–दूषण लगाडे माटे संपूर्ण
ाख्यात चारित्र ने रोकनार, अने देवगति आपनार छे

अने १५ दिवस सुधी रहेनार होय छे.

ए कषायोनो व्युत्पत्त्यर्थ आ प्रमाणे—अनंत-अनंत संसार अनुबंधी-बांधवा (उपार्जन करवा) वाळो ते अनंतानुबंधि तथा अ एटले नथी प्रत्याख्यान-पच्चक्खाण (त्यागवृत्ति) नुं देश जेमां ते अप्रत्याख्यानी. तथा प्रत्याख्यान एटले सर्वविरति पच्चक्खाणने आवरण रोकनार ते प्रत्याख्यानावरण कहेवाय तथा सं-समस्त प्रकारे (अति अल्प) ज्वलन-जाज्वल्यमान थनारो ते संज्वलन. तथा क्रोध-रोष, इर्षा-गुस्सो. मान-अभिमान. माया-छळ-प्रपंच-कपट. लोभ-तृष्णा, अधिकनी इच्छा. पुनः ए कषायोनी जे जावजीव-एकवर्ष इत्यादि स्थिति कही ते व्यवहारथी बहुलदृष्टिए जाणवी, अन्यथा अनन्तानुबंध्यादि हीनाधिक स्थितिवाळा (अन्तर्मु० प्रमाण पण) होय.

ए १६ कषाय कहेवाय अने कषायनी साथेज रहेनारा अथवा कषायने उत्पन्न करावामां कारणरूप होवाथी बीजा ९ नोकषाय (नो-देशथी अथवा कारणरूप जे कषाय ते नोकषाय) छे तेनां नाम तथा अर्थ आ प्रमाणे—

५२ हास्य—जे कर्मना उदयथी जीवने हर्ष थाय अथवा हास्य आवे ते.

५३ रति—जे कर्मना उदयथी जीव इष्टविषयमां खुश थाय ते.

५४ शोक—जे कर्मना उदयथी जीवने दीलगीरी थाय ते.

५५ अरति—जे कर्मना उदयथी जीव अनिष्ट विषयमां दुःख माने ते.

५६ भय—जे कर्मना उदयथी जीव भय पामे-बीकण थाय ते.

५७ जुगुप्सा—जे कर्मना उदयथी जीवने बीभत्स वस्तुओ देखी तिरस्कार उपजे ते.

५८ पुरुषवेद—जे कर्मना उदयथी जीवने स्त्रीसंगमनो अ-भिलाष उपजे ते.

५९ स्त्रीवेद—जे कर्मना उदयथी पुरुषसंगमनो अभिलाष थाय ते.

६० नपुंसकवेद—जे कर्मना उदयथी स्त्री अने पुरुष बन्ने-ना संगमनो अभिलाष थाय ते. ए ९ नोकषाय कह्या.

६१ तिर्यंचगति—जे कर्मना उदयथी तिर्यंचपणु प्राप्त थाय ते.

६२ तिर्यंचानुपूर्वी—जे कर्मना उदयथी वक्रगतिए ति-र्यंचमां जता जीवने उत्पत्तिक्षेत्र तरफ वळवुं थाय ते.

अहिं तिर्यंचजीवने तिर्यंचपणुं इष्ट नथी माटे तिर्यंचनी गति अने आनुपूर्वी पापरूप गणाय, अने तिर्यंचपणुं प्राप्त थया बाद तिर्यंचजीवो आयुष्य दीर्घ-लांबु होय तो इष्ट माने छे माटे तिर्यंचनुं आयुष्य पुन्यरूप छे.

—(०)—

अवतरण—पूर्वगाथामां पापतत्त्वना (८२ मांथी) ६२ भेद गणाव्या अने हवे आ गाथामां बाकी रहेला २० भेद गणावे

॥ मूल गाथा १९ मी. ॥

[illegible]गतिगतिचउ जाईओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स
[illegible]पसत्थं वन्नचउ, अपढमसंघयणसंठाणा ॥१९॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

[illegible]कद्वित्रिचतुर्जातयः, कुखगतिरुपघातो भवन्ति पापस्य ।
[illegible]प्रशस्तं वर्णचतुष्क-मप्रथमसंहननसंस्थानानि ॥१९॥

शब्दार्थः

[illegible]-एकेन्द्रिय
[illegible]द्वीन्द्रिय

ति-त्रीन्द्रिय
चउ-चतुरिन्द्रिय

जाइओ-ए चार जातिओ
कुखगइ-अशुभविहायोगति
उवघाय-उपघात नामकर्म
हुंति-छे
पावस्स-पापतत्त्वना (भेद)
अपसत्थं-अशुभ
वन्नचउ-वर्णचतुष्क (वर्ण-गंध-रस-ने स्पर्श)
अपढम-पहेला सिवायनां पांच
संघयण-संघयण (हाडना सांधानुं बंधारण.)
संठाणा-संस्थान (लक्षणवाळो आकार)

गाथार्थः-एकेन्द्रियजाति-द्वीन्द्रियजाति-त्रीन्द्रियजाति-अने चतुरिन्द्रियजाति ए चार जाति-अशुभविहायोगति—उपघात नामकर्म-अशुभवर्णादि चार-अने पहेला सिवायनां पांच संघयण अने पांच संस्थान ए सर्व (पूर्वोक्त सहित ८२) भेद पापतत्त्वना छे.

विस्तरार्थः—पापतत्त्वना ८२ भेदमांथी ६२ भेद कह्या अने २० भेद बाकी रह्या छे ते आ प्रमाणे—

६३ एकेन्द्रिय जाति—जे कर्मना उदयथी जीवने एकेन्द्रियपणुं प्राप्त थाय ते (अहिं एकेन्द्रियने मात्र स्पर्शेन्द्रियज प्राप्त थाय)

६४ द्वीन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी जीवने बे इन्द्रियपणुं (स्पर्श-ने रसना) प्राप्त थाय ते.

६५ त्रीन्द्रियजाति—जे कर्मना उदयथी जीवने त्रीन्द्रियपणुं (स्पर्शन-रसनाने घ्राण) प्राप्त थाय ते.

६६ चतुरिन्द्रिय जाति—जे कर्मना उदयथी जीवने चतुरिन्द्रिय पणुं (स्पर्शन-रसना-घ्राण-ने चक्षु) प्राप्त थाय ते.

६७ अशुभविहायोगति—जे कर्मना उदयथी ऊंट अने गर्दभ सरखी अशुभ चाल प्राप्त थाय ते.

६८ उपघात—जे कर्मना उदयथी जीव पोताना [illegible]

हजीभी–चोरदांत वगेरे अवयवोथी पोतेज पीडा पामे ते.

६९ अशुभवर्ण—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो लीलो अने कालो वर्ण होय ते (जेम मयूर–पोपट अने कागने)

७० अशुभगंध—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर दुर्गंधवाळुं होय ते जेम के लसण हुंगळी विगेरे.

७१ अशुभरस—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर तीखा अने कडवा रसवाळु होय ते (जेमके मरचां कारेलांने.)

७२ अशुभस्पर्श—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर शीत –कर्कश–रुक्ष–अने गुरुस्पर्शवाळु होय [जेमके जळ–सागनां पान –रेती अने पारो वगेरे जीवने.)

७३ ऋषभनाराचसंघयण—जे कर्मना उदयथी जीवने ऋषभनाराच संघयण प्राप्त थाय ते (आ संघयण पूर्वे कह्या प्रमाणे वज्रऋ० ना० सरखुं होय पण मात्र खीली न होय. पुनः केटलाएक आचार्य अहिं वज्रनाराचसंघयण कहे छे के जे पाटा रहित पण खीली अने मर्कटबंध सहित होय छे एम श्री 'द्रव्यलोकप्रकाशमां' कह्युं छे.

७४ नाराच संघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा मात्र मर्कटबंधवाळा होय ते.

७५ अर्धनाराचसंघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा एक बाजु मर्कटबंध अने बीजी बाजु खीलीवाळा होय ते.

७६ कीलिकासंघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना सांधा फक्त खीलीथीज दृढ थयेला होय ते

७७ सेवार्त (छेदस्पृष्ट) संघयण—जे कर्मना उदयथी हाडकांना बे छेडा उखलमां रहेला मुशलनी पेठे स्पर्शसंबन्धवाळा होय ते. अहिं एक हाडकानो छेडो खोभणवाळो (उखलवत् रहे-

ज उंचो) होय छे. तेमां बीजो छेडो मुशलनी पेठे बेठेलो होय छे.) ए पांचे संघयण अशुभ पाप रूप छे.

७८ न्यग्रोध संस्थान—जे कर्मना उदयथी जीवना शरीरनो नाभिथी उपलो भाग लक्षणयुक्त होय अने नाभिथी नीचेनो भाग लक्षण रहित होय ते. (न्यग्रोध एटले वड सरखुं आ संस्थान छे.)

७९ सादि—जे कर्मना उदयथी जीवनुं शरीर नाभिथी नीचेना भागमां शुभ लक्षणवाळु होय अने नाभिथी उपरनुं अपलक्षणवाळु होय ते. (आ संस्थानने केटलाक आचार्य साची–शाल्मली वृक्ष सरखुं पण कहे छे.)

८० वामन—जे कर्मना उदयथी जीवनां मस्तक-डोक-हाथ अने पग ए चार अंग सुलक्षण युक्त होय अने शेष सर्व अवयव अपलक्षणवाळां होय ते.

८१ कुब्ज—जे कर्मना उदयथी शरीरना मस्तक-डोक-हाथ-अने पग ए चार अवयव अपलक्षण वाळा होय अने शेष अवयव सुलक्षण होय ते. ए पांच अशुभ संस्थान कह्यां.

ए प्रमाणे पुन्यतत्त्वनी ४२ प्रकृति अने पाप कर्मनी ८२ प्रकृतिमां ५ ज्ञाना० नी–९ दर्शना० नी–२ वेदनीयनी–२ गोत्रनी –४ आयुष्यनी–मिथ्यात्व अने २५ कषाय ए २६ मोहनीयनी–५ अन्तरायनी–अने शेष वर्णचतुष्क बे वार छे तेने एकवार गणतां ६७ प्रकृति नामकर्मनी जाणवी.

अवतरण—आ पाप तत्त्वमां जे स्थावरदशक कह्युं ते स्थावर वगेरे १० भेद कया कया ते गणावे छे

॥ मूळ गाथा २० मी. ॥

थावर सुहुम अपज्जं, साहारण मथिरमसुभदुभगानि ।
दुस्सरणाइज्ज जसं, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥ २० ॥

॥ स्थावरदशकनो अर्थः ॥

१ स्थावर—जे कर्मना उदयथी जीवने स्थावरपणुं प्राप्त
र,टाढ तडको इत्यादि सुखदुःख हिताहितनुं गमेतेवुं कारण पडे
पण ते एकथी बीजे स्थानके जइ शके नही तेवा पृथ्वी आदि
य सूक्ष्म बादर एकेन्द्रियोने होय. तेउकाय अने वायुकाय
गतिस्वभाववाला होवाथी गति करे छे. पण ते संज्ञा पूर्वक

२ सूक्ष्म—जे कर्मना उदयथी जीवने सूक्ष्मपणुं प्रा
असंख्य वा अनन्त जीवो मल्या छतां पण ते चर्मच
थाय नही असंख्य जीवोना असंख्य शरीरो या अनन्त
असंख्य शरीरो एकठा थया छतां पण देखाय नही कारण
त लोकमां त्रस नाडीनी अंदर अथवा बहार एवो एक
काशप्रदेश नथी के ज्यां ते सूक्ष्म जीवो न होय सूक्ष्म
दयवाला पृथ्व्यादि पांच छे. तेमां वनस्पति ते सूक्ष्म
जाणवी बादर पृथ्व्यादि पण एक बे यावत् असंख्य
चर थता नथी छतां पण तेने सूक्ष्मनाम कर्मोदय नथ

३ अपर्याप्त-जे कर्मना उदयथी जीव स्वयो
पूर्ण कर्या विनाज मरण पामे जोके आहार-शरीर
पर्याप्तिओ तो तमाम जीवो पूर्ण करेछे छतां पण
(एकेन्द्रिय४द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय असंज्ञि पं
ज्ञिपंचेन्द्रिय६) पोतपोतानी पर्याप्तिने पूरी करी
र्याप्तानाना लब्धि करण भेदो छे.जेनो विचार पूर्व
प्तिविचार करेल छे. परन्तु अही लब्धि अपर्या

४ साधारण—जे कर्मना उदयथी
जीवो रहे छे. अने तेओनी उच्छ्वास निःश्वा

गेरे क्रिया समानरीते थाय छे ते कर्मनो उदय प्रत्येक वनस्
वर्जिने साधारणवनस्पतिजीवोने होय ते साधारण सूक्ष्म १ बा
२९ मने भेद छे.साधारण-निगोद-अनन्तकाय-ए सर्व एकार्थक
साधारण (निगोद) एटले अनन्तजीवोनुं एक शरीर-तेवी अ
ख्य निगोदो एक गोळामां होयछे.अने तेवा असंख्य गोळाओ चं
दराज लोकमां छे देखाती कन्द जाति विगेरे बादर निगो
(अनन्तकायो) छे.

५ अस्थिर—जे कर्मना उदयथी जीवोना शरीरना जीभ
मडी विगेरे अवयवोमां अस्थिर पणुं प्राप्त थाय

६ अशुभ—जे कर्मना उदयथी नाभिनी निचेना शरीरने
भाग अशुभ कहेवाय छे के पग विगेरे बीजाने अडवाथी अप्री
ति थाय छे. गुरु आदिना चरण या चरणनी रज जे भक्त जीवो
प्रेमथी स्पर्शे छे ते गुरु आदि मन्येना बहुमान विगेरेथी छे.

७ दुर्भग—जे कर्मना उदयथी माणस जीवाने वहालो लागे
नहि तीर्थंकर भगवान् जे भारेकर्मीजीवोने प्रिय लागता नथी तेम
मां ते जीवोना पापकर्मनो उदय जाणवो,

८ दुःस्वर—जे कर्मना उदयथी जीवनो स्वर अप्रिय कर्णकटु
लागे खर उष्ट्रादिकनीपेठेर होय.

९ अनादेय—जे कर्मनाउदयथी जीवहितकारी बोलतांछतां
पण कोइने ग्राह्य थाय नहि तीर्थंकर प्रभुनीवाणी आदेयवाळाणी
छतां अभव्य पापीष्टीजीवोने तेवोना मानी पापकर्मना उदयथी
वहाली लागे नहि

१० अयश—जे कर्मना उदयथी सारुं कार्य करतां छतां पण
यश कीर्ति मळे नहि.

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तं साधारणमस्थिरमशुभदुर्भाग्ये ।
दुःस्वरानादेयायशः, स्थावरदशकं विपर्ययार्थम् ॥ २० ॥

॥ शब्दार्थः ॥

थावर–स्थावर नामकर्म.
सुहुम–सूक्ष्म नामकर्म.
अपज्जं–अपर्याप्त नामकर्म.
साहारणं–साधारण नामकर्म
अथिरं–अस्थिर नामकर्म.
असुभ–अशुभ नामकर्म.
दुभगाणि–दुर्भाग्य नामकर्म.

दुस्सर–दुःस्वर नामकर्म
अणाइज्ज–अनादेय नामकर्म
अजसं–अयश नामकर्म.
थावरदसगं–ए स्थावर विगेरे १० कर्म.
विवज्जत्थं–विपरीत अर्थवाळुं छे

गाथार्थः—स्थावर नाम०, सूक्ष्मनाम०, अपर्याप्तनाम०, साधारणनाम०, अस्थिरनाम०, अशुभनाम०, दुर्भाग्यनाम०, दुःस्वरनाम०, अनादेयनाम०, अने अयशनाम०, ए स्थावरदशक कहे-वाय अने ते (त्रसदशकथी) विपरीत अर्थवाळुं छे,

...विस्तरार्थः—ए स्थावर विगेरे १० कर्मना समुदायने स्था-वरदशक कहेवामां आवे छे, स्थावरपंचक स्थावरछक इत्यादि ...वुं होय तो स्थावर विगेरे (प्रथमथी) पांच अने ६ विगेरे ग-...य छे, प्रकृतिओ टुंकी रीते गणवा माटे ए दशक इत्यादि संज्ञा...ा छे, तेथी अनुक्रमे तेटलीज संख्यावाळी प्रकृतिओ ग्रहण करा... ए १० कर्मना अर्थ पूर्व गाथामां कहेवायो छे,

॥ पापतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

चार गति अने पांच इन्द्रियवाळा जीवोनां ... जे... केटली पाप प्रकृतिओ (नो उदय) होय ते कहेवाय छे.
देवगतिमां ...

नरकत्रिक-नपुंसकवेद-तिर्यंचगति-तिर्यंचानुपूर्वी-एकेन्द्रियादि जाति-६ संघयण अशुभ, ५ अशुभ संस्थान, अशुभविहायो दुःस्वर अने नीचगोत्र ए२७पाप प्रकृति विना शेष५५प्रकृति अने जो स्त्यानर्धित्रिक वर्जे तो ५२ पाप प्रकृतिओ होय.

नरकगतिमां ५८—स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण अशुभसंघयण-४ अशुभसंस्थान-एकेन्द्रियादि ४ जाति-पुरुषवे स्त्रीवेद-तिर्यंचगति-अने तिर्यंचानुपूर्वी ए २१ विना शेष पाप प्रकृतिओनो उदय होय अथवा स्त्यानर्धित्रिकनो उदय गणीए तो ५८नो उदय होय,

मनुष्यगतिमां ७०—स्थावर-सूक्ष्म-साधारण-एकेन्द्रि दि ४ जाति-तिर्यंचगति-तिर्यंचानुपूर्वी-अने नरकत्रिक ए १२ बाद शेष ७० पाप प्रकृतिओ उदयमां होय.

तिर्यंचगतिमां ७९-नरकत्रिक विना शेष७९ पाप प्रकृतिओ हो

एकेन्द्रियमां ६३-दुःस्वर-नरकत्रिक-पुरुषवेद-स्त्रीवेद-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-अशुभविहायोगति-५ अशुभसंघयण-४ हुंड विनानां अशुभसंस्थान ए १९ विना शेष ६३ पाप प्रकृतिओ हो

द्वीन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्. परन्तु द्वीन्द्रियने स्थाने एकेन्द्रिय विना " एम कहेवुं.

त्रीन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्, परन्तु त्रीन्द्रियने स्थाने एकेन्द्रिय विना " कहेवुं.

चतुरिन्द्रियमां ६३—एकेन्द्रियवत्. परन्तु चतुरिन्द्रि स्थाने " एकेन्द्रिय विना " कहेवुं.

पंचेन्द्रियमां ७५-एकेन्द्रियादि ४ अशुभजाति, सूक्ष्म, साधारण-अने स्थावर ए ७ पापप्रकृतिओ विना शेष ७५ पापप्र तिओ उदयमां होय.

॥ इति पापतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

॥ आश्रवतत्त्वम् ॥

अवतरण—आ गाथामां सामान्यथी आश्रवतत्त्वना ४२ भेद गणावे छे.

॥ मूळगाथा २१ मी. ॥

इन्दिअकसायअव्वय–जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा
किरियाओ पणवीसं–इमा उ ताओ अणुक्कमसो ॥२१॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

इन्द्रियकषायाव्रतयोगाः पञ्च चत्वारि पञ्च त्रीणि क्रमात् ।
क्रियाः पंचविंशतिः, इमास्तु ता अनुक्रमशः ॥ २१ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

इंदिअ–इन्द्रियो.
कसाय–कषाय.
अव्वय–अव्रत
जोगा–योग
पंच–पांच
चउ–चार
तिन्नि–त्रण.
कमा–अनुक्रमे
किरियाओ–क्रियाओ
पणवीसं–पचीस
इमा–आ (आगळ कहेवाशे)
उ–वळी (अथवा पादपूर्त्यर्थे)
ताओ–ते क्रियाओ
अणुक्कमसो–अनुक्रमे

गाथार्थः—अनुक्रमे ५ इन्द्रिय–४ कषाय–५अव्रत ३ योग–अने २५ क्रिया ते क्रियाओ अनुक्रमे आ प्रमाणे छे. (ए रीते ४२ भेद आश्रवतत्त्वना सामान्यथी कह्या.)

विस्तरार्थः—पूर्वे कहेला पुन्य–शुभकर्म तथा पाप–अशुभ

कर्मनुं जेनावडे आववुं थाय ते आश्रव कहेवाय. हवे ते शुभा
कर्मनुं आगमन शाथी थाय छे, ते दर्शावाय छे.

इन्द्रियनुं वर्णन प्राणसंबंधि गाथाना विवेचनमां करेलुं छे, अने
हिं तो ते इन्द्रियोथी कर्मनुं आगमन केवी रीते थाय ते कहेवाय

शीत–उष्ण–स्निग्ध–रूक्ष–मृदु–कर्कश–लघु अने गुरु ए
ठ स्पर्श स्पर्शेन्द्रियनो विषय छे. तेमां जे जे स्पर्श पोताने अनु
ळ होय ते ते स्पर्शवाळा पदार्थोनी प्राप्तिथी राजी (रागी) थ
अने प्रतिकूळ स्पर्शवाळा पदार्थोनी प्राप्तिथी नाराज (द्वेषवाळे
थाय ए प्रमाणे ज्यारे स्पर्शेन्द्रियना विषयोमां राग-द्वेषपणे आ
वर्तनो होय त्यारे कर्मनुं जे आववुं थाय ते स्पर्शेन्द्रिय सं
आश्रव गणाय

आम्ल (खाटो)-मधुर–कषायेल (तूरो)-तिक्त एटले (तीखो)
–अने कटु (कडवा] ए पांच रस रसनेन्द्रियनो विषय छे. त्यां अ
नुकूळ रसवाळा पदार्थोपर रागवाळा अने प्रतिकूळ रसवाळा पदा
पर द्वेषवाळा थवाथी कर्मनुं जे आववुं थाय ते रसनेन्द्रियाश्र
गणाय,

सुगंध अने दुर्गंध ए घ्राणेन्द्रियनो विषय छे, त्यां सुगंधी पदा
तेल फुलेल अत्तर वगेरे पामीने रागवाळो अने विष्टादि दुर्गंधवा
पदार्थ पामीने आत्मा द्वेषवाळो थवाथी कर्मनुं जे आववुं थाय
घ्राणेन्द्रियाश्रव गणाय

रक्त (लाल)–पीत (पीळो)–श्वेत (धोळो)–नीलो अने
काळो ए पांच वर्ण (रूप तथा आकार) ए चक्षु इन्द्रियनो वि
षय छे, त्यां मनोहर रंग रूप ने आकारवाळा पदार्थो पर राग भाव अने
अमनोहर रंग रूप ने आकार वाळा पदार्थोपर द्वेष भाव धरवाथी
कर्मनुं आववुं थाय ते चक्षुरिन्द्रियाश्रव गणाय, माटे ज नाटक–

ल-तमासा जोवाथी कर्मबंध थाय छे.

सचित्त शब्द-अचित्त शब्द-अने मिश्र शब्द ए त्रण प्रकारनो शब्द श्रोत्रेन्द्रियनो विषय छे त्यां जीवनुं गान तान वगेरे सचित्त शब्द फोनोग्राफ वगेरेना अवाज अचित्त शब्द अने मृदंगादिकना शब्द ते जीवप्रयत्ननिमित्त होवाथी मिश्रशब्द कहेवाय, ए त्रणे प्रकारना मनोहर शब्दो उपर राग अने अमनोहर शब्दो उपर द्वेषभाव थवाथी कर्मनुं जे आगमन थाय ते श्रोत्रेन्द्रियाश्रव गणाय

ए प्रमाणे ५ इन्द्रियोना २३ विषयो प्रशस्तभावे सेवाता होय तो पुन्य(शुभाश्रव)अने अप्रशस्तभावे सेवाता होय तो पाप (अशुभाश्रव)होय छे. जेम के देवगुरुने स्पर्श करी राजी थतां देवगुरुना चरणामृतनुं पान करतां, भगवाननुं रूप-प्रतिमा- आंगी वगेरे जोइने राजी थतां अने भगवानना गुणग्राम-स्तवन स्वाध्यायादि सांभळी राजी थतां अनुक्रमे पांचे इन्द्रियोद्वारा शुभाश्रव थाय ते प्रशस्त भावे कहेवाय, अने स्त्री पुत्रादिकने प्रेमथी स्पर्श करतां देहपुष्टिने माटे मनोहर रसवती (भोजन) जमतां इत्यादि रीते अप्रशस्त भावे पांच इन्द्रियोना विषय सेवनथी अनुक्रमे पांचे इन्द्रियोद्वारा पाप-अशुभाश्रव थाय.

ए पांच इन्द्रियना अनुकूळ अने प्रतिकूळ विषयो प्राप्त थतां विचार करे के हे आत्मा ! आ सर्व पुद्गलनो स्वभाव छे तो त्हारे एमां राजी थवाथी अथवा नाराज थवाथी शुं लाभ छे! इत्यादि भावनापूर्वक जो राजी पण न थाय अने नाराज पण न थाय तो ते जीवने पांच इन्द्रियो संबंधि कर्मनुं आववुं थाय नहिं पण कर्म रोकाणज थाय.

॥ ४ कषाय ॥

क्रोध-मान-माया-ने लोभ ए चार कषाय छे. त्यां क्रोध ए

गुस्सो–खेद–अने इर्षा, मान एटले मद अथवा अहंकार अथवा अभिमान, माया एटले कपट, अने लोभ एटले तृष्णा अथवा अधिक इच्छा. ए चार कषायमां—क्रोध अने मान द्वेष कहेवाय छे, अने माया तथा लोभ रागमां गणाय छे, पुनः केटलाक आचार्य क्रोधनेज द्वेषमां गणी शेष त्रणने रागमां गणे छे, अहिं चार कषाय प्रकर्या छे, तो पण अनन्तानुबन्धि–अप्रत्याख्यानी–प्रत्याख्यानी अने सञ्ज्वलन एनाल एकेकना भेद होवाथी १६ कषाय गणाय छे. एक अनंतानुबंधी वगेर भेद पण स्वजातीय ४-४-भेदवाळा होवाथी ६४ कषाय पण गणाय छे प्रमाणे १६ प्रकारनो क्रोध–१६ प्रकारनो मान–१६ प्रकारनी माया–अने १६ प्रकारनो लोभ थाय छे, तेमां १६ प्रकारनो क्रोध नीचे प्रमाणे गणवो,

१ अनं० अनं० क्रोध	९ अनं० प्रत्या० क्रोध
२ अप्र० अनं० क्रोध	१० अप्र० प्रत्या० क्रोध
३ प्रत्या० अनं० क्रोध	११ प्रत्या० प्रत्या० क्रोध
४ सं० अनं० क्रोध	१२ संज्व० प्रत्या० क्रोध
५ अनं० अप्र० क्रोध	१३ अनं० संज्व० क्रोध
६ अप्र० अप्र० क्रोध	१४ अप्र० संज्व० क्रोध
७ प्रत्या० अप्र० क्रोध	१५ प्रत्या० संज्व० क्रोध
८ संज्व० अप्र० क्रोध	१६ संज्व० संज्व० क्रोध

जे अनंतानुबंधि क्रोध पोताना स्वरूपवाळो (तीव्र) होय ते अनं० अनं० क्रोध कहेवाय. जे अनंतानु० क्रोध अप्रत्या० सरखो (कंइक मंद) होय ते अप्र० अनं० क्रोध कहेवाय, जे अनं० क्रोध प्रत्या० सरखो (वधारे मंद) होय ते प्रत्या० अनं० क्रोध [illegible] संज्वलन सरखो (अत्यंत मंद) होय [illegible] इत्यादि शेष भेदनो अर्थ स्वबुद्धिए [illegible]

...वारवो. ए प्रमाणे जेम क्रोध १६ प्रकारनो कह्यो तेम मान माया अने लोभना १६–१६ प्रकार पण जाणी लेवा. ए सर्व ६४ भेद ते ४ कषायमां अंतर्गत ग्रहण करवा.

ए चारे कषाय प्रशस्त भावे वर्तता होयतो शुभाश्रव, अप्रशस्तभावे वर्तता होय तो अशुभाश्रव. अने न वर्तता होय तो संवर थाय छे. जेमके देव-गुरु चतुर्विध संघ-अने शासनना विध्वंसकरनार-पर जे क्रोध थाय अथवा उन्मार्गे चालता शिष्यने सन्मार्गे चलाववा माटे क्रोध करवो पडे ते प्रशस्तक्रोध अने पोताना कुटुंब वगेरेने अने संसारवर्धक साधनोने विध्वंस करनार पर जे क्रोध थाय ते अप्रशस्त

१ अहिं पोताना पुत्रादिकने भविष्यमां सारो संसार निभावनार थाय एवी इच्छाए शिक्षण आपवामां अशुभाश्रव जाणवो, अने कांइक बोध थायतो आ संसारजाळथी छूटे एवा लक्षबिंदुथी जे धर्ममार्गनुं शिक्षण आपवामाटे ताडना तर्जनादिमां क्रोध करवो पडे ते शुभाश्रव जाणवो. तेमज संसारत्यागी गुरुमहाराज पण जो पोतानी चाकरी कराववाना हेतुथी शिष्यने संसारमांथी सटपट करी काढे तो पोताने माटे अशुभाश्रव छे,अने प्रपंच करी ;निकळनार आत्मार्थी भद्रक शिष्यने शुभाश्रव छे. माटे कोइपण कषाय जो स्वार्थबुद्धिए थाय तो ते अप्रशस्तकषाय गणाय अने आत्मधर्मनी उन्नतिमाटे अथवा शासननी उन्नति माटे थाय तो प्रशस्तकषाय गणाय, पण जो संसार उन्नतिनुं लक्ष्यबिंदु होय अथवा स्वार्थपरायणता होयतो अशुभाश्रव ज जाणवो.

पुन. आ बाबु प्रकरणमां वस्तुस्थिति दर्शावी छे. माटे कोइ ए एम न जाणवुं के प्रशस्त कषायनो प्रयत्न करवो. कारणके मोक्षमार्ग तो प्रशस्त वा अप्रशस्त कषाय टाळवाथी ज छे, परन्तु संसारमां जीवोने जे अप्र० कषाय वर्ती रह्यो छे, तेमांथी दूर थवा माटे तथा अमुक गुणस्थानकनी हदे न पहोंच्यो होय त्यां-सुधी प्रशस्तनी जरूर छे, अने त्यारबाद ते पण टाळवानुं लक्ष्यबिंदु राखवानुं होय छे.

क्रोध कहेवाय. हुं अथवा मारुं कुटुंब श्रेष्ठ छे इत्यादि विचार प्र
मान अने पोताना देव गुरु धर्मनी श्रेष्ठतानुं जे मान ते प्र
स्त मान. संसारनी वृद्धिमाटे (द्रव्य—कुटुंबादिकनी वृद्धिमाटे)
प्रपंच रचवा ते अप्र० माया अने अनेक उपाय करवा छतां
संसारमां रोकी राखे तो तेमांथी छूटी संसार त्याग करवामाटे
प्रपंच रचवा पडे ते इत्यादि मोक्षाभिमुखीपणे जे प्रपंच रचाय
प्रशस्तमाया, तथा धन कुटुंब वगेरे अधिक अधिक मेळववानो
ते अप्र०लोभ अने ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि धर्ममाटे जे अधिक अधि
लोभ ते प्रश० लोभ ए प्रमाणे प्रशस्त अथवा अप्रशस्त भाव
मार्गे तरफ दृष्टि राखी विचारवा, नहितर आ विचारमां तीव्र
मारवृद्धिनो प्रसंग आवशे

॥ ५. व्रत ॥

प्रमादना योगथी जीवोना द्रव्य प्राणनो जे विनाश कर
अर्थात् जीवहिंसा करवी ते प्राणातिपात नामनुं पहेलुं व्रत
[जोके हालतां चालतां उठतां बेसतां इत्यादि दरेक क्रिया करतां
दरेक जीवोनी [सूक्ष्मनी हिंसा थती नथी] हिंसा थाय छे, परन्तु
जीवोने प्रमादथी एटले पोतानी स्वार्थवृत्ति माटे मारवानी बुद्धि
पूर्वक हणवामां आव्या होय तो तत्त्व जीवहिंसा करी कहेवा
परन्तु आत्मामां दयापरिणाम वर्ततो होय अने ते दयापरिणाम
जयणादिक अनेक प्रकारे जीवहिंसा टाळवानो उद्यम थतो होय
तेम छतां पण मोक्षाभिमुखी क्रियाओमां जे प्रासंगिक जीवहिंसा
थाय छे तेनुं हिंसारूप फळ नहि होवाथी ते हिंसा पण अहिंसा
जाणवी,

१ प्राण—द्रव्यप्राणनो अतिपात, श्री तत्त्वार्थसूत्रमां
" प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा " एम कहेलुं छे. अने
अप्रमत्तगुणवाळा क्रिया प्रमत्तयोग नथी माटे ते क्रियाओमां थती
सांयोगिकहिंसा हिंसारूप हेतुरूप नथी.

र्थने अंगे अथवा परना अहित माटे जे सत्य अथवा असत्य
ल्वुं ते वंदे मृषावाद नामे बीजुं अव्रत छे, (अहिं अप्रिय
ने अहित वचन वदे मृषावाद छे. माटे चोरने चोर कहेवो तथा
शिकारीए पूछतां देखेलां मृगादिकनुं कहेवुं ते पण मृषावाद ज छे)
कारणके स्वार्थने अंगे संसारमां सत्य बोलतां पण अशुभाश्रव छे,

अदत्त-कोइए नहिं आपेली चीजनुं आदान-ग्रहण करवुं ते
अदत्तादान कहेवाय एमां ते वस्तुना मालिके नहिं आपेली वस्तु
स्वामिअदत्त गणाय जीवे राजी खुशीथी नहिं आपेली वस्तु जीव-
अदत्त. गुरुए आज्ञा नहिं आपेली वस्तु गुरुअदत्त अने तीर्थंकरे निषे-
धकरेली वस्तु तीर्थंकर अदत्त गणाय एमांनी कंइपण वस्तुनुं ग्रहण
करवुं ते अदत्तादान गणाय निषेध करेल वस्तुने अंगीकार करवी
विना पूछये लेवुं, राज्य वगेरेना कायदाथी विरुद्ध वर्तन करवुं
इत्यादिसर्व अदत्तादान गणाय,

अब्रह्म-एटले अनाचारनुं धर्म-सेवन करवुं ते अब्रह्मचर्य ना-
मे चोथुं अव्रत छे, ते १८ प्रकारनुं छे, वैक्रिय (देवी) अने औदा-
रिक (मानुषी-अने तिर्यंची) ए बे प्रकारनी स्त्री साथे मन वचन
अने कायावडे अब्रह्म करवुं-करावvुं-अने अनुमोदवुं ए त्रण जोग
अने करणपूर्वक २×३×३=१×८ भेद थाय

तथा धन धान्य सोनुं रुपुं क्षेत्र वस्तु वासण द्विपद (दास दा-
सी) अने चतुष्पद (गाय भेंस बळद हाथी वगेरे) ए ९ प्र-
कारनी वस्तुओनो जे संग्रह ते ९ प्रकारनो परिग्रह कहेवाय ते परि-
ग्रह उपर जे ममत्वभाव ते परिग्रह नामे पांचमुं अव्रत कहेवाय ए पांचे
प्रकारनां अव्रतथी शुभाशुभ कर्मनुं आवदुं थाय छे, एमां पण प्र-
शस्ताप्रशस्तभावे शुभाशुभ कर्मनो आश्रव स्वबुद्धिए विचारवो, जेम के
धन धान्यादि संसारवर्धक वस्तुओ पर ममत्व भावथी अशुभाश्रव

अने पाटी-पुस्तक-वगेरे ज्ञानदर्शन चारित्रनां उपकरणो उपर पण मूर्छा एज ममत्वभाव ते शुभाश्रव अने अममत्वभावे संवर इत्यादि श्री अर्थदीपिकामांथी जाणवो. वळी हिंसानी बाबतमां पण शासनको द्दी-संघ धर्म वगेरेने उपद्रव करनारनो निरुपाये (विष्णुकुमारे नमुचीनो नाश कर्यो तेम) विनाश करवो पडे तो शुभाश्रव अने पोतने नडतर करनार वगेरेनो स्वार्थबुद्धिए विनाश करवो पडे तो अशुभाश्रव गणाय इत्यादि सूक्ष्मबुद्धिए विचारवुं.

॥ ३ योग ॥

मनः पर्याप्ति नामकर्मना उदयथी काययोगवडे मनोयोग्य वर्गणा लइ मनपणे [1]परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवानो जे व्यापार ते मनोयोग, तेना सत्य-असत्य-मिश्र-अने व्यवहार ए प्रमाणे चार प्रकार छे. त्यां सत्ने सत्रूपे अने असत्ने असत्रूपे चिंतववु ते सत्यमनोयोग सत्ने असत् अने असत्ने सत् चिंतववुं ते असत्यमनोयोग तथा मिश्रपणे चिंतववुं ते मिश्रमनोयोग अने जे सत्य पण नहि अने असत्यपण नहि एवुं चिंतववु ते जेम, हे देवदत्त ! घट लाव, तुं जा, इत्यादि आज्ञापक-प्रज्ञापक इत्यादि वाक्य वगेरे भावोनुं चिंतववुं ते व्यवहारमनोयोग ?? प्रकारनां व्याख्यानथी जाणवा (अहिं सत् ते सद्रूप एटले जे पदार्थ जेवो होय तेने तेवा रूपे चिंतववो एम जाणवुं). ए सर्व प्रकारना मनोयोग जो प्रशस्तभावे मर्यादापूर्वक वर्तता होयतो शुभाश्रव, अने अप्रशस्त भावे वर्तता होयतो अशुभाश्रव गणाय.

[1] अहिं मनःपर्याप्तिना उदय वखते मनने कारणभूत ... मनोद्रव्यना ... अवलंबनना ... पुद्गलो ...

भाषापर्याप्तिनामकर्मना उदयथी काययोगवडे भाषायोग्य वर्गणा ग्रहण करी भाषापणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवानो जे व्यापार ते वचनयोग पण उपर मुजब चार प्रकारनो छे, परन्तु "चिन्तववुं" ए शब्दने बदले "बोलवुं" अथवा "कहेवुं" एटलो तफावत जाणवो. ए चारे प्रकारना सत्यवचनयोगथी शुभाश्रव अने असत्य०वचनयोगे अशुभाश्रव थाय,

औदारिकादि काययोग ७ प्रकारे छे. ते आ प्रमाणे—औदा० शरीरद्वारा जीवोनो जे व्यापार ते औदारिक काय योग शरीरपर्याप्ति समाप्त थया बाद संपूर्ण भवसुधी चालु रहे छे, पण ते संबंधि आश्रव वारंवार अन्तर्मु० सुधीज होय छे, कारणके त्रण योगमांथी कोइपण एक योग अन्तर्मु- थी वधु वखत टकी शके नहिं पण परावृत्ति थया करे ते आगळ कहेवाशे तथा तैजसकार्मण शरीरसहित औदा० शरीरनो जे व्यापार ते औदारिकमिश्र काययोग भवान्तरे उत्पन्न थया बाद बीजा समयथी शरीरपर्याप्ति थाय त्यां सुधी होय. अने सर्वज्ञने समुद्घात वखते बीजे छट्ठे अने सातमे समये होय त्यां सर्वज्ञना औदा० मिश्रयोग वखते शुभाश्रवज होय- शेष जीवोना औदा० मिश्रयोगमां शुभ अने अशुभ आश्रव होय. तथा वै० शरीरद्वारा जे आत्मानो व्यापार ते वैक्रियकाययोग पण वै० शरीरपर्याप्ति थया बाद संपूर्ण भव सुधी होय अने उत्तरवै०मां ते रहे टके त्यां सुधी होय, तथा मूलवै क्रियनी अपेक्षाए तैजसकार्मण सहित वै० शरीरनो जे व्यापा अने उत्तर वैक्रियनी अपेक्षाए औदा० शरीर सहित वै० शरीर व्यापार ते वैक्रियमिश्र काययोग तथा आहारक शरीरनो व्य पार ते आहारककाययोग अने औदा० शरीर सहित आ शरीरनो जे व्यापार ते आहा० मिश्रकाययोग कहेवाय. ए मिश्रयोग उत्तर शरीरनो प्रारंभ करती वखते अने संहार करती

अन्तर्मु० सुधी होय. तेमज आहा० योग पण आहा० शरीरपर्याप्ति पूर्ण थया बाद अन्तर्मु० सुधीज होय. तथा जीवने परभवमां वक्रगतिए जतां १-२-३ समय सुधी अने श्री सर्वज्ञने समुद्‌घात वखते त्रीजे-चोथे-ने ५ मे समये तैजसकार्मण काययोग होय, ए सिवायना बीजा वखतमां सर्वथा न होय तेम नहिं पण गौणभावे होवाथी एनी मुख्यता न गणाय. ए साते काययोगथी जीव शुभाशुभ आश्रव प्राप्त करे छे. एमांनो कोइपण योग जघन्यथी १ समय रह्या बाद बीजे समये बीजो योग प्रवर्ते छे जेमके मनोयोग बदलाइने वचनयोग प्रवर्ते छे. अने वधुमां वधु अन्तर्मु० सुधी १ योग रही शके छे माटे एक योग संबन्धि आश्रव पण जघन्यथी १ समय अने उत्कृष्टथी अन्तर्मु० सुधी होय,

ए प्रमाणे इन्द्रियादि १७ भेदे असंयम पण गणाय छे, हवे शेष २५ क्रियाओनां नाम आगळनी गाथाओमां दर्शावाय छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां जे २५ क्रियाओ आश्रवतत्त्वमां गणावी ते क्रिया कइ कइ ? ते गणावे छे,

॥ मूळगाथा २२ मी. ॥

काइअ अहिगरणिया, पाउसिया परितावणी किरिया
पाणाइवायारंभिय, परिग्गहिया मायवत्तीया ॥२२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

कायिक्यधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी पारितापनिकी क्रिया ।
प्राणातिपातिक्यारम्भिकी, पारिग्रहिकी मायाप्रत्ययिकी ॥२२

॥ शब्दार्थः ॥

[illegible]यिकी क्रिया.	किरिया–क्रिया.
[illegible]या–अधिकरणिकी क्रिया.	पाणाइवाय–प्राणातिपातिकी क्रिया
–प्राद्वेषिकी क्रिया.	आरंभिय–आरंभिकी क्रिया.
[illegible]ी–पारितापनिकी क्रिया	परिग्गहिया–पारिग्रहिकी क्रिया.
	मायवत्तीय–माया प्रत्ययिकी क्रिय

[illegible]ार्थः—कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारिताप-[illegible]ातिपातिकी, आरंभिकी, पारिग्रहिकी, अने मायाप्र-क्रिया (ए ८ क्रिया आ गाथामां कही छे.)

[illegible]तरार्थः—जे व्यापारवडे आत्मा शुभाशुभकर्म प्राप्त क-[illegible]ार नामनुं क्रिया कहेवाय तेमां आत्मानो व्यापार क-[illegible]त पणे होय तो असांपरायिकी क्रिया, अने सकषाय [illegible]तो (संपराय एटले कषाय ए अर्थथी) सांपरायिकी [illegible]हेवाय. त्यां असांपरा० क्रिया एक ईर्यापथिकी नामे सांपरा० क्रिया २४ प्रकारनी छे. ए प्रमाणे सर्वप-क्रियाओनु स्वरूप कहेवाय छे.

[illegible]कायिकी क्रिया—कायाना व्यापारथी उत्पन्न थयेली ते क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यग्दृष्टि [illegible]वनजीवनी उठवुं-बेसवुं-मूकवुं-उपाडवुं-चालवुं सूवुं इत्यादि-[illegible]पना कारणवाळी जे सावद्यक्रियाने अनुपरत कायिकी [illegible]हेवाय. (अहिं अनुपरत–अविरतिवन्त), अने अशुभ

अहिंयी सर्व क्रियाओनुं स्वरूप पन्नवणाजी-ठाणांग-[illegible] विचारसार—तथा नवतत्त्व भाष्यमांथी सारवणी क-[illegible]रेपथी लखेलुं छे. माटे विस्तरार्थीए पन्नवणाजीथी [illegible]रूप जाणवुं. पुन पन्नवणाजीमां १० क्रियाओ प्रथमनोज [illegible] छे. अने नवतत्त्वभाष्यमां सर्व वर्णवेली छे.

योगवाळा जीवोने इन्द्रियना इष्ट विषयो प्राप्त थये रति अने अनिष्ट विषयोनी प्राप्तिथी अरति पामवा रूप इन्द्रिय संबन्धि क्रिया, तथा अनिन्द्रिय संबन्धी ते अशुभमनना संकल्पद्वारा मोक्षमार्ग तरफ दुर्व्यवस्थित एवा प्रमत्तमुनिनी कायक्रिया ए बन्ने दुष्प्रयुक्त कायक्रिया कहेवाय. आ कायिकी क्रिया कषायोदयवाळा सर्व काययोगी जीवोने होय, एमां एली कायक्रिया प्रमत्त सुधीना जीवोने अने बीजी अनुपयोगी [1] मुनिने पण होय.

२ अधिकरणिकी क्रिया—जेना वडे आत्मा नरकादिगतिनो अधिकारी थाय ते अधिक० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां प्रथम बनावी राखेला खड्गादिकनां अंगने परस्पर जोडी तैयार करवुं ते संयोजनाधिक०, अने शरुथी नवां खड्ग वगेरे अधिकरण के जेना वडे जीवनो घात थाय तेवां बनाववां ते [2] निर्वर्तनाधिक० क्रिया कहेवाय. अहिं अधिकरण एटले जीवघात थाय तेवु आचरण अथवा खड्गादि शस्त्र जाणवां. आ क्रिया बादरकषायोदयी जीवने होय (माटे ९ मा गु० सुधी). अहिं पोतानो देह पण अधिकरण छे.

३ प्राद्वेषिकी क्रिया—उत्कृष्ट क्रोधादि द्वेष करवाथी उत्पन्न थयेली ते प्राद्वे० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां जीव उपर द्वे-

---

१ विचारसार ग्रंथमां १० मा गुण० सुधी ए क्रिया गणी छे, परन्तु ठाणांगजी तथा पन्नवणाजीमां ६ठा गुण स्थान सुधी कहेली छे माटे ए अनुसारे लखी छे.

२ औदा० वगेरे पांच शरीरने मूळथी बनाववां ते अथवा खड्गादि शस्त्रोने मूळथी नवां बनाववां ते मूलगुणनिर्वर्तन क्रिया, हाथपग वगेरे अवयवो रचवा अथवा ते खड्गादि शस्त्रोने पाणी पायुं उज्ज्वल करवुं धार काढवी, अने तेनां अंग बनाववां ते उत्तरगुणनिर्वर्तन क्रिया पण पन्न० तथा नव० भा० मां कह्य छे.

य-पत्थर राखवाथी जीवप्राद्वेषिकी, अने पोताने पीडा प... ता एवा कांटा-पत्थर वगेरे अजीव पदार्थ उपर द्वेष थाय ते अ... जीवप्राद्वे० क्रिया कहेवाय. आ क्रिया ¹क्रोध कषायोदयी जी... ने होय. (माटे ९ मा गु० सुधी.)

४ पारितापनिकी क्रिया—परिताप एटले ताडना तर्जना... दिरूपी संताप उपजाववो ते पारिता० क्रिया वे प्रकारनी छे. त्यां स्त्री पुत्रादिकना वियोगे पोताने हाथे पोतानो देहने माथुं फो-डवादिके करीने अथवा बीजानी देहने परिताप-संताप उपजाव-वामां स्वहस्त पारिता०, अने तेवी रीते बीजाने हाथे करावतां प-रहस्तपारिता०, *क्रिया कहेवाय आ क्रिया बादर कषायोदयी जीवोने होय माटे नवमा गुण० सुधी होय

*५ प्राणातिपातिकी क्रिया—अपवर्तनीय आयुष्यवाळा जीवना प्राणनो अतिपात-विनाश करवाथी उत्पन्न थयेली ते प्रा-

१ पन्नवणाजीमां चारे कषाय रागद्वेषरूपे गणेला छे ते अपेक्षाए चारे कषायोदयी जीवने पण ए क्रिया गणी शकाय. (इति विचारसार:)

* नवतत्त्वभाष्यमां आ प्रमाणे छे के—स्त्री पुत्रादिकना वियोगथी पीडा पामेलो जीव पोताने हाथे अथवा परने हाथे पोतानी छाती कूटे माथु कूटे तो स्वपारितापनिकी अने पुत्रशि-ष्यादिकने ताडना तर्जना करे ते परपारितापनिकी क्रिया कहेवाय

२ नवतत्त्वभाष्यमां आ प्रमाणे छे के—पर्वतना शिखर उपरथी पडवुं, पाणी अथवा अग्निमां झंपापात करवो अथवा शस्त्र मारवादिकवडे पोताने हाथे अथवा परने हाथे पोताना प्राण गुमाववा ते स्वप्राणातिपातिकी अने मांद लाभ के क्रो-धना आवेशथी पोताने हाथे अथवा परने हाथे बीजाना प्राण लेवा ते परप्राणातिपातिकी,

तथा पन्नवणाजीमां आ क्रिया अपवर्तनीय आयुष्यवाळा जीवपर लागु पडे. एम कह्यु छे, केमके अनपवर्तनीय आयु-ष्यवाळाना प्राण मारवाथी गुमावाय नहि,

णाति० क्रिया पण पूर्वोक्त प्रकारे स्वहस्तिकी अने परहस्तिकी एम बे प्रकारे छे. आ प्राणाति० क्रिया असंयत (अविरत) जीवोने होय छे माटे ५ मा गुण० सुधी छे. आ क्रिया हणेलो जीव मरण पामे तो ज लागे अन्यथा नहिं.

६ आरंभिकी—आरंभ (कोइक कार्य करवानी प्रवृत्ति) थी उत्पन्न थयेली ते आरंभिकी क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां जीवनो घात करवारूप कार्य प्रवृत्तिवाळी जे क्रिया ते जीवआरंभिकी, अने चित्र-अथवा कोरणी वगेरेथी बनावेला जीवोने घात करवारूप प्रवृत्ति ते अजीव आरंभिकी. आ क्रिया सर्व प्रमादयोगी जीवोने होय छे माटे ६ ठा गुण० सुधी छे.

७ पारिग्रहिकी क्रिया—परिग्रह (धनधान्यादिकनो संग्रह वा ममत्वभाव) थी उत्पन्न थयेली ते पारिग्र० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां धान्य-ढोर-दास-दासी वगेरे जीवना संग्रहथी जीव पारिग्र०, अने आभूषण-वस्त्र इत्यादि अजीवना संग्रहथी अजीवपारिग्र० कहेवाय, आ क्रिया परिग्रहना अत्यागी जीवोने होय छे, माटे ५ मा गुण० सुधी छे,

८ मायाप्रत्ययिकी क्रिया—माया एटले छळ प्रपंचथी उत्पन्न थयेली ते माया प्र० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां अंतरंगमां दुष्ट भाव होय छतां बहारथी शुद्धभाव दर्शाववो. ए प्रमाणे पोतानो भाव विपरीतपणे देखाडवो ते आत्मभाववंचनमाया प्र०, अने बीजानी जूठी साक्षी पूरवी, खोटो लेख लखी आपवो इत्यादि परभाववंचन मायाप्र० क्रिया कहेवाय श्री पन्नवणाजीमां पण आ क्रियाने मात्र ७ मा गुण० सुधीज कही छे,

१ माया मोहनीयना उदयनी अपेक्षाए तो ९ मा गुण० सुधी संभवे, परन्तु अहिं माया प्रपंचनो प्रवृत्ति रूप क्रिया गणेली छे माटे तेवी प्रवृत्ति तो ७मा गुण० सुधीज पन्नवणाजीमां संभवादिकना कारणथी कहेली छे अने ८-९मे गुणस्थाने माया उदयरूपे होय पण प्रवृत्ति रूप न होय

अवतरण— आ गाथामां मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी वगेरे क्रियाओ कहेवाय छे.

॥ मूळगाथा २३ मी ॥

मिच्छादंसणवत्ती, अपच्चक्खाणी य दिट्ठि पुट्ठि य ।
पाडुच्चिय सामंतो—वणीअ नेसत्थि साहत्थी ॥ २३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी अप्रत्याख्यानिकी च दृष्टिकी स्पृष्टिकी च
प्रातित्यकी सामंतोपनिपातिकी नैशस्त्रिकी स्वाहस्तिकी २३

॥ शब्दार्थः ॥

मिच्छादंसणवत्ती–मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया
अपच्चक्खाणी–अप्रत्याख्यानिकी क्रिया
य–अने
दिट्ठी–दृष्टिकी क्रिया
पुट्ठी–स्पृष्टिकी क्रिया (वा पृष्टिकी)
पाडुच्चिय–प्रातित्यकी क्रिया
सामंतोवणीअ–सामंतोपनिपातिकी क्रिया
नेसत्थि नैशस्त्रिकी (अथवा–नैसृष्टिकी)
साहत्थी–स्वाहस्तिकी क्रिया

गाथार्थः— मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिका, स्पृष्टिकी, प्रातित्यकी, सामंतोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी (अथवा नैसृष्टिकी) अने स्वाहस्तिकी क्रिया.

विस्तरार्थ :—

१ मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी क्रिया—जगतमां जे पदार्थो जे रूपे विद्यमान छे ते पदार्थोने तेवा रूपे न मानतां विपरीत रूपे माने ते मिथ्याद० प्र० क्रिया बे प्रकारनी छे, त्यां सत् पदार्थोने सत् माने पण ते सत् पदार्थना केटलाक गुणपर्यायने विपरीतपणे माने.

जेमके केटलाएक दर्शनवाळा आत्मा देहव्यापी छे तोपण एम माने छे के आत्मा अंगुठानी पर्वरेखाप्रमाण व्याप्त छे, अथवा एक तन्दुल मात्र जेटलो छे ए प्रमाणे न्यूनपणे माने छे, अने केटलाएक दर्शनवाळा आत्मा सर्वव्यापी छे, ५०० धनुष्य जेटलो छे इत्यादि अधिकपणे माने ते ऊनातिरिक्त मिथ्याद०प्र० क्रिया. अने जेम्रो आत्मा छे ज नहिं इत्यादि मूळथी विच्छेद माने ते तद्व्यतिरिक्त मिथ्या द०प्र० क्रिया कहेवाय. आ क्रिया सम्य० मोह सिवाय दर्शन छ स्कना उदयथी होय माटे त्रीजा गुणस्थान सुधी छे.

१० अप्रत्याख्यानिकी क्रिया— जे पदार्थना उपयोगना ज्यां सुधी त्याग नथी कर्यो त्यां सुधी जे अत्यागवृत्ति संबंधि कर्म प्राप्त थाय छे ते अप्रत्या० क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां सजीववस्तुओनो त्याग न करे ते जीवअप्रत्या०. अने अजीव वस्तुओनो त्याग न होवनो अजीव अप्र या० क्रिया कहेवाय. परभवमां जे जे कलेवरो छोडयां छे अने जे जे शस्त्रादि जीवोपघातनां साधना तैयार कर्यां छे ते ते कलेवरो अने शस्त्रादि निमित्तथी जे जे हिंसादि थाय छे ते ते सर्व कर्मनो आश्रव जीवने आ भवमां पण लागु पडे छे माटे धर्ममार्गना जाणनार जीवोए पूर्वभवोमां करेलां साधनो संबंधि आवता आश्रवनो त्याग करवो तेज श्रेयस्कर छे, वळी जे जे चीजो आपणा उपभोगमां स्वप्ने पण आवती नथी तेवी तेवी अप्राप्य चीजोनो पण ज्यां सुधी त्याग नथी कर्यो त्यां सुधी तत्संबंधि कर्मबंध आत्माने निरन्तर वर्ती रह्यो छे. माटे तेवी अप्राप्य चीजोनो पण त्याग करवो श्रेयस्कर छे. आ क्रिया अविरतिवंत जीवोनेज होवाथी चोथा गुण० सुधी होय छे.

११ दृष्टिकी क्रिया— जीव अथवा अजीवने रागादिकथी देखतां जे क्रिया लागे ते अनुक्रमे जीवदृष्टिकी अने अजीव दृ०

क्रिया एम बे प्रकारे जाणवी. आ क्रिया सकषायी चतुरिन्द्रिय
जीवोने होय छे माटे १० मा गुण० सुधी छे.

१२ स्पृष्टिकीक्रिया— जीव अथवा अजीवने रागा
स्पर्श करवो ते जीवस्पृष्टिकी अने अजीवस्पृष्टिकी ए प्रमाणे
प्रकारनी छे. स्त्री वगेरेने रागथी आलिंगन करतां आ वस्तु घणी
सुंवाळी छे आ वस्तु घणीज कोमळ छे ए प्रमाणे रागभावथी
अश्व तथा बीजी कोइ अजीववस्तुने पंपाळ्तां– हाथ फेरवतां
क्रिया संबंधि आश्रव आवेछे. अहिं स्पृष्टिकीने बदले पृष्टिकी
क्रिया पण जीव अजीवने (वा जीवअजीवसंबंधि) रागद्वेषथी
पूछतां बे प्रकारनी गणेली छे. आ क्रिया सरागी जीवने होवाथी
१०मा गुण० सुधी छे.

१३ प्रातित्यकी क्रिया— अन्यने आश्रयि जे कर्मबंध अथ-
वा रागद्वेष उत्पन्न थाय ते प्रातित्यकी क्रिया बे प्रकारनी छे. त्यां
अन्यजीवना निमित्तथी आपणने रागद्वेष थाय तो जीवप्रातित्य-
की अने (स्तंभादिकमां शीर्ष अफळातां) स्तंभादि अजीव पदार्थना
निमित्ते जे रागद्वेष उपजे ते अजीवप्रातित्यकी क्रिया गणाय.

१४ सामंतोपनिपातिकी क्रिया – समंतात्–चारे बाजु-
थी उपनिपात एटले लोकनुं आवी [illegible] थाय अर्थात् जेनावडे
सर्वबाजुथी लोक आवी भेगा थाय तेवी क्रिया ते सामंतोप०क्रिया
बे प्रकारनी छे. त्यां कोइ सारो सांढ–आखलो–वा बळद वा
हस्ति इत्यादिक सारेंउ होयतो तेने पण लोको जोवा आवतां
सारो होय ने प्रशंसा करे तो तेनो मालीक खुश थाय. अने कोइ

१ नवतत्त्वभाष्यमां– पूर्वना पापमां उपादान कारण रुप
अधिकरणने आश्रयि उत्पन्न थयेली क्रिया ते प्रातित्यकी ः
एम कहयुं छे.

खोड खांपण काढे तो द्वेषवाळो थाय इत्यादिक रीते जीव संबंधि लोकनुं मळवुं थतां पोताने रागद्वेष थवाथी जीवसामंतोप० क्रिया अने तेवीज रीते अजीव पदार्थने जोवा मळेला लोकोथी रागद्वेष थतां अजीव सामंतोप० क्रिया लागे. नाटक उभा करनार— खेल तमाशा बनावनार —कौतुक देखाडनार इत्यादिकने मुख्यत्वे आ क्रिया संबंधि आश्रव गणाय. आ क्रिया आरंभादिकना अत्यागी जीवोने होय छे माटे पांचमा गुण०सुधी छे.

१५ नैसृष्टिकी क्रिया— निसर्जन करवुं एटले काढवुं अथवा फेंकवुं अथवा त्याग करवुं तेनाथी उत्पन्नथयेली क्रिया ते बे प्रकारनी छे. त्यां यन्त्रादिवडे कुवादिकमांथी पाणी काढी खाली करवुं ते जीव नैसृष्टिकी. अने धनुष्यमांथी बाणनुं जे फेंकवुं ते इत्यादि अजीवनैसृ० क्रिया गणाय. अथवा गुरु वगेरेने ए क्रिया आ प्रमाणे— शिष्य अथवा पुत्रने (सुपात्र होय छतां) काढी मूकतां जीवनैसृ०[1] अने एषणीय (निर्दोष) भातपाणीनो त्याग करतां अजीवनैसृ० क्रिया जाणवी. आ क्रिया पण पूर्ववत् पांचमा गुण० सुधी कही छे.

१६– स्वाहस्तिकी क्रिया— पोताने हाथेज जीवनो घातादि करवो ते स्वाह० क्रिया बे प्रकारे छे. त्यां पोताना हाथमां ग्रहण करेला जीव पदार्थवडे जीवने हणे ते अथवा पोताने हाथेज जीवने हणे ते एम बन्ने प्रकारे जीवस्वाहस्तिकी, अने पोताना हाथमां रहेला खड्गादि अजीव पदार्थवडे जीवने हणे ते अथवा पोताने हाथेज अजीवने हणे ते एम बन्ने प्रकारे अजीवस्वाह० क्रिया गणाय, आ क्रिया पण पूर्ववत् ५ मा गुण०सुधी छे.

---

१ घणा काळथी चतवेला वांरदेखित पाल कार्यमां मान्यी न अनुज्ञा(अनुमति) ते नैसृ० (इति नवतत्त्वभाष्ये)

अवतरण— आ गाथामां बीजी आज्ञापनिकी वगेरे ९ क्रि
याओ कहेवाय छे.

॥ मूळगाथा २४ मी. ॥

आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइ
अन्नापओगसमुदा–ण पिज्ज दोसेरियावहिया ॥२४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

आज्ञापनिकी वैदारणिकी, अनाभोगिक्यनवकांक्षप्रत्ययिकी
अन्य प्रायोगिकी सामुदायिकी प्रैमिकी द्वैषिकीर्यापथिकी॥

शब्दार्थः

आणवणि–आज्ञापनिकी क्रिया	पओग–प्रायोगिकी क्रिया
विआरणिया–वैदारणिकी क्रिया	समुदाण–सामुदायिकी क्रिया
अणभोगा–अनाभोगिकी क्रिया	पिज्ज–प्रैमिकी क्रिया
अणवकंखपच्चइया–अनवकांक्षा-प्रत्ययिकी क्रिया	दोस द्वैषिकी क्रिया
अन्ना–बीजी २१ थी (वगेरे)	इरियावहिया–ईर्यापथिकी क्रिया

गाथार्थः— आज्ञापनिकी, वैदारणिकी, अनाभोगिकी, अनवकांक्षाप्रत्ययिकी, वळी बीजी(२१ थी वगेरे)क्रिया सामुदायिकी, प्रैमिकी, द्वैषिकी, अने ईर्यापथिकी क्रिया. (९ सहमळी २५ क्रियाओथी कर्मनुं आगमन थाय छे.)

विस्तरार्थः—

१७ आज्ञापनिकी क्रिया—जीवने आज्ञा-हुकम फरमाव-वां जीवआज्ञाप०, अने अजीवने आज्ञा करवाथी.(आयुध-वगेरेने) अजीव आज्ञाप० क्रिया गणाय. अहिं आज्ञा० ने बदले आनयनिकी क्रिया कहेवाय छे ते पण जीव वा अजीव वस्तुने

अणाववतां- मंगाववतां जीवानयनिकी अने अजीवानयनिकी एम बेप्रकारनी छे. आ क्रिया पांचमा गुण० सुधी कारण छे.के आ क्रिया जिनाज्ञाना उल्लंघनपूर्वक पोतानी बुद्धिए जीवादिपदार्थोने मगाववाथी लागे एम नवतत्त्वभाष्यमां कह्युं छे, अने ते चारित्री जीवोने होतुं नथी माटे.

१८ वैदारणिकी क्रिया— जीव अथवा अजीवने विदारवाथी-फोडवाथी-भिन्नकरवाथी उत्पन्न थयेली क्रिया ते जीव अने अजीव ना भेदथी बे प्रकारनी छे. अहिं वैदा० ने बदले वैनारणिकी क्रिया एटले विनारण-ठगवुं तेनाथी उत्पन्न थयेली ते पण जीवाजीव भेदे बे प्रकारनी छे. जेमके जीव सद्गुणी होय तो पण ठगवानी बुद्धिए दुर्गुणी कहे, अथवा दुभाषीयो जेम एकनी कहेली वात बीजा अजाणने कंइक अवळी रीते समजावे इत्यादिक ते जीववैना०, अने अजीवपदार्थना पण अछता गुणदोष कहे ते अजीववैना०कहेवाय अहिं सामा जीवनुं हृदय भेदाय तेवां मेंणां मारवां कलंक चढाववुं-खड्गथी बे भाग करवा-परने फाळ पडे तेवी खोटी खबर आपवी इत्यादि कार्योथी आ क्रिया संबंधि आश्रव लागे. आ क्रिया बादर कषायोदय सुधी होवाथी ९ मा गुण० सुधी छे.

१९ अनाभोगिकी क्रिया— अनाभोग एटले उपयोग रहितपणे जे लेवा-मूकवादिकनी क्रिया करवी ते बे प्रकारनी छे, त्यां उपयोगरहित-प्रमार्जनादि कर्या विना वस्त्र पात्रादि लेवा मूकवाथी अनायुक्तादान क्रिया. अने उपयोग रहित प्रमार्जनादि करी लेवा मूकवाथी अनायुक्तप्रमार्जना क्रिया गणाय आ क्रिया ज्ञाना० ना उदयथी सकषायी जीवने छे माटे १० मा गुण०सुधी होय

२० अनवकांक्षाप्रत्ययिकी क्रिया— पोताना शरी

परना हितनी आकांक्षा–अपेक्षा रहित जे आलोक अने प
विरुद्ध एवुं चोरी परस्त्रीगमनादि आचरण ते स्व अनवक
अने पर अनवकांक्षा एम बे प्रकारे छे, आ क्रिया बादरकषा
दयमत्ययिक होवाथी ९मा गुण० सुधी छे.

२१ प्रायोगिकी क्रिया — मन वचन अने कायाना शु
शुभ व्यापाररूप जे क्रिया ते प्रायो० क्रिया. आ क्रिया शुभाशु
सावद्य योगवाळाने होवाथी ५ मा गुण० सुधी छे.

२२ समादान क्रिया—जेनाथी विषय समादीयते–ग्रहण
कराय ते समादान एटले इन्द्रिय ते संबंधि देशघातक वा सर्वोप-
घातक जे व्यापार ते समादान क्रिया, अर्थात् जेनावडे आठे कर्म स-
मुदाय पणे बंधाय तेवा प्रकारनो इन्द्रियनो व्यपार ते समादानक्रिया
अथवा सामुदायिकी क्रिया पण कहेवायछे आ क्रिया इन्द्रिय अ-
[illegible]त्रवाळा जीवोने होवाथी ५ गुण० सुधी होय छे.

२३ प्रेमिकी क्रिया— बीजा उपर प्रेम करवाथी अथवा बी-
जाने प्रेम उपजे एवां वचनादिथी जे कर्मबंध थाय ते प्रेमिकी क्रिया.
आ क्रिया लोभना उदय रूप होवाथी १०मा गुण० सुधी छे.

२४ द्वेषिकी क्रिया— बीजा जीवने क्रोध अने मानरूप द्वेष
उपजे तेवा आचरणथी, उत्पन्न थयेली ते, आ क्रिया बादर कषायोदय-
वाळाने होवाथी ९ मा गुण० सुधी छे.

२५ ईर्यापथिकी क्रिया— ईर्या एटले गमनागमनादि
काययोग (उपलक्षणथी वचन अने मनोयोग) एज पथ- कर्म
आववानो मार्ग तत्संबंधि जे क्रिया ते ईर्यापथिकी क्रिया. अर्थात्
मन वचन कायाना अकाषायिकयोगथी उत्पन्न थयेली क्रिया ते
ईर्याप० क्रिया आ क्रिया ११–१२–ने १३ मा गुण० वाळा अकषायी
जीवने योगमात्रथीज होय छे आ योगमात्रथी बंधातुं सातावे० कर्म
मनोहर वर्णगंधरसस्पर्शवाळुं पण अनित्य होय छे, तेथी प्रथम समये

[illegible] अने बीजे समये वेदाय छे अने निर्जरे छे जेथी आइर्यावह[illegible]
[illegible] मात्र बे समयनी ज छे अने अकषायी जीवने एक शाता-
[illegible] छे बीजुं कोइ कर्म बंधाय नहि आ क्रिया बध्यमान
अने [illegible] एम बे भेदथी बे प्रकारनी छे. त्यां प्रथम समये बध्यमान
अने बीजे समये [illegible] जाणवी. ए प्रमाणे आश्रव तत्त्वना कहेला भेद
[illegible] स्थूल दृष्टिए परस्पर एक सरखा जणाय छे
[illegible] चक्षुइन्द्रिय दृष्टिकी क्रियामां अने स्पर्शनेन्द्रिय
[illegible] अन्तर्गत थाय छे. चारे कषाय प्रेम प्रत्ययिक-
[illegible] प्रात्ययिकमां यथा योग्य अन्तर्गत था-
[illegible] सामान्यतः अप्रत्याख्यानिकीक्रियामां अने
[illegible] क्रियामां तथा पांचमुं अव्रत प-
[illegible] क्रियामां समाय छे. त्रणे योग प्रायोगिकी क्रियामां समाय
[illegible] भेद साथे क्रियाओ ते पण परस्पर
[illegible] प्रायोगिकी क्रियामां कायिकी समाय छे.
[illegible] एक सरखी जेवी छे इत्यादि रीते आ-
[illegible] परस्पर भिन्न पडता नथी एम स्थूल दृष्टिए
[illegible] दृष्टिए विचारतां सर्व भेदमां फेरफार मालुम
पडे छे [illegible] निमित्तक छे अने दृष्टिकी
[illegible] निमित्तक छे इत्यादि परस्पर भेद सूक्ष्म
[illegible] ([illegible])

[illegible] कायिकी थी अव्रत्या० क्रियाओ सुधीनी १०
[illegible] वर्णवेली छे. अने ठाणांगजी मां
[illegible] जुदी जुदी वर्णवी छे पुनः ठाणांगजीमां ए सर्वे क्रि-
[illegible] मुख्यताए अजीवक्रियामां क-
[illegible] मुख्यताए जीवक्रि-
[illegible] मिथ्यात्वभाव-मिश्रभाव-
[illegible] जीवक्रिया गणी छे.

आ प्रमाणे ठाणांगजी प्रज्ञापनाजी–नवतत्त्वभाष्य–विचार
प्रकरण इत्यादि ग्रन्थोने आधारे क्रियाओनुं वर्णन कर्युं. आ वे
ग्रोथ आश्रवोनुं कर्मबन्धमां हेतुपणुं जाणी जेम बने तेम आश्रव
नोथी निवर्ती कर्मबन्धनथी अलग थवुं एज शास्त्रबोधनुं फल छे.

॥ आश्रवतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

नरकगतिमां ४१—एक ईर्यापथिकी क्रिया विना शेष आश्रवना ४१ भेद नरकगतिमां होय छे. ईर्यापथिकी क्रिया केवळ योगप्रत्ययिक छे; अने ते योग कषायरहित ११ मा गुणस्थानथी.यथाख्यान चारित्र सद्भावे होय छे, तेवुं यथाख्यात चारित्र नारकने होय नहि माटे ईर्यापथिकी क्रिया संबंधि आश्रव पण न होय जेथी ५ इन्द्रिय-४ कषाय-५ अव्रत-३ योग अने २४ क्रिया ए ४१ आश्रवभेद होय.

तिर्यंचगतिमां ४१—नरकगतिवत्.

देवगतिमां ४१—नरकगतिवत्.

मनुष्यगतिमां ४२—यथाख्यात चारित्र मनुष्यगतिमां होय छे. माटे ते चारित्रना कारणथी केवळ योगप्रत्ययिक ईर्यापथिकी क्रिया पण होय छे जेथी मनुष्यगतिमां आश्रवना सर्व भेद ४२ होय.

एकेन्द्रियमां ३०—दृष्टिकी क्रिया चक्षुदर्शनवाळा जीवने होय, प्रातीत्यकी, सामंतोपनिपातिकी, आनयनिकी, अने आज्ञाप्रयोगिकी ए चार क्रिया दीर्घकालिकी संज्ञावाळा वचनयोगीने होय, अने एकेन्द्रिय जीवमां चक्षुदर्शन अने वचनयोगनो अभाव होवाथी ए पांच क्रिया अने छट्ठी ईर्यापथिकी क्रिया तो पूर्वोक्त कारणथी न होय माटे १९ क्रिया होय छे. इन्द्रिय आश्रवमां १ स्पर्शनेन्द्रिय संबंधि आश्रव छे, कषाय ४ छे, अने योगमां १ काययोगाश्रव छे, अव्रत ५ छे माटे सर्व मळी ३० आश्रवभेद होय छे.

द्वीन्द्रियमां ३२—एकेन्द्रियमां जे ३० आश्रवभेद कह्या तेमां १ रसनेन्द्रिय अने १ वचनयोग ए बे अधिक होवाथी द्वीन्द्रियमां ३२ आश्रव होय छे.

त्रीन्द्रियमां ३३—द्वीन्द्रियना ३२ आश्रवमां १ घ्राणेन्द्रियाश्रव अधिक करतां त्रीन्द्रियमां ३३ आश्रवभेद होय.

चतुरिन्द्रियमां ३५—त्रीन्द्रियना ३३ आश्रवमां १ चक्षुरिन्द्रियाश्रव, अने दृष्टिकी क्रिया अधिक करतां ३५ आश्रवभेद चतुरिन्द्रियमां होय.

पंचेन्द्रियमां ४२-पंचेन्द्रियमां गर्भजमनुष्यने सर्वे आश्रव भेद होयछे.

पृथ्वीकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

अप्कायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

तेउकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

वायुकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

वनस्पतिकायमां ३०—एकेन्द्रियवत्.

त्रसकायमां ४२—मनुष्यगतिवत्.

॥ इत्याश्रवतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

अथ संवरतत्त्व

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वना ५७ भेद कहेवाय छे

॥ मूळगाथा २५ मी ॥

समिईगुत्तिपरिसह–जईधम्मो भावणा चरित्ताणि
पणतिदुवीसदसबार - पंचभेएहिं सगवन्ना ॥२५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

समितिगुप्तिपरिषहयतिधर्मा भावनाश्चारित्राणि
पञ्चत्रिद्वाविंशतिदशद्वादशपञ्चभेदैः सप्तपञ्चाशत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थः— [illegible]

समिइ–समिति	ति–त्रणभेद
गुत्ति–गुप्ति	दुवीस–बावीसभेद
परिसह–परिषह	दस–दशभेद
जइधम्मो–यतिधर्म	बार–बारभेद
भावणा–भावना	पण–पांच
चरित्ताणि–चारित्र	भेएहिं–भेदवडे
पण–पांचभेद	सगवन्ना–सत्तावनभेद

गाथार्थः—पांच समिति–त्रण गुप्ति–बावीस परिषह–१० यति-धर्म–१२ भावना ने पांच चारित्रना भेदवडे संवरतत्त्वना ५७ भेद छे.

विस्तरार्थः—सम्–सम्यक् उपयोगपूर्वक इति–प्रवृत्ति ते समिति, तथा गुप्ति–मनवचन– कायाथी अथवा मनवचनादि [illegible]

सह-कष्ट सहनकरवुं पण सदोष आचरण न करवुं ते परिषह. तथा यति-मोक्षमार्गमां जे यत्न-प्रयत्न करे तेवा मुनिओनो जे धर्म ते यतिधर्म. तथा मोक्षमार्ग तरफ रुचि वधे तेवुं चिन्तवन ते भावना अने चय-आठे कर्मनो संचय समूह तेने जे रित्त-रिक्त करे-खाली करे ते चारित्र कहेवाय. ए सर्व नवां आवतां कर्मने रोकनार होवाथी संवररूप कहेवायछे. हवे आगळनी गाथाओमां तेना उत्तरभेदोनुं स्वरूप कहेवाय छे

अवतरण-पूर्वगाथामां पांचसमिति अने त्रणगुप्ति सामान्यथी कही तेनां नाम आ गाथामां कहे छे.

मूळ गाथा २६ मी

इरिया भासेसणादाणे, उच्चारे समिईसु अ
मणगुत्ति वयगुत्ति, कायगुत्ति तहेव य ॥ २६॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ईर्याभाषैषणादानान्युत्सर्गः समितिषु च
मनोगुप्तिर्वचोगुप्तिः कायगुप्तिस्तथैव च ॥ २६॥

॥ शब्दार्थः ॥

इरिया-ईर्यासमिति	अ-वळी
भासा-भाषासमिति	मणगुत्ति-मनोगुप्ति
एसणा-एषणासमिति	वयगुत्ति-वचनगुप्ति
आदाण-आदानसमिति	कायगुत्ति-कायगुप्ति
उच्चारे-उत्सर्गसमिति	तहेव-तेमज
समिइ-समिति (सम्यक् प्रवृत्ति)	य-वळी

गाथार्थः— ईर्यासमिति-भाषासमिति-एषणासमिति-आदानभंडमत्तनिक्खेवणासमिति- अने उत्सर्गसमिति (अथवा पारिष्ठापनिकासमिति) ए पांचसमिति, तेमज वळी मनगुप्ति वचनगुप्ति अने कायगुप्ति (ए आठ प्रवचनमाता) ते संवर तत्त्व छे (अर्थात् ए ८थी कर्म रोकाय छे.)

विस्तरार्थः— सम्यक् उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति ते समिति,अने सावद्ययोगथी निवृत्ति ते गुप्ति, नवां आवतां कर्मोने रोकवामां साधनभूत छे. तेना उत्तरभेदनुं स्वरूप कहेवाय छे.

५ समिति

आगळ युगमात्र (३॥हाथ) भूमिने दृष्टिथी जोता अने बीज-कीलोतरी-पाणी-त्रस जीव वगेरेथी सजीवभूमिने वर्जता मार्गमां चालवुं ते ईर्यासमिति

जे वचन सत्य होय अने कहेवायोग्य होय,वळी जे सत्य असत्यमिश्र न होय, अने जे बुध्धिवडे विचारेलुं होय, मधुर होय अल्प होय, कार्यप्रसंग वालुं न होय.गर्वरहित होय.तुंकारादितुच्छतारहित होय, स्वपरने हितकारी होय. मर्मवाळुं न होय इत्यादि मोक्षमार्गने अनुकूळ वचन बोलवुं ते भाषासमिति

सिद्धान्तमां कहेली विधि प्रमाणे ४२दूषणरहित आहारपाणी अंगीकार करवां ते एषणासमिति

प्रथम भूमीने चक्षुवडे जोइ प्रमार्जिने वस्त्रपात्रादिकने पण जोइ प्रमार्जीने भूमिपर मूकवां अने लेवां ते आदान समिति (आदानभंडमत्तनिक्खेवणासमिति)

प्रथम भूमिने चक्षुवडे जोइ प्रमार्जीने(निर्जीव जग्यामां) वडीनीति (झाडो) लघुनीति (पेशाब) श्लेष्म-थुंक इत्यादि देहनिर्गत अशुचिपदार्थ तेमज कोइकारणे वधेलां आहारपाणी इत्यादि परठवे

(त्यागे-विसर्जे) ते उत्सर्गसमिति (अथवा पारिष्ठापनिकासमिति) कहेवाय.

॥ ३ गुप्ति ॥

मनने सावद्य मार्गमांथी रोकी निरवद्य मार्गमां जोडवुं ते मनोगुप्ति ३ प्रकारनी छे. त्यां आर्तध्यान अने रौद्रध्यान संबंधी मनोव्यापारनो त्याग करवो ते अकुशलनिवृत्ति रूप, धर्मध्यान अने शुक्लध्यानमां मनने प्रवर्ताववुं ते कुशलप्रवृत्तिरूप, अने मनोव्यापारनो सर्वथा (केवलिपणामां योगनिरोध वखते) त्याग करवो ते योगनिरोध रूप मनोगुप्ति कहेवाय.

तथा वचननो सावद्य व्यापार रोकी निरवद्य वचन बोलवुं ते वचनगुप्ति बे प्रकारनी छे. त्यां भ्रूसंज्ञा-शिरकंपन-हस्तचालन इत्यादि संज्ञाओनो त्याग करी मौनपणुं अङ्गीकार करवुं ते मौनावलंबिनी अने वाचना-पृच्छना-परिवर्तनादि वखते मुहपत्ति राखीने बोलवुं ते वाङ्नियमिनी कहेवाय.

शंका—भाषासमिति अने वचनगुप्तिमां शुं तफावत ?

उत्तर—वचनगुप्ति ते सर्वथा वचननिरोध करवारूप अने निरवद्यवचन बोलवारूप बे प्रकारनी छे अने भाषासमिति तो निरवद्य वचन बोलवा रूप एकज प्रकारनी छे ए प्रमाणे तफावत छे. (इति नवतत्त्वावचूरि.)

कायगुप्तिने सावद्यमार्गमांथी रोकी निरवद्यमार्गमां जोडवी ते कायगुप्ति बे प्रकारनी छे. त्यां उपसर्गादि होते छते पण कायोत्सर्गादिथी चलायमान न थवुं, अने केवलिने योगनिरोध वखते शरीरव्यापारनो सर्वथा त्याग थवो ते चेष्टानिवृत्ति रूप, अने सिद्धान्तमां कहेली रीति प्रमाणे कायानुं गमन—आगमनादि रूप जे व्यापार ते चेष्टानियमिनी कायगुप्ति कहेवाय.

अवतरण—२६ मी गाथामां परिषह सामान्यथी कह्या ते
र परिषहनां नाम कहेवाय छे. तेमां पण आ गाथामां १४ परि-
ह कहे छे

॥ मूल गाथा २७ मी. ॥

ुहा पिवासा सी उन्हं, दंसा चेलारइत्थिओ ।
वरिया निसिहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा॥२७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ुधापिपासाशीतमुष्णं, दंशोऽचेलकोऽरतिः स्त्रियः ।
र्या नैषेधिकी शय्या, आक्रोशो वधो याचना ॥२७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

- ुहा—क्षुधापरिषह
- वासा-पिपासा परिषह
- सी—शीत परिषह
- न्हं-उष्ण परिषह
- दंस-दंश परिषह
- अचेल-अचेलक परिषह (नग्न- परिषह)
- अरइ—अरति परिषह
- त्थिओ—स्त्री परिषह
- चरिया—चर्या परिषह
- निसिहिया—नैषेधिकी परिषह
- सिज्जा—शय्या परिषह
- अक्कोस—आक्रोश परिषह
- वह—वध परिषह
- जायणा—याचना परिषह

गाथार्थः—क्षुधापरि०-तृषापरि०-शीतपरि०-उष्णपरि०
-दंशपरि०-अचेलकपरि०-अरतिपरि०-स्त्रीपरि०—चर्यापरि०—
नैषेधिकीपरि०-शय्यापरि०-आक्रोशपरि०-वधपरि०-याचनापरि०

विस्तरार्थ—पूर्वगाथामां ५ समिति अने ३ गुप्तिनुं स्वरूप
कह्यु हवे आ गाथाथी २२ परिषहनुं स्वरूप कहेवाय छे.

क्षुधाने सहन करवी पण सदोष आहार न ग्रहण करवो ते क्षुधा परिषह. :श्री उत्तराध्ययनजीमां कह्युं छे के-" शरीर क्षुधावडे व्याप्त थये छते तपस्वी अने पराक्रमी साधु फळादिक छेदे नहिं, छेदावे नहिं, रांधे नहिं, अने रंधावे पण नहि. काकजंघावनस्पति सरखां अतिकृश (दुर्बल) बाहु जंघादिक थये छते, अने शरीरमां एकली नसो देखातीहोय तेवुं दुर्बल शरीर थयेछते पण आहार पाणीनुं परिमाण जाणनार मुनि मनने दिलगीर कर्या विना संयम मार्गमां विचरे "

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां हस्तिमित्र नामना श्रेष्ठि पोतानी स्त्रीना मरणवियोगथी वैराग्य पामी पोताना पुत्र हस्तिभूतिसहित दीक्षा अंगीकारकरी, त्यारबाद भोजकट देश तरफ विहार करतां मार्गमां महा अरण्यनी अंदर हस्तिमित्र मुनिने पगमां मोटो कांटो वाग्यो के एक पगलुं पण आगळ चालवाने अशक्त थया. बीजा मुनिओए उपाडीने नगरमां पहोंचाडवानुं कह्या छतां पण हस्तिमित्रमुनिए कह्युं के मारुं मरण नजीकमां आवेलुं होवाथी हवे हुं कोइने श्रम आपवा इच्छतो नथी माटे आ भयंकर अरण्यमांथी तमो सर्व कुशळतापूर्वक नगरमां जाओ अने हुं तो अहिंज देहत्याग करीश. त्यारबाद मुनिओ विहार करी गया, परन्तु पुत्र मुनिने पिता परथेना प्रेम छोडी आगळ जवुं अशक्य थइ पडयुं जेथी पितामुनिए घणु समजाव्या छतां पण पुत्रमुनि पितानी सेवामांज रह्या. त्यारबाद हस्तिमित्रमुनि काळधर्म पाम्या छतांपण पुत्रमुनि मोहथी आवजाव्या करे छे. हवे पितामुनि काळधर्म पामी देव थया त्यां अवधिज्ञानथी अरण्यमां पडेलुं पोतानुं कलेवर अने पुत्र यतिने देखी ते देवे कलेवरमां प्रवेश करी पुत्रने गोचरी जवा माटे कह्युं. पुत्रे कह्युं के आ अरण्यमां गोचरी कोण आपे ? त्यारे पितादेवे कह्युं के वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ देवाथी वृक्षोनी अंदर रहेला लोक गोचरी आपशे. ए प्रमाणे पितानुं वचन अंगीकार करी पुत्र वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ कही उभो रहे छे.

तृषाने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण सदोष पाणी न
परंतु ते तृषापरिषह कहेवाय. श्री उत्तरा०मां कह्युं छे के " ए
ने मार्गमां जतो, तृषाथी व्याकुळ थयेलो, सुकाइ गयेला मुख
लो, पण मुनि (पाणी संबंधि शास्त्रोक्त) मर्यादानुं उल्लंघ
न करे "

त्यारे देवमायाथी वृक्षनी अंदरथी नीकळेलो मनुष्यनो अलंकृत
हाथ गोचरी व्होरावे छे. आ प्रमाणे केटलाक दिवस व्यतीत थया
बाद पुनः तेज मुनिओ विहार करता आ अरण्यमां आव्या,
अने आ सर्व बनाव देखी आश्चर्य पामी पुत्रने पिता मरण पा-
म्या छे. अने निरंतर सदोष एवा देवपिंडनो तुं आहार करे
छे ए प्रमाणे घणी शिखामण आपवाथी ते पुत्रमुनि पण पुनः
दोषनी आलोचना लइ मुनिओनी साथे रह्या. अहिं केटलाक
आचार्य फळादिक आहार होते छते पण गोचरीनी विधिथी
आहार पाणी लीधां माटे पुत्रे क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे
अने केटलाक कहे छे के वृद्ध एवा पिता मुनिए अतिकष्ट
छतां फलाहारादि नहि करी मरण अंगीकार कर्युं माटे पिता-
मुनिए क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे. (अपेक्षापूर्वक बन्ने
वात सत्य छे.)

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां धनमित्र नामना वणिके
धनशर्मा पुत्र सहित दीक्षा लइ बीजा मुनिओ सहित एलगपुर
तरफ विहार करतां मार्गमां मध्यान्हकाळे धनशर्मा बालमुनि
ग्रीष्मऋतुना सख्त तापथी अत्यंत तृषाकुल थया. जेथी बाल-
वानी शक्ति ओछी थतां वारंवार पाछळ रही जाय छे. धनमित्र
पिता पोताना पुत्रना प्रेमथी समुदायथी पाछळ रही पुत्र
साथे चाले छे. त्यारबाद रस्तामां नदी आवतां पुत्रप्रेमथी
कह्युं के हे वत्स! हुं जाणुं छुं के तने तृषा लागी छे छतां मा
री पासे निर्दोष पाणी नहि होवाथी शुं करूं ? परन्तु आ नदी-
नुं पाणी पोतानो जीव बचाववाने माटे पी ! कारण के अत्यन्त आप-
दामां बुद्धिमानो पण निषेध करेलु कार्य विन उपाये अंगीकार
करे छे. श्रीनिशाथमां कह्युं छे के " जो मेघक्रिया रक्षण कर-

क्षुधाने सहन करवी पण सदोष आहार न ग्रहण करवो ते क्षुधा परिषह. :श्री उत्तराध्ययनजीमां कह्युं छे के-" शरीर क्षुधावडे व्याप्त थये छते तपस्वी अने पराक्रमी साधु फळादिक छेदे नहिं, छेदावे नहिं, रांधे नहिं, अने रंधावे पण नहि. काकजंघावनस्पति सरखां अतिकृश (दुर्बल) बाहु जंघादिक थये छते, अने शरीरमां एकली नसो देखातीहोय तेवुं दुर्बळ शरीर थयेछते पण आहार पाणीनुं परिमाण जाणनार मुनि मनने दिलगीर कर्या विना संयम मार्गमां विचरे "

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां हस्तिमित्र नामना श्रेष्टि पोतानी स्त्रीना मरणवियोगथी वैराग्य पामी पोताना पुत्र हस्तिभूतिसहित दीक्षा अंगीकारकरी, त्यारबाद भोजकट देश तरफ विहार करतां मार्गमां महा अरण्यनी अंदर हस्तिमित्र मुनिने पगमां पयो कांटो वाग्यो के एक पगलुं पण आगळ चालवाने अशक्त थया. बीजा मुनिओए उपाडीने नगरमां पहोंचाडवानुं कह्या छतां पण हस्तिमित्रमुनिए कह्युं के मारुं मरण नजीकमां आवेलुं होवाथी हवे हुं कोइने श्रम आपवा इच्छतो नथी माटे आ भयंकर अरण्यमांथी तमो सर्वे कुशळतापूर्वक नगरमां जाओ अने हुं तो अहिंज देहत्याग करीश. त्यारबाद मुनिओ विहार करी गया. परन्तु पुत्र मुनिने पिता प्रत्येना प्रेम छोडी आगळ जवुं अशक्य थइ पडयुं. जेथी पितामुनिए घणुं समजाव्या छतां पण पुत्रमुनि पितानी सेवामांज रह्या. त्यारबाद हस्तिमित्रमुनि काळधर्म पाम्या छतांपण पुत्रमुनि मोहथी जीवताज जाणे छे. हवे पितामुनि काळधर्म पामी देव थया त्यां अवधिज्ञानथी अरण्यमां पडेलुं पोतानुं कलेवर अने पुत्र वर्त्तनने देखी ते देवे कलेवरमां प्रवेश करी पुत्रने गोचरी जवा माटे कह्युं. पुत्रे कह्युं के आ अरण्यमां गोचरी कोण आपे ? त्यारे पितादेवे कह्युं के वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ देवाथी वृक्षोनी अंदर रहेला लोक गोचरी आपशे. ए प्रमाणे पितानुं वचन अंगीकार करी पुत्र वृक्षोनी आगळ धर्मलाभ कही उभा रहे छे,

तृषाने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण सदोष पाणी न वापरवुं ते तृषापरिषह कहेवाय. श्री उत्तरा०मां कह्युं छे के " एकान्ते मार्गमां जतो, तृषाथी व्याकुळ थयेलो, सुकाइ गयेला मुखवाळो, पण मुनि (पाणी संबंधि शास्त्रोक्त) मर्यादानुं उल्लंघन न करे "

त्यारे देवमायाथी वृक्षनी अंदरथी नीकळेलो मनुष्यनो अलंकृत हाथ गोचरी व्होरावे छे. आ प्रमाणे केटलाक दिवस व्यतीत थया बाद पुनः तेज मुनिओ विहार करता आ अरण्यमां आव्या. अने आ सर्व बनाव देखी आश्चर्य पामी पुत्रने पिता मरण पाम्या छे, अने निरंतर सदोष एवा देवपिंडनो तुं आहार करे छे ए प्रमाणे घणी शिखामण आपवाथी ते पुत्रमुनि पण पुनः दोषनी आलोचना लइ मुनिओनी साथे रह्या. अहिं केटलाएक आचार्य फळादिक आहार होते छते पण गोचरीनी विधिथी आहार पाणी लीधां माटे पुत्रे क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे अने केटलाएक कहे छे के वृद्ध एवा पिता मुनिए अतिकष्ट छतां फलाहारादि नहि करी मरण अंगीकार कर्युं माटे पितामुनिए क्षुधापरिषह जीत्यो एम कहे छे. (अपेक्षापूर्वक बन्ने वात सत्य छे.)

१ दृष्टान्त—उज्जयिनी नगरीमां धनमित्र नामना वणिके धनशर्मा पुत्र सहित दीक्षा लइ बीजा मुनिओ सहित एलगपुर तरफ विहार करतां मार्गमां मध्यान्हकाळे धनशर्मा बाळमुनि ग्रीष्मऋतुना सख्त तापथी अत्यंत तृषाकुल थया. जेथी बालकनी शक्ति ओछी थतां वारंवार पाछळ रही जाय छे. धनमित्र पिता पोताना पुत्रना प्रेमथी समुदायथी पाछळ रही पुत्र साथे चाले छे. त्यारबाद रस्तामां नदी आवतां पुत्रप्रेमथी कह्युं के हे वत्स! हुं जाणुं छुं के तने तृषा लागी छे छतां मारी पासे निर्दोष पाणी नहि होवाथी शुं करुं! परन्तु आ नदीनुं पाणी पोतानो जीव बचाववाने माटे पी! कारण के अत्यन्त आपदामां बुद्धिमानो पण निषेध करेलुं कार्य विन उपाये अंगीकार करे छे. श्रीनिशाथमां कह्युं छे के "जो भेदक्रिया रक्षण कर-

पाने सर्वथा असमर्थ होय तो निषिद्धक्रिया पण आचरवी, जेम राजमार्ग घणा कादवथी खराब थयो होय तो पंडितो पण बीजा अवळा मार्गे थइने जाय छे. " वळी आ नदीनुं पाणी पीने पछीथी आलोचना लइ शुद्ध थजे. ए प्रमाणे पुत्रने उपदेश दीधा छतां पण पुत्र पाणी पीतो नथी तेथी बाळमुनि मने देखशे त्यांसुधी लज्जाथी पाणी नहि पीये एम विचारी पितामुनि नदी उतरीने शीघ्र पुत्र देखी न शके तेटले दूर चाली गया. हवे अहिं आगळ चालवाने असमर्थ बाळमुनि नदीमां रह्या छता विचारवा लाग्या के आ वखते हुं जळ पीने पश्चात् गुरु पासे प्रायश्चित लइश एम विचारीने पाणीनी अंजली भरी पीवामाटे मुख आगळ आणे छे तेटलीवारमां अहो जैनतत्त्वने जाणनार हुं अपवाद मार्गनुं आलंबन लइ असंख्यजीवात्मक एक बिन्दुवाळा पाणीमां रहेला असंख्य जीवोने मारी एक जीव माटे केम हणुं? इत्यादि भावना भावी अंजळीमां भरेलुं जळ यतनापूर्वक नदीमां मूकी दइ महाकष्टे नदी उतरी नदीना किनारापर पडया. अने धर्मनी दृढतापूर्वक तृषाना व्याकुळपणाथी उत्तम समाधिए काळ करी ते बाळमुनि देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थया. त्यां अवधिज्ञानथी पोतानो पूर्वभव देखी अने आगळ जइ बाळमुनिनी राह जोता उभा रहेला पिताने देवपणाथी तर्त पोतना मृतकलेवरमां प्रवेश करी पितानी पासे जइ पहोच्यो. अने बन्ने मुनि मार्गमां समुदाय भेगा थइ गया. हवे सर्व मुनिओ तृषावडे व्याकुळ थयेला जोइ देवमुनिए रस्तामां गोकुळ बनावी दहिं छाश व्होरावी तृषारहित कर्या. ए प्रमाणे मार्ग मोटो होवाथी वच्चे वच्चे घणां गोकुळ बनावी मुनिओनी तृषा शान्त करी त्यारबाद पोतानी मायाजाळ मुनिओने जणाववा माटे ते देवे आगळ जता मुनिओनुं छेल्ला गोकुळने स्थाने उपधिनुं वींटणु भुलावी दीधु. ते मुनि दूर जइने पोतानी उपधि संभारी पाछा वळ्या त्यां उपधीनुं वींटणु तो देख्युं पण गोकुळ न देख्यु. त्यांथी ते वींटणुं लइ समुदायमां आवी मल्या अने वींटणुं देख्यु पण गोकुळ नहोतुं एम कहेवाथी सर्वेए अनुमान कर्यु के ए सर्व देवकृत होवुं जोइए. तेटलामां ते देवे प्रगट थइ पिता सिवायना सर्व मुनिने नमस्कार कर्यो.. पितामुनिने नहि नमवार्नु

शीत (ठंडी) ने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण अग्नि वगेरे सदोषावरणथी निवारवी नहिं ते शीतपरिसह. कह्युं छे के " रुक्ष शरीरवाळा अने गामे गाम विहार करता मुनिने कोइ वखत अत्यन्त शीत लागे तोपण शीतना भयथी स्वाध्यायादि-अवसरनुं उल्लंघन न करे, तथा मारे शीत निवारणकरवानुं मकान विगेरे साधन नथी, कांबळ वस्त्र वगेरे नथी, हुं अग्नि तापुं इत्यादि शीत चिंतवन मुनि न करे "

कारण पूछवाथी देवे पोतानो सर्व वृत्तांत जणाव्यो. के आषाढमुनिए मने सचित्त प्रष्ठ पीवानी आज्ञा आपवाथी हुं वंदना करतो नथी. जो ए आज्ञा प्रमाणे वर्त्यो होत तो दुर्गतिमां अनेक भव भ्रमण करत. वळी तेज पिता तेज गुरु अने तेज पूज्य कहेवाय के जे पोताना पुत्रादिने उन्मार्गे न प्रवर्तावे. ए प्रमाणे देवनी हकीकत सांभळी सर्व मुनिओ आश्चर्यसहित नगरमां पधार्या अने देव पण पोताने स्थाने गयो.

¹ दृष्टान्त—राजगृहीनगरीमां चार मित्रवणिकोए श्रीभद्रबाहु स्वामी पासे दीक्षा लइ उत्तम योग्यता प्राप्त करी एकाकी विहारप्रतिमा (अभिग्रह) अंगीकार करी. ए प्रतिमामां एवो अभिग्रह होय छे के विहार अथवा भोजन त्रीजे प्रहरेज थाय अने त्रीजो प्रहर पूर्ण थइ चोथा प्रहरना प्रारंभमां जे ज्यां होय ते मुनिए त्यांज उभा रही बीजा ७ प्रहर सुधी प्रतिमाए (काउस्सग्गादि ध्यान विशेषमां) रहेवुं. ए प्रमाणे ते चारे मुनिओए एकाकि विहारस्वरूप अंगीकार करी विहार करता त्यांज राजगृहनगरमां पधार्या. ए वखते भरशियाळानी हेमन्त ऋतु चाले छे. अत्यंत शीत पडे छे. हवे ते चारे मुनिओ वैभारगिरिपर आव्या हता त्यांथी नगरमां त्रीजे प्रहरे गोचरी करी पुनः वैभारगिरि तरफ जाय छे त्यां एक मुनिने वैभारगिरिनी गुफाने द्वारे आवतां, बीजा मुनिने नगरना उद्यानमां आवतां, त्रीजा मुनिने उद्याननी पासे, अने चोथा

याने सर्वथा असमर्थ होय तो निषिद्धक्रिया पण आचरवी, जेम राजमार्ग घणा कादवयी खराब थयो होय तो पंडितो पण बीजा अवळा मार्गे थइने जाय छे. " वळी आ नदीनुं पाणी पीने पछीथी आलोचना लइ शुद्ध थजे. ए प्रमाणे पुत्रने उपदेश दीधा छतां पण पुत्र पाणी पीतो नथी तेथी बाळमुनि मने देखशे त्यांसुधी लज्जाथी पाणी नहि पीये एम विचारी पितामुनि नदी उतरीने शीघ्र पुत्र देखी न शके तेटले दूर चाली गया. हवे अहिं आगळ चालवाने असमर्थ बाळमुनि नदीमां रह्या छता विचारवा लाग्या के आ वखते हुं जळ पीने पश्चात् गुरु पासे प्रायश्चित लइश एम विचारीने पाणीनी अंजली भरी पीवामाटे मुख आगळ आणे छे तेटलीवारमां अहो जैनतत्त्वने जाणनार हुं अपवाद मार्गनुं आलंबन लइ असंख्यजीवात्मक एक बिन्दुवाळा पाणीमां रहेला असंख्य जीवोने मारा एक जीव माटे केम हणुं? इत्यादि भावना भावी अंजळीमां भरेलुं जळ यतनापूर्वक नदीमां मुकी दइ महाकष्टे नदी उतरी नदीना किनारापर पडया. अने धर्मनी दृढतापूर्वक तृषाना व्याकुळपणाथी उत्तम समाधिए काळ करी ते बाळमुनि देवलोकमां देवपणे उत्पन्न थया. त्यां अवधिज्ञानथी पोतानो पूर्वभव देखी अने आगळ जइ बाळमुनिनी राह जोता उभा रहेला पिताने देखवाथी तुर्त पोताना मृतकलेवरमां प्रवेश करी पितानी पासे जइ पहोच्यो. अने बन्ने मुनि मार्गमां समुदाय भेगा थइ गया. हवे सर्व मुनिओ तृषावडे व्याकुळ थयेला जोइ देवमुनिए रस्तामां गोकळ बनावी दहि छाश व्होरावी तृषारहित कर्या. ए प्रमाणे मार्ग मोटो होवाथी वच्चे वच्चे घणां गोकुळ बनावी मुनिओनी तृषा शान्त करी त्यारबाद पोतानी मायाजाळ मुनिओने जणाववा माटे ते देवे आगळ जता मुनिओनुं छेल्ला गोकुळने स्थाने उपधिनुं वींटणु भुलावी दीधुं. ते मुनि दूर जइने पोतानी उपधि संभारी पाछा वळ्या त्यां उपधीनुं वींटणु तो देख्युं पण गोकुळ न देख्युं. त्यांथी ते वींटणुं लइ समुदायमां आवी मळ्या अने वींटणुं देख्युं पण गोकुळ नहोतुं एम कहेवाथी सर्वेए अनुमान कर्यु के ए सर्व देवकृत होवुं जोइए. तेटलामां ते देवे प्रगट थइ पिता सिवायना सर्व मुनिने नमस्कार कर्यो. पितामुनिने नहि नमवानुं

तो तमे दोतेज गोचरीए करो. कारण के पितानी पेठे हवहमेश कोण गोचरी लावीने आपशे ! तापना उपर ढाम मरतां प वचनो सांभळी अत्यंत दिलगीरीपूर्वक अरहन्नक मुनि बीजा मुनिओनी साथे भिक्षा लेवा माटे गया. कोइ पण वखते उपाश्रयनी बहार नहि निकळेला अरहन्नकमुनिने आ ग्रीष्मऋतुना तापमां घेर घेर फरी गोचरी लाववाना परिश्रमथी घणो खेद थयो. पग वेळुथी दाझे छे. मस्तक सूर्यथी तपी जाय छे. इत्यादि अनेक वेदनाथी व्याकुळ थइ गभराइ गयेला अरहन्नक मुनि बीजा मुनिओथी पाछळ रही कोइक शेठनी हवेली नीचे विसामो लेवा बेठा. ते वखते ते हवेलीनी स्वामिनी स्त्री के जेनो पति प्रथम मरण पाम्यो छे ते आ नवयुवान अने कोमळ अंगवाळा रुपवान मुनिने जोइ कामातुर थइ दासी मोकलीने भिक्षाना मिषथी मुनिने हवेली उपर पोतानी पासे बोलाव्या. अने अनेक प्रकारना उपायो करी मीठुं मीठुं बोली मुनीने पोताने आधीन कर्या. मुनि पण साधुपणाना कष्टथी कंटाळेला होवाथी आ स्त्री साथे गृहवास मांडी रह्या. हवे भिक्षाचर्याए निकळेला सर्व मुनिओए उपाश्रयमां आवी जुए छे तो अरहन्नक मुनिने देख्या नही तेथी मुनिओए नगरमां सर्व ठेकाणे तपास करावतां पण अरहन्नकमुनिनो पत्तो लाग्यो नहि. त्यारे अन्ते मुनिओए तेनी माता साध्वीने खबर मोकली के तमारो अरहन्नकमुनि क्यां छे ? ते संबंधि अमोए शोध करी छतां खबर मळी नथी माटे तमो पण शोध करावो. आ समाचार सांभळतांज माता साध्वी एकदम स्नेहना वशथी विलाप करती नगरमां हे अरहन्नक ! हे अरहन्नक ! एम बुमो पाडती बजारे बजार गलीए गली अने घेरेघेर शोधवा निकळी. एम फरी फरीने ज्यारे ते हवेलीना म्हेल नीचे आवी त्यारे हे अरहन्नक ! हे अरहन्नक ! एम बुमो पाडती साध्वीने अने बीजा भेगा थयेला लोकोनो कोलाहल गवाक्षमां बेठेला अरहन्नके नीचे देख्यो. अने मारी माता मारे माटे आवी दुर्दशामां आवी पडी छे एम चिन्तवी पुनः वैराग्य उत्पन्न थयो. अने करेला अघोर कर्मनो अति प

गरमीने सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण सदोष आचरणथी शीतलता न सेववी ते उष्णपरिषह कहेवाय. कह्युं छे के "गरमीथी तपेली पृथ्वी-रेती-अने शिलादिकथी, तृषावडे उत्पन्न थता दाहथी, अने सूर्यनां किरणोनी गरमीथी संताप पामेला मुनि चन्द्र-चन्दन-पवन इत्यादिथी मने शाता क्यारे थशे? एवी दीनता न राखे. तथा उष्णताथी संताप पामेला मुनि स्नान न इच्छे, गात्र पर जळ सिंचन न करे, अने कपडादिथी वायु पण न नाखे."

मुनिने नगरना दरवाजा बहार आवतां त्रीजो प्रहर समाप्त थवाथी ते मुनि महात्माओ ते ते स्थानेज कायोत्सर्गध्याने उभा रह्या. त्यां गुफाद्वारे रहेला मुनि पर्वतनी अत्यंत शीत लागवाथी समाधिपूर्वक पहेले प्रहरे कालधर्म पाम्या. बीजा मुनि पर्वतनी नीचे झाडी हेठे लागवाथी बीजे प्रहरे, त्रीजा मुनि त्रीजे प्रहरे, अने चोथा मुनि चोथे प्रहरे कालधर्म पाम्या. ए प्रमाणे जेम ए चारे मुनि महात्माए शीतपरिषह सहन कर्यो तेम अन्य मुनिए पण शीतपरिषह सहन करवो. तेमज श्रावके पण यथायोग्य शीतपरिषह सहन करवो.

४ दृष्टान्त—तगरा नामनी नगरीमां दत्त नामे वणिक, भ... तेनी भद्रा नामे स्त्री छे तेओने अति कोमळ अंगवाळो अने सुकुमार अरहन्नक नामे नानो बालक छे. अर्हन्मित्राचार्य नामे धर्माचार्यथी वैराग्य पामी ते दंपती नाना बालक सहित दीक्षा अंगीकार करी. हवे दत्तमुनि पोते लावी लावी भिक्षा [illegible] पोताना बालमुनिने पोषे छे. पण ते अरहन्नक कोई दिवस [illegible] भिक्षा लेवा गयो नहीं. पीता मुनिना [illegible] [illegible] पण [illegible] [illegible] [illegible] ? अथवा कोण निषेध करी शके! हवे [illegible] दत्तमुनि कालधर्म पाम्या अने अरहन्नकमुनि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दिवस सुधी तो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

वस्त्रनो सर्वथा अभाव होते अथवा तो जीर्णप्राय अने अल्प वस्त्र होते वस्त्र प्राप्तिनुं दीन चिंतवन न करवु ते अचेलक परिषह कहेवाय (अहिं चेल एटले वस्त्र एवो अर्थ जाणवो.) कह्युं छे के— " अतिजीर्ण वस्त्र थयां छे ते फाटवाथी थोडा दिवसमां हुं वस्त्र विनानो थइश, अथवा मारा जीर्ण वस्त्र देखीने कोइ गृहस्थ नवां वस्त्र आपशे ए प्रमाणे दीन चिंतवन न करे पण आ जीर्ण वस्त्र जो फाटी जशे तो मने जिनकल्पी सरखुं अचेलकपणुं प्राप्त थशे. अने जो नवां प्राप्त थशे तो स्थविरकल्पगत सचेलकपणुं प्राप्त थशे, बन्ने धर्मने हितकारी छे एम जाणी मुनि दीनता न करे "

एमां पिपासाथी शरीरवडे जो आ प्राणीओने तृप्ति थती होय तो थती पीडा शुं विशेष छे? ए प्रमाणे हांसनी अत्यन्त पीडाने सहन करता धनशर्ममुनिए प्राणत्याग कर्यो. ए प्रमाणे अन्यमुनि पण समभावे आवश्य दंशपरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—दशपुरनगरमां सोमदेव नामनो ब्राह्मण अने रुद्रसोमा नामे तेनी स्त्री श्राविका छे. तेमने आर्यरक्षित अने फल्गुरक्षित नामना बे पुत्र थया. त्यां आर्यरक्षित पितानी पासे विद्या भणी अधिक अभ्यास माटे पाटलीपुत्र नगरे जइ वेद-वेदांगादि चौद विद्याओ भणी दशपुरनगरे आव्यो ते वखते नगरना राजा अने नगरना लोकोए पण घणा आडंबरथी सामेया करी नगरप्रवेश कराव्यो. पछी घेर आवी पोतानी माताने नमस्कार करवा गयो त्यारे माता अति उदासीन थइने बेठेली छे. पुत्र कहे के माता हुं आटली विद्याओ भणी राजा वगेरेनुं सन्मान देखवा छतां अतीव हर्षनी प्राप्ति करी तुं मारी पासे नमस्कार करवा आव्यो छतां तुं उदासी केम थइ गइ छे? माताए कह्युं के पुत्र ! तुं अनेक विद्याओ भण्यो पण ते सर्व संसारनी वृद्धि करनारी छे. अने तेथी तुं परभवमां

डांस-मच्छर-मगतरां वगेरे क्षुद्र जंतुओए उपजावेली पीडा सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण ते जीवोनुं अशुभ न चिंतवुं ते दंशपरिषह कहेवाय. कयुं छे के—" मच्छरादि जन्तुओ शरीरनुं मांस-रुधिर खाता होय तोपण उद्वेग न करवो, तेओने उडाडवा नहिं, मनथी पण तेओना पर द्वेष न लाववो, अने तेओने न हणवा परन्तु ते तरफ बेदरकार रहेवुं "

आताप करवा लाग्यां. अने त्रीजे उतरी माताने पगे लाग्यां, माता पण अरहन्नकने देखी पूरण शुद्धिमां आवी अने अनेक प्रकारमां शीखामण आपी फरीथी चारित्र अंगीकार कराव्युं. अरहन्नक मुनिए पण पुनः चारित्र अंगीकार करी उत्कृष्ट वैराग्यथी गुरुनी आज्ञा मागी नगर बहार ग्रीष्मऋतुना सख्त तापथी तपेली धगधगती शिलापर चारे शरण लइ पादपोपगम अनशन अंगीकार कर्युं, अने पंच परमेष्ठिनुं स्मरण करता अरहन्नकमुनिनुं शरीर एक मुहूर्तमात्रमां माखणना पिंडनी पेठे गळी गयुं. अने काळ करी देवलोके गया. ए प्रमाणे अरहन्नकमुनिए पण उष्णपरिषह सहन कर्यो.

१ दृष्टान्त:--चंपानगरीमां जितशत्रुराजाना पुत्र श्रमणभद्रे धर्मघोषसूरि पासे चारित्र अंगीकार करीने उत्कृष्ट वैराग्यथी गुरुनी आज्ञापूर्वक एकाकी विहारप्रतिमा अंगीकार करी. हवे श्रमणभद्रमुनि विहार करता शरदऋतुना समयमां कोइक मोटा अटवीमां प्रवेश्या, रात्र प्रतिमाए (काउस्सग्गे) रह्या छे ते समये डांस मच्छरना तीक्ष्ण मुखवाळा हजारो जीव तेमनी कायाने वळगी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

हवे अहिं आर्यरक्षितना पिताने सर्व समाचार मलतां घणा संदेशा मोकल्या छतां पण पुत्र नहिं आववाथी फल्गुरक्षितने तेडवा माटे मोकल्यो. श्रीवज्रस्वामिए श्रुतोपयोग मूकी जाण्युं के हवे आगल अभ्यास नहिं करी शके. अने अहिं पुनः आवशे पण नहिं जेथी मारी पछु विद्या मारी पासेज रही जशे.

हवे आर्यरक्षितने प्रथम सूरिपद मल्युं छे तेओ फल्गुरक्षितनी साथेज विहार करता पोताने नगरे आव्या त्यां आर्यरक्षितना उपदेशथी राजा अने नगरजनो पण अनन्य भक्तिवाला थया. माता रुद्रसोमाए पण पुत्रआचार्यपासे घणा कुटुंब सहित दीक्षा लीधी अने राजाए सम्यक्त्वव्रत अंगीकार कर्युं. पण पुत्री अने पुत्रवधू वगेरेनी आगल हुं नग्न सरखो (काछडी मोल्या विना छूटे पछे) केम उभो रहुं ? एवी लज्जाथी सोमदेवे दीक्षा लीधी नहिं. पण निरन्तर उपाश्रयेज रहे छे. आर्यरक्षिताचार्ये घणो उपदेश दीधो त्यारे सोमदेव पिताए कह्युं के जो जोड पगरखां-छत्री-पीतांबर-अने कमन्डल राखवानी आज्ञा आपो तो हुं दीक्षा लउं आचार्ये पण कोइरीते पिताने ममतारथी लाववानी बुद्धिए ते सर्व अनुज्ञा आपी दीक्षा अंगीकार करावी. अने स्याद्वाद चेटचांक बालकोने युक्तिथी नमस्कार नहिं करतां मश्करीओ करे अने उपदेश आपे तेवी युक्ति शीखवाडी धीरे धीरे सर्व चीजो छोडावी आखरे पीतांबर रह्युं ते छोडाववाने आचार्ये युक्ति शोधे छे तेटलामां कोइक मुनि अनशन करी कालधर्म पाम्या. ते वखते पितामुनिनुं पीतांबर छोडाववाने युक्ति रची कह्युं के आ मुनिने कांधे धरी लइ जाय तो घणी निर्जरा थाय. ते लाभ लेवाने बीजा सर्व प्रथम शीखवेला मुनिओ अन्योन्य उत्सुकता धरी उठ्या. त्यारे सूरिए कह्युं के ए निर्जरानो लाभ तमो सर्व लइ जाओ तो अमारा पिता वगेरे वयोवृद्धो शुं लाभ लइ शके ? एम कहेवाथी सोमदेवमुनिए पूछ्युं के, आ मुनिनो देह हुं लाने उपाडीश. त्यारे सूरिए कह्युं के, देहने उपाडी लइ जतां भविष्यमां उपसर्गो

महाकष्ट पामीश, ए संबंधि विचार करवाथी मने अत्यंत उदासिनता थइ छे माटे जो तु एक पण विद्या परभवना सुखनी अने मोक्ष प्राप्त करवानी विद्या भण्यो होत तो मने उदासीनता न होत. आर्यरक्षिते कयु हे माता ते कइ विद्या अने कोनी पासे मळे छे के जेथी मोक्षनी प्राप्ति थाय. त्यारे माताए कयु के जो तारो मारा वचनपर विश्वास होय अने तु भक्तिवाळो होय तो स्वर्ग अने मोक्ष आपनार एवा दृष्टिवादनो अभ्यास शेलडीनी वाडीमां पधारेला श्री तोसलीपुत्राचार्य पासे कर. पुत्रे विचार्यु के जे शास्त्र भणवाथी मातानु मन रीझतु नथी तेवा शास्त्रोवडे शु? एम विचारी तुर्त आज्ञा लइ तोसलीपुत्राचार्य पासे चाल्यो. तेटलामा प्रभातकाळे प्रथम मळवाने उत्सुक एवो आर्यरक्षितना पितानो मित्र भेट तरीके ९ सांठा आखा अने एक सांठानो ककडो लइ आवी सामे मळ्यो अने भेट करी. ते भेट स्वीकारी कयु के आ शेलडी तमो मारी माताने सोंपशो अने हु कोइक कार्यार्थे बहार जाउं छु. ते पितामित्रे ते शेलडी तेनी माताने सोंपी सर्व विगत कहेवाथी माताए विचार्यु के आ शेलडी शकुनमां सामी मळी छे माटे मारो पुत्र जरुर ९॥ पूर्व जेटली विद्या भणशे. हवे आर्यरक्षित तोसलीपुत्राचार्य पासे जइ अभ्यास कराववानी विनंति करतां आचार्ये कयु के जो दृष्टिवाद भणवु होय तो दीक्षा अंगीकार कर. त्यारे आर्यरक्षिते कयु के आप मने दीक्षा आपो पण अहि नगरना राजा-प्रजा सर्व मारी दीक्षा तोडावशे माटे अहिंथी तुर्त बीजे स्थाने चाल्याजवु ठीक छे. तोसलीपुत्राचार्ये पण तुर्त ते आर्यरक्षितने साथे लइ अन्यत्र विहारकरी त्यां दीक्षा आपी. श्रीवीरना शासनमां ए प्रथम ज शिष्यचोरी थइ. त्यारबाद आर्यरक्षितने अगीयारअंग अने १२मुं दृष्टिवाद पोताना अभ्यास जेटलु सारी रीते भणाव्यु अने आगळ अभ्यास करवा माटे श्रीवज्रस्वामि पासे मोकल्या त्यां जइ ९॥ पूर्व संपूर्ण अभ्यासकर्यां आगळ तेटली बुद्धिना अभावे कंटाळो आववाथी अने पिताना उपराउपरी संदेशा आववाथी अभ्यास न थयो.

हवे आर्यरक्षितना पिताने सर्व समाचार मळतां तेणे संदेशा मोकल्या छतां पण पुत्र नहि आववाथी फल्गुरक्षितने तेडवा माटे मोकल्यो. श्रीवज्रस्वामिए दुर्लभपणे मूकी सांपडेलं हवे आगळ अभ्यास नहि थई शके अने वळि पुनः आववुं पण नहि बनी शके तेथी मारी पासे रहो अहीं.

हवे आर्यरक्षितने प्रथम मुनिपद मळ्युं छे तेथी फल्गुरक्षित साथे विहार करता पोताने नगरे आव्या त्यां आर्यरक्षितना उपदेशथी राजा अने नगरजनो पण अनन्य भक्तिवाळा थया माता रुद्रसोमाए पण पुत्रआचार्यपासे पण गुरुप महिन दीक्षा लीधी अने राजाए महोत्सवपूर्वक अंगीकार कर्युं. पण पुत्रो अने पुत्रनु वगेरेनो आनन्द हुं शाने सहुं ? कारण के नग्नपणुं जिना हुं थई शकुं । केम बने एवुं ? एवी लज्जाथी सोमदेवे दीक्षा लीधी नहि पण निरन्तर उपाश्रयेज रहे छे. आर्यरक्षिताचार्ये घणो उपदेश दीधो त्यारे सोमदेवे विचार कर्यु के जो जनोई पहेरवानी छूट धोतीयुं अने कमण्डलु राखवानो आज्ञा आपो तो हुं दीक्षा लउं आचार्ये पण धीरजथी विचार करवाथी रजोहरणनी पूर्वे ते सर्व कबुल करीने दीक्षा अंगीकार करावी.

अने त्यारबाद वखतोवखत शास्त्रोक्ते मुनिनी सामाचारी नहि पाळतां छत्रादिक्षी करे अने उपदेश आपे तेथी दूषित होवाथी धीरे धीरे सर्व वस्तु छोडावी आखरे धोतीयुं रह्युं ते छोडाववाने आचार्य युक्ति करी छे तेटलामां कोईक मुनि अनशन करी कालधर्म पाम्या ते वखते विधायुक्तिनु धोतीयुं छोडाववाने दूषित रह्यो छतां वि. आ मुनिने कांधे धरी लइ जाव तो घणो निर्जरा थाय. ते लाभ लेवाने दीक्षा सर्व उत्तम लोकोनो वाळीयो मुनिओ मृतकने उपाडवा तैयार थया त्यारे सोमदेव मुनि पण निर्जराना लाभ माटे तैयार थई लइ जावा लाग्या एटलामां पाछळथी छोकराओ धोतीयुं खेंची लइ गया ? पण सोमदेवमुनि पुत्रने पूछे छे. आ मुनिने केम छूं ? आवे उपदेश. त्यारे नहि कहुं के, तेमने उपाडी लइ जवा जोईए. . . . . त्यारे

महाकष्ट पामीश, ए संबंधि विचार करवाथी मने अत्यंत उ
दासिनता थइ छे माटे जो तुं पद पण विना परमपदना सुख
अने मोक्ष प्राप्त करवानी विद्या भण्यो होत तो मने उदासीनता
न होत. आर्यरक्षिते कह्युं के माता ते कइ विद्या अने कोनी पासे
भणे छे के जेथी मोक्षनी प्राप्ति थाय. त्यारे माताए कह्युं के
जो तारो भाव वधवाना विश्वास होय अने तुं भक्तिवालो हो-
य तो त्यागे अने मोक्ष आपनार एवा दृष्टिवादनो अभ्यास ए-
हदीमां वाडीमां पधारेला श्री तोसलीपुत्राचार्य पासे कर. पुत्रे
विचार्युं के जे शास्त्र भणवाथी मातानुं मन रीझे तेवा
शास्त्रने हुं' एम विचारी पुत्र आवा थइ तोसलीपुत्राचार्य
पासे आव्यो. तेटलामां स्नानथाटे प्रथम मळवाने उत्सुक एवा
आर्यरक्षितना पितानो मित्र भेट लइने १ मोटा आवा अने
एक सांठानो ढगली थइ आवी सामे मळ्यो अने भेट करी. ते
भेट स्वीकारी कह्युं के आ ठेकडी तमो मारी माताने सोंपजो
अने हुं कंइक कार्यार्थे बहार जाउं छुं. ते विनाविचे ते ठेकडी
तेमो माताने सोंपी तेवा विनय करवाथी माताए विचार्युं के
आ ठेकडी शकुनमां सामी मळी छे माटे मारो पुत्र अवश्य ९॥
पूर्व जेटली विद्या भणशे. हवे आर्यरक्षित तोसलीपुत्राचार्य पासे
जइ अभ्यास करवानी विनति करतां आचार्ये कह्युं के जो
दृष्टिवाद भणवुं होय तो दीक्षा अंगीकार कर. त्यारे आर्यरक्षिते
कह्युं के आप मने दीक्षा आपो पण अहिं मारा राजा-प्रजा
सर्वे मारी दीक्षा लेवाथी माटे अहिंथी पुत्रे बीजे स्थाने जा-
वानुं ठीक छे. तोसलीपुत्राचार्य पण पुत्रने ते आर्यरक्षितने
साथे लइ अन्यत्र विहार करी त्यां दीक्षा आपी. शिष्यनी चो-
रीमां ए प्रथम ज शिष्यचोरी थइ. त्यारबाद आर्यरक्षिते
अगीयारअंग अने १२मुं दृष्टिवाद पासेना अभ्यास जेटलुं मारी
तीर्थ समाप्युं अने आगळ अभ्यास करवा माटे श्रीवज्रस्वामि पा-
से मोकल्या त्यां जइ ९॥ पूर्व संपूर्ण अभ्यासकर्यो आगळ भेद-
नी बुद्धिना अभावे कंटाळो आववाथी अने विनाना उत्कटथी
जेटला आववाथी अभ्यास न कर्यो.

हवे अहिं आर्यरक्षितना पिताने सर्व समाचार मळता घणा संदेशा मोकल्या छतां पण पुत्र नहि आववाथी फल्गुर-क्षितने तेडवा माटे मोकल्यो. श्रीवज्रस्वामिए श्रुतोपयोग मूकी जाण्युं के हवे आगळ अभ्यास नहि करी शके अने अहिं पुनः आवशे पण नहि जेथी मारी बधु विद्या मारी पासेज रही जशे.

हवे आर्यरक्षितने प्रथम सूरिपद मळ्युं छे तेओ फल्गुर-क्षितनी साथेज विहार करता पोताने गामे आव्या त्यां आर्य-रक्षितना उपदेशथी राजा अने नगरजनो पण अनन्य भक्तिवाळा थया. माता रुद्रसोमाए पण पुत्रआचार्यपासे घणा कुटुंब सहित दीक्षा लीधी. अने राजाए सम्यक्त्वव्रत अंगीकार कर्युं. पण पुत्रो अने पुत्रवधू वगेरेनी शरम हुं मान करतो (काछडी सांख्या विना छुटे नहि) केम उभो रहुं ? एवी लज्जाथी सोमदेवे दी-क्षा लीधी नहि. पण निरन्तर उपाश्रयेज रहे छे. आर्यरक्षिता-चार्ये घणो उपदेश दीधो त्यारे सोमदेव पिताए कह्युं के जो जनोइ-पगरखां-छत्री-पीतांबर-अने कमण्डलु राखवानी आज्ञा आ-पो तो हुं दीक्षा लउ आचार्ये पण कोइरीते पिताने संसारथी तारवानी बुद्धिए ते सर्व अनुज्ञा आपी दीक्षा अंगीकार करावी. अने स्याद्वाद गंटलीक वाक्योने युक्तिथी समस्कार नहि करतां म्हाराओ करे अने उपदेश आपे तेथी युक्ति दीर्घकाळे धीरे धीरे सर्व चीजो छोडावी आखरे पीतांबर रह्युं ते छोडाववाने आचार्ये युक्ति शोधी छे तेटलामां कोइक मुनि अनशन करी कालधर्म पाम्या. ते वखते पितामुनिनु पीतांबर छोडाववाने युक्ति रची कह्युं के आ मुनिने कांधे धरी लइ जाय तो घणी निर्जरा थाय. ते लाभ लेवाने बीजा सर्व प्रथम शीघ्रपणे गयेला मुनिओ अत्यन्त उत्सुकता धरी उठ्या. त्यारे सोमदेव कह्युं के जो ए निर्जरानो लाभ तमो सर्व लइ जाओ तो अमारा जेवा वगेरे वृद्धजनो शु लाभ लइ शके ? एम कहेवाथी सोमदेवमुनिए पुत्रने पूछ्यु के, आ मुनिनो देह हुं लाने उपाडीश. त्यारे सरि-ए कह्युं के, देहने उपाडी लइ जतां भविष्यमां घणो थाय उपसर्ग

चारित्र मार्गमां विचरतां जे अरति-अधैर्य अथवा अरुची उपजे तेने निवारवी अर्थात् चारित्रमां धैर्य राखवुं ते अरतिपरिषह कहेवाय. अरति उपज्या छतां पण चारित्र मार्गनो त्याग न करवो,

---

थशे ते सहन करवानी जो शक्ति होय तो उपाडो त्यारे पिता मुनीए उपसर्ग सहननुं पण कबूल करी मुनिनो देह उपाडी रस्ते चालेछे. बीजा पण अनेक कुटुम्बना मुनीओ अने साध्वीओ तथा श्रावक श्राविकादि चाले छे. तेटलामां प्रथमथी शीखवी राखेला बालकोए आवी प्रथम सोमदेवमुनिना प्रथम काछडी काढी नाखी, पुनः आगळ चालतां, पाछली काछी नाखी अने आगळ चालतां आस्तु पीतांबर काढी लइ सहन नग्न करी मूक्या के एकदम बीजा साधुओए प्रथमथी लावेलो चोलपट्ट पहेरावी दीधो. अने त्यारपछी ते चोलपट्ट हमेशा माटे कायम रह्यो अने तेथी सोमदेवमुनि अचेल परिषह सहनकरवा लाग्या तेम बीजा मुनिओए पण अचेल परिषह सहन करवो.

(आ दृष्टान्त अति संक्षेपमां उतार्युं छे. माटे विस्तरार्थीए उत्तराध्ययनथी जाणवुं.)

१ दृष्टान्त—अचलपुर नगरमां जीतशत्रु राजाना युवराज पुत्रे श्री राधाचार्य पासे दीक्षा अंगीकार करी ते वखते उज्जयिनीमां आर्यराध नामना आचार्य हता तेमना केटलाक शिष्यो तगरा नगरीमां अभ्यास करवा गया हता. हवे राधाचार्य पण युवराजमुनि सहित तगरा नगरीए आव्या. त्यां तेओ आर्यराधाचार्यना शिष्योने आर्यराधाचार्यना कुशल समाचार पूछतां तेओए कह्युं के उज्जयिनीमां सर्वरीते कुशलता छे पण राजा अने पुरोहितना बे पुत्रो मुनिओने बहु कदर्थना करे छे ते सांभळी युवराज मुनिए विचार्युं के.ते राजपुत्र मारो भत्रीजो थाय छे, ते साधुओने कदर्थना उपजावी दुर्गतिमां न जाय तो ठीक एम विचारी गुरुनी आज्ञापूर्वक युवराज मुनि उज्जयिनिमां आवीने राजपुत्रने घेर गोचरी गया ते वखते रा-

राजपुत्र अने पुरोहितपुत्रे कह्युं के हे साधु ! तुं नाटक करी जाणे छे के नहि ? युवराज मुनिए कह्युं के हुं नाटक सारी रीते करुं छुं पण तमो मृदंग ताल बजावो ते सांभळी ते बन्ने मृदंगादि बजाडवा लाग्या. अने युवराज मुनि नृत्य करे छे तेटलामां नृत्यना वेगने माटे मृदंगादिनो ताल नहि मळवाथी युवराजर्षिए कह्युं के -हे मोळहा सरखा ! मूर्खना शिरोमणि ! तमो नृत्यने माटे वाजित्र बराबर केम बजावता नथी ! ते सांभळीने क्रोधातुर थयेला बन्ने पुत्रो मुनिने मारवा आव्या, तेवारे मुनिए ते पुत्रोने कुटी कुटीने हाडकानां सांधा उतारी नाख्या जेथी बन्ने कुमारो क्रन्दन करवा लाग्या अने मुनि तुरत बहार निकळी पोताने स्थाने आव्या. आ वातनी राजाने खबर पडतां अनेक उपाये पण हाडसंधिओ ठेकाणे न आववाथी तेज मुनिनी पासे आवी करगरीने विनंति करतां मुनिए घणो टपको आपी कह्युं के महा उद्धत ए कुमारो जो चारित्र अंगीकार करे तो बन्नेने साजा करुं अन्यथा नहि. निरुपाये राजाए कबूल करवाथी मुनिए प्रथम लोच कर्या बाद हाडनी संधिओ ठेकाणे लावी साजा करी दीक्षा आपी. त्यां राजपुत्र तो सारी रीते चारित्र पाळे छे. अने पुरोहित पुत्र तो आ मुनिए मने बलात्कारे दीक्षा आपी इत्यादि विचारथी अरति —उद्वेगपूर्वक अनादर पणे चारित्र पाळे छे. तेथी राजपुत्र चवीने देवलोक देवादि उत्तम भव करी मोक्षे गयो अने पुरोहित पुत्र घणीवार दुर्गतिमां रखडी अर्हद्दत्तना भवमां राजपुत्रना जीवे बोध आपवाथी अरतिपरिषह सहन करी चारित्र पाळ्युं जेथी सद्गति पाम्यो. ए बन्नेना भवनो विस्तार उत्तराध्ययनथी जाणवो

स्त्रीए विषयेच्छा पूर्ण करवाने माटे करेला उपसर्ग (-उपद्रव सम्यक्प्रकारे सहन करवा पण लेशमात्र विकार थवा देवो नहिं अने स्त्रीने आधीन थवु नहिं ते स्त्री परिषह कहेवाय.

ग्रामानुग्राम विहार करवो पण एक स्थाने नियतवास करी रहेवु नहिं ते चर्यापरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—"गृहस्थादिकनी साथे रागनो प्रतिबन्ध राख्या विना मुनि ग्रामानुग्राम जिनाज्ञा प्रमाणे विचरे."

---

१ दृष्टान्तः—पाटलीपुत्र नगरमां नन्दराजाना शकडाल नामे मन्त्रीनो पुत्र स्थूलिभद्र प्रथम १२ वर्ष सुधी कोशा नामनी वेश्याने त्यां अनेक मोज शोख भोगवी पोताना पितानुं राजाने हाथे दुर्मृत्यु थयेलु जाणी वैराग्य पामी श्री संभूतिसूरि पासे दीक्षा लइ तेज कोशा वेश्याने घेर गुरुनी आज्ञा लइ षड्रस भोजन करता चित्रशाळामां चोमासु रहेवा आव्या ते वखते पहेलांनी प्रीति संभारी अनेक रीते स्थूलिभद्रमुनिने हाव भाव विकारादिथी लोभाव्या छतां पण महा निर्विकारी मुनिए चोमामाने अन्ते काउस्सग्ग पारी कोशाने उपदेश आपी श्राविका बनावी अने राजा मोकले ते पुरुष सिवाय अन्य पुरुषने अङ्गीकार न करवो इत्यादि यथा योग्य व्रत उच्चराव्यां. जेथी गुरुए पण सर्व मुनिओनी आगळ दुष्करकार दुष्करकार एम वेवार कही बोलाव्या ए प्रमाणे स्त्रीपरिषहने सम्यक् प्रकारे सहन कर्यो.

२ दृष्टांतः—कोल्लकिर नगरमां संगम नामना आचार्य अत्यन्त वृद्ध थया छता पण एकज उपाश्रयमां नव भाग कल्पीने नवकल्प विहारनी विधि साचवता हता (इत्यादि आदि सघळो दृष्टिान्तनुं वृत्तान्त उत्तरा०मांथी जाणवुं) ते प्रमाणे अन्य मुनिओए पण बनता प्रयत्ने नवकल्पी विहारनी विधि

स्मशान- शून्यगृह-वृक्षनी नीचे-इत्यादि स्थाने दुष्चेष्टा र-हित बेसे छतां पोते डरे नहिं, तेम बीजाने डरावे पण नहिं ते नैषेधिकी परिषह कहेवाय

उंची-नीची एवी प्रतिकूल शय्या मळतां उद्वेग न करवो ते शय्यापरिषह कहेवाय. कह्युं छे के-" अनुकूळ शय्या (-वसति-स्थान अथवा शयन) मळतां हर्ष न करे, अने प्रतिकूळ शय्या मळतां उद्वेग न करे के अहो ! हुं केवुं सुन्दर स्थान पाम्यो छुं ? अथवा मने सारी शय्या पण प्राप्त न थइ ? इत्यादि हर्ष विषाद न करे "

---

१ दृष्टांतः-गजपुर नगरना कुरुदत्तपुत्र नामे शाहुकार पुत्र दीक्षा लइ एकलवी विहारप्रतिमा अंगीकार करी साकेतपुरनी पासे काउस्सग ध्याने उभा रह्या ते दरम्यानमां केटलाक गोवाळोनां ढोर चोर चोरी लइ गया, ते गोवाळ चोरने शोधता शोधता मुनि पासे आवी चोर देख्या छे के नहिं ? एम पूछतां कांइपण उत्तर नहिं मळवाथी अत्यन्त क्रोधवाळा थइ लीली माटीनी मुनीना मस्तकपर पाळ बांधी तेमां अग्नि नाखवाथी मुनिनुं मस्तक सळगी उठयुं अने गोवाळ नासी गया मुनिए समता राखी अग्निनुं कष्ट सहन कर्युं. अने थोडीवारमां मुनि काळ करी परलोक पाम्या. ए प्रमाणे अन्य मुनिओए पण नैषेधिकी परि० (स्थान परिषह) सहन करवो.

२ दृष्टान्तः-कौशाम्बी नगरीना यज्ञदत्त विप्रना सोमदत्त अने सोमदेव नामना बे पुत्रो दीक्षा अंगीकार करी विहार करी गया. एके दिवसे कुटुंबीओने मद्यपानी इत्यादि दोष करीप आवतां तेओना मातपिता अवन्तीमां जइने रह्या छे एवोलवर मळतां ते बे मुनिओ पण अवन्तिमां आव्या, ते देशमां केटलाक ब्राह्मणो पण दारु पीवाना रिवाज हतो तेथी त्यां

वचनथी अथवा कायाथी करेली ताडना तर्जना सम्यक् प्रकारे सहन करवी पण तेनुं अशुभ न चिंतववुं ते आक्रोशपरिषह कहेवाय. कह्युं छे के—"बीजो कोइ मुनिने आक्रोश करे तो मुनिए तेनापर सामो आक्रोश न करवो कारण तेथी मुनि पण अज्ञानी सरखो थाय छे. माटे पोते आक्रोश न करे."

व्होरवा आवेला मुनिओने बीजी वस्तुमां मदिरा भेळवीने (कोइक आचार्य कहे छे एकली मदिरा ज) ब्राह्मणनी स्त्रीओए व्होरावी. अजाणपणे आ बे मुनिए तेनो आहार कर्या बाद चक्कर वगेरे आववाथी मदिरा प्राप्त थयेली जाणी अतिपश्चात्ताप करी विचार्युं के आहारना अर्थीने कोइक वखत आवो अयोग्य आहार पण वापरवो पडे माटे मूळथी आहारनोज त्याग करवो एम धारी नदीने कांठे पडेला सूका काष्ठ उपर बन्ने मुनिए पादोपगमन अनशन अंगीकार कर्युं त्यां अकाळे पण मेघवृष्टि थवाथी नदीमां पुर आवतां मुनि सहित ते सूकुं काष्ठ पण नदीमां तणायुं छतां मुनि उतर्या नहिं. अन्ते ते काष्ठ तणाइने समुद्रमां आव्युं, त्यां जळचर जीवोए करेली अनेक पीडा सहन करी धीरता वाळा बन्ने मुनि काळ करी गया. जेम आ बे मुनिओए शुष्ककाष्ठ जेवी शय्या सहन करी तेम अन्य मुनिओए पण शय्यापरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—कोइक नगरमां महा तपस्वी मुनिना तपथी आकर्षायली कोइक देवी ते मुनिने निरन्तर नमस्कार करवा आवती. अने कहेती के हे पूज्य ! मारा लायक कोइ कार्य होय तो फरमावो परन्तु निस्पृही मुनिने शुं कार्य होय ! एक वखते कोइक विप्रनुं दुर्वचन सांभळीने क्रोधवाळा थयेला ते मुनि ते विप्रनीसाथे युद्धकरवा लाग्या. पण तपपडे दुर्बळथयेली देहवाळा मुनिने हृष्टपुष्ट थया ब्राह्मणे मुठी मारनाज जमीन पर पाडी नाख्या. अने उपरथी पण घणी ताडना तर्जना करी

पोतानो वध करे तो पण सम्यक् प्रकारे सहन करवो पण
करनारनुं अशुभ लेश मात्र पण न चिंतववुं ते वधपरिषह
ाय.

विप्र मामीगयो मुनि पण महादुष्टे उठीने स्वस्थाने आव्या
रात्रीना वखतमां आवेलो ते देवीए नमस्कार करी हाता
ो. परन्तु मुनिए धर्मलाभ पण न आप्यो. त्यारे देवीए
यत्न करगरीने नहिं बोलवानुं कारण पूछतां मुनि उंचे शा-
देवीने ठपको देवा लाग्या के. तारो नमस्कार अने तारी
के जाणी लीधी, कारणके ब्राह्मणे मने आटलो उपसर्ग कर्या
ा पण तें कंइ निवारण न कर्युं, माटे हवेथी हुं तने बोला-
श पण नहिं. आ प्रमाणे मुनिनुं वचन सांभळी देवीए कहुं
हे पूज्य! हुं ते वखते हाजर हती पण मने जणने क्रोधाविष्ट
ववाथी तमो वेमां मुनि कोण ! अने विप्र कोण ? ते मने
पर पडी नहिं. आ जवाब सांभळी मुनि ते पापनी आलो-
ना करी संयममार्गमां स्थिर थया. ए प्रमाणे अन्य मुनिओए
ा आक्रोशपरिषह सहन करवो.

१ दृष्टान्तः—श्रावस्तिनगरीना जितशत्रुराजाना पुत्र स्कंदक
मारे श्री मुनिसुव्रतस्वामीनो धर्मदेशना सांभळी वैराग्यपामी
ना लीधी ते वखते कुंभकार नगरमां दंडकीराजानो प्रधान
लक नामे हतो ते कोइ राजकार्यना कारणथी श्रावस्तिनग-
मां आवी राजसभामां जैनमुनिओनी निन्दा करवा लाग्यो.
ते राजसभामां स्कन्दक मुनिए निरुत्तर करवाथी अत्यन्त अप'
ान थयेलुं समजी मुनिपर द्वेष राखे छे. हवे अनुक्रमे स्कन्दक
ुनि बहुश्रुत थयेला ने योग्य जाणी स्कन्दकनी साथे दीक्षित
थयेला ५०० मुनिओनो परिवार श्री सुव्रतप्रभुए स्कन्दकमुनिने
ीधो आचार्यपद आप्युं हवे ते ४९९ शिष्यो सहित स्कन्दका-
ार्य पोताना बनेवी दन्डकी राजाना नगरे जवाने आज्ञा मा-
ती प्रभुए सर्वने मरणान्त उपसर्ग दर्शाव्यो ने पुनः पूछतां
ुं के तारा विना सर्व आराधक थशे अने तुं विराधक थइश
म सांभळवा छतां पण स्कंदकाचार्ये ५०० शिष्योनुं भलुं थशे
ापण श्रेयस्कर छे एम विचारी दंडकी राजाना नगर बहार

बगीचामां आव्या ते वखते अभवी एवा पालक प्रधाने प्रथमनुं अपमान संभारी ते बगीचामां हजारो छूपां शस्त्र दटावी राजाने कहेवा लाग्यो के हे राजन् मुनिपणुं दुष्कर लागवाथी आपनो साळो स्कंदक पांचसें सुभटोने साधु वेष पहेरावी आपनुं राज्य लेवा आवेल छे, अने ज्यारे आप वन्दना करवा जशो त्यारे तमने हणीने तमारुं राज्य लेशे, आ कथनमां जो तमारे खात्री जोइए तो तेओए पोताना निवास स्थानमां छूपां शस्त्र दाटवां छे ते देखाडुं पछी राजाए ते दाटेलां शस्त्र देखवाथी अत्यन्त क्रोधवाळो थइ सर्व मुनिओने बांधी पालकने कह्युं के आ सर्वने योग्य शिक्षा तारे हाथे करवी. बिलाडीने मळेला दूध सरखी आ आज्ञा सांभळतांज पालक प्रधाने घाणी तैयार करावी अनुक्रमे एकेक मुनिने घाणीमां घाली पीलवा लाग्यो ते वखते आचार्य पण ते मुनिने समाधि संभळावे छे जेथी दरेक मुनि समाधि पामी अन्तकृत केवली थइ मोक्षे जाय छे. हवे ४९८ शिष्यो पीलाइ रह्या बाद एक बालमुनिने पीलवा रह्या छे त्यारे सूरिए कह्युं के प्रथम मने पीलीने पछी आ बालमुनीने पीलजे कारणके मने केइक राग होवाथी आ बाळमुनिनुं कष्ट मारी नजरे नहि जोइ शकाय. छतां पण पालक पापीए सूरिने बहु दुःख उपजाववाना हेतुथी प्रथम बालमुनिने पील्यो, बबो आचार्यने क्रोधाग्नि व्याप्यो अने नियाणुं कर्युं के जो मारा तपनुं फल होय तो अहींथी काळ करीने हुं आखा देशनो नाश करनार थाउं. एम नियाणुं करता आचार्यने पण पालक पापीए घाणीमां घाली पीली नाख्या. आचार्य काळ करीने अग्निकुमार देवमां उत्पन्न थया, त्यां अवधिज्ञानवडे पोतानो पूर्वभव जाणी दंडकी राजाए आपेली आज्ञा अने पालक पापीनुं अघोर कृत्य जोइ अत्यन्त द्वेष आववाथी आ स्कंदक देवे दण्डकी राजानो आखो देश बाळीने भस्म कर्यो. ते आजे दंडकारण्य नामे ओळखाय छे. आ पालकने शास्त्रमां अभवी जीव कहेलो छे. ए प्रमाणे जेम ४९९ शिष्योए वध परिषह सहन कर्यो तेम अन्यमुनिओए पण वधपरिषह सहन करवो परन्तु स्कंदकाचार्यवत् चारित्रनुं मोक्षफळ हारी जवुं नहि.

गृहस्थनी आगळ भीक्षा मागतां लज्जा न पामवी ते याचना परिषह. कयुं छे के—"गोचरीए विचरता मुनिने गृहस्थनी आगळ हाथ धरवो युक्त नथी, एथी तो गृहवास श्रेष्ठ छे, एम मुनिए न चिन्तवे" मुनिने दरेक वस्तु मागीनेज लेवानी होय छे, अने माग्या विना जमीन परथी एक तृणखलुं के दांत खोतरवानी सळी पण उपाडाय नहि. एवो मुनिनो आचार होवाथी मोटा गृहस्थोए या राजपुत्रोए दीक्षा लीधी होय अने पछी घेरेघेर मान अपमान सहन करतां भीक्षा मागवाने भमवुं पडे तो तेओने आ परिषह विशेष होय छे. कारणके जे राजाओ अने धनवानो गृहस्थपणामां अनेक परजीवोने दान आपी उद्धार करनार हता ते राजाओ अने धनवानोने दीक्षा लीधा बाद बीजानी आगळ हाथ लांबो करवो पडे अने कदाच अपमानादि करे तो ते पण सहन करवुं पडे ए तेओने दुष्कर होय छे माटे उत्तम वैराग्यवाळाए एम न विचारवुं के हुं बीजानी आगळ हाथ केम धरुं ? ए याचना परिषह सहन कर्यो कहेवाय,

---

अवतरण—२२ परिषहमांथी पूर्व गाथामां १४ परिषह कह्या अने हवे आ गाथामां शेष रहेला ८ परिषह कहे छे.

---

१ दृष्टान्त-कृष्णवासुदेवना भाइ ढंढणमुनिए चारित्र लीधा बाद पोताना स्पर्धी कोइओने मोट लाभनी ओर पोते वनमां ज रहेवा लाग्या अने नगरमां नहि आववानो अभिग्रह कर्यो. त्यां वनमां आवेला कुमारको लागेली तेओ लोवरी सहन करता हता. परन्तु हुं वन लब्धमां मानिक होइ ने आ कुमारको आगळ भिक्षा केम मागुं ? एवो लेश पण विचार आवतो नहि. तेवी रीते आ ढंढणमुनिए याचनापरिषह सहन कर्यो तेम अन्य मुनिओए पण याचना परिषह सहन करवो.

॥ मूळ गाथा २८ मी. ॥

अलाभरोगतणफासा, मलसक्कारपरीसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परीसहा २८

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अलाभरोगतृणस्पर्शौ, मलसत्कारपरिषहौ
प्रज्ञाऽज्ञानसम्यक्त्वा, न्येतानि द्वाविंशति परिषहाणि॥२८॥

॥ शब्दार्थ ॥

अलाभ–अलाभ परि०	पन्ना–प्रज्ञापरि०
रोग–रोगपरि०	अन्नाण- अज्ञान परि०
तणफासा–तृणस्पर्श परि०	सम्मत्तं—सम्यक्त्व परि०
मल—मलपरि०	इय—ए
सक्कार सत्कार परि०	बावीस—बावीश
परिसहा—परिषह	परिसहा–परिषह छे.

गाथार्थः—अलाभपरि०—रोगपरि०—तृणस्पर्शपरि०—मल-परि०—सत्कारपरि०—प्रज्ञापरि०—अज्ञानपरि०—सम्यक्त्व परि० ए २२ परिषह (ते संवर तत्त्व) छे.

विस्तरार्थः—वांछेली (मागेली) वस्तुनी प्राप्ति न थाय तो उद्वेग न करवो पण लाभान्तराय कर्मनो उदय विचारवो ते अलाभपरिषह.

---

१ ढंढणकुमार — [illegible] दुःखित [illegible] अने [illegible] मुनि [illegible] वखते [illegible] ज्यां [illegible]

रकने कह्युं के जे वने जन सुता छे तेओनुं हुं भक्षण करीश.
ने तुं जो तेओनुं रक्षण करनार होय तो मारी सामे युद्ध
ा तैयार था. दारुके युद्ध करवानुं अङ्गीकार करी पिशाच-
साथे युद्ध करवा मांड्युं पण पिशाचने जीतवो अशक्य
ी अत्यन्त क्रोधायमान थयो. हवे अहिं दारुक जेम जेम
प करतो जाय छे तेम तेम कोपरूप पिशाच पण पोतानुं
रीर वधारतो जाय छे. ए प्रमाणे वारंवार शरीर वधारता
शाचनी सामे युद्ध करीने हाथ पग पण छोलाइ गया छे ते
तमां एक प्रहर पूर्ण थवाथी सत्यकने उठाडी पोते सूइ गयो.
त्यकने पण तेवी रीते युद्ध करतां पोताने जेम जेम कोप थ-
ो जाय छे तेम तेम पिशाच शरीर वधारतो जाय छे. ने
द्धमां जीत मळती नथी. ए प्रमाणे करतां त्रीजो प्रहर पूर्ण
वाथी बळदेवने उठाडी सत्यक सूइ गयो. बळदेवे पण क्रोध-
हित तेवीरीते युद्ध करवाथी विजय नहिं मळतां चोथो प्रहर
र्ण थये कृष्णने उठाडीने पोते सूइ गयो. कृष्णनी साथे पण
शाच युद्ध करे छे. ते वखते कृष्णना मनमां घणो संतोष उ-
न्न थयो के हुं वासुदेवनीसाथे आवुं युद्ध करनार आ जबरो मल्ल
ोण हशे ! कारणके शूरवीर पुरुषोनी सामे शूर पुरुष युद्ध
करनार होय तो तेओ घणा खुशी थाय छे. तेथी कृष्णवासुदेव
जेम जेम सन्तोष पामे छे तेम तेम आ पिशाचनुं शरीर घटतुं
जाय छे. अने ए प्रमाणे वासुदेवना सन्तोषथी पिशाच घटतो
घटतो तद्दन बारीक थइ गयो जेथी कृष्णे ते सूक्ष्मरूप
वाळा पिशाचने पोतानी नाभीमां राखी मूक्यो. हवे प्रभात थ-
तां कृष्णे सर्वने छोलायला हाथ पगवाळा देख्या अने पूछ्युं
त्यारे रात्रीनी बनेली सर्व हकीकत कही त्यारपछी कृष्णे ना-
भीमांथी ते पिशाचने बहार काढी देखाडी कह्युं के रात्रे जे
आव्यो हतो ते कोप-क्रोध पिशाच हतो. एनी साथे तमो कोप
करी युद्ध करवा लाग्या तेथी ए कोप पोतानी देह वधारतो
गयो कारणके कोपथकी कोप वृद्धि ज पामे छे, अने
तेथी तमो पराभव पाम्या, अने में सन्तोष अने शान्तताथी

शरीरे उत्पन थयेला रोगने सम्यक् प्रकारे सहन करवो पण उद्वेग करवो नहिं ते रोगपरिषह कहेवाय. अहिं जिनकल्पी मुनि होय तो थयेला रोगने निवारवानो औषधादि उपाय न करे, अने स्थविरकल्पी मुनि कोइक अवश्य कारण होय तो औषधादि कराव अन्यथा सम्यग् प्रकारे सहन करे.

युद्ध कर्युं माटे आ कोप पिशाच सूक्ष्म थइ गयो कारणके कोप क्षमावडे ज जीताय छे, ए प्रमाणे कृष्णे पिशाचमूर्त्तिवाळा कोपने जेम शान्तिथी जीत्यो तेम मुनिओए अलाभपरिषहने पण शान्तिथी जीतवो.

१ दृष्टान्त—सनत्कुमार चक्रवर्तिनुं घणुं अलौकिक रूप हतुं के जे रूपनी प्रशंसा सौधर्मेन्द्रे इन्द्रसभामां करवाथी बे देव रूपनीपरीक्षा करवा आव्या ने रूप देखी अति आश्चर्य पाम्या. पण ते वखते चक्रवर्ति स्नान करता हता तेथी विप्ररूप धारी देवोने गर्वथी राजसभामां रूप देखवा आववानुं कह्युं. देवो ए राजसभामां आवी रूप देखी मस्तक हलावतां कारण पूछवाथी देवोए कह्युं के जे रूप स्नान करवानी तैयारी वखते हतुं ते रुप हवे रह्युं नथी ने शरीरमां अनेक रोग उत्पन्न थया छे तेनी खात्री माटे राजाए पान खाधेलुं थुंकतां उपर बेठेली माखी मरण पामी जोइ राज्य अने देहनी असारता चिंतवतां वैराग्य वृद्धि पाम्याथी चारित्र अङ्गीकार करी अनेक प्रकारना तपथी मोटी लब्धिओ उपार्जन करी पण शरीर कुष्टादि अनेक रोगवडे व्याप्त थइ गयुं. सनत्कुमार राजर्षिए अभिग्रह कर्यो के वर्षु वर्षोने कोइ पण प्रकारना रोगनी चिकित्सा न करवी. आ दृढ अभिग्रहनी प्रशंसा सौधर्मइन्द्रे इन्द्रसभामां करवाथी पुनः अश्रद्धावाळा बे देव वैद्यनुं रूप लइ सनत्कुमार मुनि पासे आवी रोगनी चिकित्सा करवा कह्युं त्यारे मुनीश्वरे कह्युं के हे वैद्यो ! तमो जो भावरोगनी (=कर्मनी) चिकित्सा करी जाणता हो तो मारे कराववी छे. नहितर आ द्रव्यरोगनी चिकित्सा तो हुं पण करी जाणुं छुं एम कही पो

दर्भादि घास वगेरेना संथारापर शयन करनार मुनिने घास
अणीओ वगेरे वागे तेने सम्यक् प्रकारे सहन करवी ते तृण-
र्शं परिषह कहेवाय. कह्युं छे के वस्त्ररहित (–अति अल्प अने
र्णवस्त्रवाळा) रूक्ष देहवाळा एवा तपस्वीमुनिने घासना संथारा
सूतां देहपीडा थाय, अने ते उपर पुनः तडको पडवाथी
णी वेदना थाय छतां घासना वागवावडे पीडा पामेला मुनि व-
नी इच्छा न करे (आ जिनकल्पनी अपेक्षाए छे, अने स्थविर
ल्पी तो वस्त्र राखे पण खरा.)

मानुं थुंक पोतानी आंगळीए लगाडतां ज ते आंगळी सुवर्णसरखी
कान्तिवाळी थइ ते देवोने दर्शावी. इत्यादि अनेक रीते देवोए
प्रपंच कर्या छतां पण मुनिए रोगनी चिकित्सा नहि कराववा-
थी बन्ने देवो तुष्ट थइ प्रत्यक्ष स्वरूपे प्रगट थया, अने सौध-
र्म सभामां थयेली प्रशंसानी असद्दहणाथी अमो परीक्षा करवा
आव्या छे. एम जणावी अत्यन्त खुशी थइ स्वस्थाने गया.

ए प्रमाणे श्री सनत्कुमार चक्रवर्तिमुनिए जेम रोगपरिषह
सहन कर्यो तेम अन्य मुनिओए पण रोगपरिषह सहन करवो.
(अहिं उत्तराध्ययनमां काल्यवैशिक मुनिनी कथा कहीछे. परन्तु
तेने बदले मे अहिं सनत्कुमार चक्रवर्तिमुनीनी कथा कही छे)

१ दृष्टान्तः–श्रावस्ति नगरीना जितशत्रुराजाना पुत्र भद्र-
कुमारे दीक्षा अङ्गीकार करी बहुश्रुत थइ एकाकी विहारप्रतिमा
अङ्गीकार करी कोइक बीजा राज्यमां गया त्यां राजपुरुषोए
कोइक चोर वा बातमीदार जाणी तुं कोण छे इत्यादि पूछतां
जवाब नहि मळवाथी तीक्ष्ण शस्त्रो वडे मुनिनुं शरीर छोली ते
पर क्षार छांट्यो छतां पण भद्रमुनि जेम समाधिध्यानमां रह्या
तेम अन्य मुनिओए पण भद्रमुनिवत् तृणस्पर्श परिषह सहन
करवो.

शरीरे मल वगेरे उत्पन्न थाय तो तेनी दुगंछा न करतां सम्यक् प्रकारे सहन करवो ते मल परिषह. मुनिने स्नान दातण वगेरे अंगविभूषा करवानो अधिकार नहि होवाथी दांत अने शरीरे मेल-प्रस्वेद वगेरेनी उत्पत्ति थाय छे, परन्तु तेनो तिरस्कार करी मेल साफ करवाने स्नान के दातण वगेरे न आचरे पण सम्यक् प्रकारे सहन करे ते मलपरिषह कहेवाय.

बीजो माणस मुनिने अत्यंत मान सत्कार आपे तो पण गर्व न आणे ते सत्कारपरिषह.

---

१ दृष्टान्त—चम्पानगरीमां सुनन्द नामनो वणिक दरेक मुनिओने विना मूल्ये औषध आपे छे. एकवार मुनिना शरीरमां मल देखीने विचार कर्यो के आ मुनिओनो आचार सर्व रीते ठीक छे पण स्नानादि न करवुं ते ठीक नथी इत्यादि अति अशुभ चिन्तवन कर्युं ते ते काळक्षये मरण पामी कौशाम्बी नगरीमां श्रेष्ठीपुत्र थयो त्यां दीक्षा अंगीकार करी. ते वखते मुनिपणामां पूर्वकर्मनो उदय थवाथी शरीर महादुर्गंधमय थयुं के ते मुनिना शरीरनो वायु पण कोइ सहन करी शके नहि. मुनिओ पण तेने नगरमां जवाथी शासननी निंदा थाय माटे नगरमां भिक्षा लेवा मोकलता नथी. आखरे ते मुनिए कायोत्सर्गथी शासनदेवीने आराधी पोतानुं शरीर सर्व सुगन्धीदार कराव्युं के बीजाओ ते देहनो सुगन्धी सहने कस्तुरीनो पण त्याग करता नथी. परन्तु नगरमां पछी अपवाद फेलाय के आ मुनि निरन्तर सुगन्धी द्रव्योथी पोतानुं शरीर वासित करे छे. पछी आखर कंटाळी पुनः शासनदेवीने आराधी पोतानुं शरीर यथावत् दुर्गन्धमय कराव्युं जेम आ मुनिए मलपरिषह सहन न कर्यो तेम अन्य मुनिए न करवुं.

२ आ परिषहनुं ग्रहण उपलक्षणमात्र छे, पण कारणमात्र बधे समजवुं नहि.

अतिशय ज्ञाननो गर्व न करवो ते प्रज्ञापरिषह.

अज्ञानना होवाथी अज्ञानतानो खेद न करवो पण ज्ञानावरणकर्मनो उदय विचारी घनना प्रयत्ने ज्ञानमां उद्यम करवो ते अज्ञानपरिषह.

---

२ दृष्टान्तः—पूर्वधर श्री कालिकाचार्य शिष्योना अविनयथी कंटाळीने सागराचार्य पासे आव्या पण सागराचार्ये नहि ओळखवाथी उभा न थया अने तमो आ भण्या छो ? आनो अर्थ जो जाणता होय तो सांभळो इत्यादि बुद्धिना गर्वथी पोते बुद्धिशाळी छे एम जणाववाने शिष्यो आगळ विशेष अर्थ विस्तार कालिकसूरि सांभळे तेवी रीते करे छे. केटलेक दिवसे कालिकाचार्यना शिष्यो गुरुने शोधता त्यां आव्या जेथी सागराचार्यने खबर पडवाथी श्री कालिकसूरी पासे अपराधनी क्षमा मागी, ते वखते बुद्धिनो मद उतारवा माटे श्री कालिकसूरी ए नदीमांथी एक स्थाने रेती लावी एक स्थाने ढगलो वाळी एज प्रमाणे घणीवार करतां रेती ओछी ओछी थतां अति अल्प रेती रही त्यारे कह्युं के हे सागर ! सर्वज्ञनुं ज्ञान नदीनी रेती जेटलुं छे तेमांथी थोडा रेती जेटलुं ज्ञान गणधरोए ग्रहण कर्युं ते त्यारबाद शिष्यपरंपराए घटतुं घटतुं ज्ञान आवतां आ काळमां आटलुं ज ज्ञान रह्युं छे तो बुद्धिनो मद शुं करवो इत्यादि उपदेश आपी सागराचार्यनो बुद्धिमद टाळ्यो. अहिं जेम कालिकाचार्य पूर्वधर छतां पण ज्ञानना गर्वरहित होवाथी प्रज्ञापरिषहने जीतनार हता तेम अल्पश्रुतीए पण प्रज्ञापरिषह जीतवो पण सागराचार्यवत् प्रज्ञापरिषहने ताबे न थवुं.

२ पूर्वे बांधेल ज्ञानावरण कर्मनो उदय थवाथी कोइक मुनिने मा रुष—मा तुष पदना शब्दो पण शुद्ध नहि आववाथी मासतुष शब्द गणवा लाग्या जेथी तेमनुं नाम पण मासतुष मुनि प्रसिद्ध थयुं तेओए पण १२ वर्ष सुधी एज शब्द विना खेदे गणी ज्ञानावरण कर्मनो उदय विचारी आत्मचिंता करतां

तथा अनेक उपसर्ग–कष्ट प्राप्त थया छतां पण सर्वज्ञोक्त धर्म उपरनी श्रद्धा न फेरववी अने मिथ्या आचरण न आचरवुं ते सम्यक्त्वपरिषह,

---

१२ वर्षे केवलज्ञान उपार्जन कर्युं तेम अन्यमुनिए पण अज्ञानपरिषह सहन करवो

१ दृष्टान्तः--आर्य आषाढाचार्ये दरेक शिष्योने समाधिमरण करावी कह्युं हतुं के तमो देवपणे उत्पन्न थाओ तो मने एकवार मलवा आवजो परन्तु कोइपण शिष्य देवपणे उत्पन्न थया बाद मलवा आव्यो नहि जेथी आचार्यने शंका थइ के कोण जाणे देवलोक छे के नहि, अने जो न होय तो आटली कष्ट क्रियाओ व्यर्थ शामाटे करवी ? एवो विचार आववाथी धीरे धीरे आचार्य चारित्रमां मन्द थया अने आरंभसमारंभमां पण प्रवर्तवा लाग्या. पछी छेल्ली वखते मरणपामेला शिष्ये देवपणामां पोताना गुरुने पतित परिणामी जोइ उद्धार करवाना विचारथी अनेक मायाओ रची उपदेश आपी चारित्रमांने श्रद्धामां स्थिर कर्या ए संबन्धि अधिक वर्णन उत्तराध्ययनथी जाणवुं ए प्रमाणे आषाढाचार्यनी माफक अन्यमुनिए न वर्तवुं पण अनेक उपसर्ग आवतां पण श्रद्धामां अडग रहेवुं.

२२ परिषहमां कर्मोदय अने गुणस्थान,

परिषहनां नाम.	कया कर्मना उदयथी	कये गुणस्थाने
।-पिपासा-शीत- ।-दंश-चर्या-शय्या -वध-रोग-तृणस्पर्श (११)	वेदनीय	१ थी १३ सुधी.
प्रज्ञा	ज्ञानावरणना क्षयोपशमथी	१ थी १२
अज्ञान	ज्ञानाव०	"
सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय	१ थी ७
अलाभ	लाभान्तराय	१ थी १२
ाग्न्य-अरति-स्त्री नैषेधिकी-आक्रोश- याचना-सत्कार	चारित्र मोहनीय	१ थी ९ सुधी.

अहिं शीत-उष्ण, अने चर्या-नैषेधिकी ए बे बेमां शीत होय तो उष्ण न होय, चर्या होय तो नै० न होय एम कोइपण विरोधी एकेक परिषहना अभावथी एक जीवने समकाळे २० परिषह १ थी ९ गुण० सुधी. १०थी १२ गुणस्थाने १२ परिषह अने सयोगिकेवलिने ९ परिषहनो उदय समकाळे होय अने सामान्यतः अनुक्रमे २०-१४-११ परिषहनो उदय होय.

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वमां कहेला १० यति धर्म (साधु धर्म) कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा २९ मी, ॥

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो ॥२९॥

संस्कृतानुवादः

क्षान्तिर्मार्दव आर्जवो, मुक्तिः तपः संयमश्च बोद्धव्यः ।
सत्यं शौचमाकिंचनं च ब्रह्म च यतिधर्मः ॥ २९ ॥

शब्दार्थः

खंती—क्षमा धर्म	बोधव्वे ·जाणवो
मद्दव-मार्दव धर्म(निरभिमानता)	सच्चं—सत्यधर्म
अज्जव· आर्जवधर्म (सरळता)	सोअं··शौचधर्म
मुत्ती··निर्लोभता	अकिंचण- अपरिग्रहधर्म
तव· तप	बंभ—ब्रह्मचर्य
संजमे -संयम	जइधम्मो—साधुनो धर्म
अ -वळी	

गाथार्थः—क्षमा—निरभिमानता—सरळता—निर्लोभता-तप-संयम—सत्य—शौच—अपरिग्रह—अने ब्रह्मचर्य ए १० प्रकारनो साधुधर्म (ते संवरतत्त्व) छे.

विस्तरार्थः— १० यतिधर्मथी आवता कर्मोनुं रोकाण थाय छे ते.१० यतिधर्म आ प्रमाणे—

१ क्षांति—क्षमा धरवी [illegible] पण कष्ट सहन कर·

नो स्वभाव ते क्षमा अर्थात् सहनशीलता कहेवाय. त्यां क्षमा ५ कारनो छे ते आ प्रमाणे–कोइए आपणुं कांइ बगाड्या छतां आ मारो उपकारी छे माटे एनापर क्रोध करवो युक्त नहिं एम विचारीने जे सहनशीलता धारणकरवी तै उपकारक्षमा, जो एनी साथे क्रोध करीश तो ए मारुं कांइ बगाडशे एवा अभिप्रायथी अने पोतानामां सामे थवानी शक्ति नथी तेथी निर्बळताने अंगे सहनशीलता धारण करवी ते अपकारक्षमा, कर्मादिकना भयथी सहनशीलता राखे ते विपाकक्षमा, कोइना वचनथी प्रभाव नहि, अने कोइने आकरु वचन कहे नही ते वचनक्षमा, अने आत्मानो धर्म क्षमा छे एम शिक्षा करवानी शक्ति छतां पण विचारी सहनशीलता राखे ते धर्मक्षमा एज सर्वथी श्रेष्ठ छे ने एवीज क्षमा राखवी जोइए. कदाच आ क्षमा न आवे तो पण पूर्वोक्त चार क्षमाओमांनी पण कोइएक क्षमा राखवीज जोइए.

२ अज्जव–आर्जव एटले सरळता अर्थात् कपटरहितपणु ए पण संवरमार्ग छे. ज्यांसुधी मनुष्यना मनमां कोइपण वातनो दंभ–कपट रहेल होय त्यांसुधी आत्ममार्ग शुद्ध थाय नहिं माटे दंभनो त्याग करी सरळता राखवी ते आर्जवधर्म कहेवाय.

३ मद्दव–मार्दव एटले अभिमाननो त्याग करवो. ज्यां सुधी अभिमान होय छे त्यां सुधी कषायनी प्रबळता रहे छे तेथी मोक्ष मार्ग साधी शकाय नहिं माटे मुमुक्षुए निरभिमानता राखवी.

४ मुत्ति–मुक्ति एटले निर्लोभता अर्थात् कोइपण इष्ट पदार्थमां के विषयमां तृष्णा–आसक्ति न राखवी तेमुक्तिधर्म कहेवाय.

५ तव–तप एटले इच्छानिरोध करवो ते. आ धर्म निर्जरा तत्त्वमां आवे छे छतां संवरतत्त्वमां केम कह्यो ? तेनुं कारण ए छे के सर्व क्रियाओमां एवो तप उत्तम छे के जेमापीसंव

र अने निर्जरा बन्ने थाय छे. तेमां पण मुख्यत्वे निर्जरा विशेष थती होवाथी निर्जरा तत्त्वमां तपनेज मुख्य गण्यो अने अहिं तपथी संवर पण थाय छे एम सिद्ध करवा तप धर्म पण कह्यो ए तपधर्म १२ प्रकारनो छे ते आगळ कहेवाशेः

संजमें—संयम एटले पंचमहाव्रत-पांच अणुव्रत-इत्यादि अङ्गीकार करवुं ते संयमधर्म कहेवाय. ए संयम धम ५ व्रत-५ इन्द्रियनो निग्रह-४ कषायनो जय-अने ३ दंड (-मन-वचन-कायाना अशुभ व्यापार) नी निवृत्ति एम १७ प्रकारनो छे.

७ सच्चं-सत्य अर्थात् प्रिय-हितकारी-अने सायुं ए त्रण विशेषणवाळुं जे वचन बोलवुं ते सत्यवचन कहेवाय अथवा लीधेली शुभप्रतिज्ञा पाळवी ते पण सत्यवचन कहेवाय.

८ सोअं-शौच एटले पवित्रता राखवी. त्यां दातण-स्नान -मज्जन इत्यादि द्रव्यशौच.अने अध्यवसायनी परिणति शुभ राखवी ते भावशौच कहेवाय. तेमां ग्रहस्थने बन्ने प्रकारनां शौच होय छे, अने मोक्षमार्गाभिमुखी मुनिने मुख्यत्वे भावशौच होय छे, कारणके दातण-स्नान-मज्जनादि देहनी पवित्रता ने टापटीप ते सर्व शृंगारिक विषय होवाथी सर्व ब्रह्मचारी एवा मुनिमार्गमां ते देहनी टापटीपनो अवकाशज न होय ने जो तेम थवा पामे तो मुनि पण शृंगारी विषयमां रक्त थइ संसारी जेवाज थइ जाय. माटे मुनिओने दातण स्नानादि अंगसंस्कार वर्ज्य छे,

९ अकिंचणं--एटले आकिंचन धर्म. एमां अ-नहिं अने किंचण-कंइपण, अर्थात् कंइपण जातनो परिग्रह नहि ते अकिंचन (अने तद्धितमां आकिंचन) कहेवाय अर्थात् कोइपण जातनो परिग्रह संबन्धी सर्व उपाधीओ दूर थवाथी मोक्षमार्ग सुखे

शकायछे, माटे अकिंचन धर्म ते संवर रूप छे, (परिग्रहना ार प्रथम दर्शाव्या छे.)

१९ धर्म—ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मचर्य. एटले विषय वासनानो त्याग करवो ते संवररूप छे, एना १८ भेद प्रथम दर्शाव्याछे.

ए १० प्रकारना यतिधर्म—साधुधर्म कह्या, परन्तु यथायोग्य- दशे धर्म अमुक अमुक अंशे गृहस्थने पण अङ्गीकार करवा छे एमां प्रथमना चार धर्म ते चार कषायना विजयरूप छे. मां क्रोधनो जय ते क्षमा, माननो जय ते मार्दव, मायानो ते आर्जव, अने लोभनो जय ते मुक्ति धर्म कहेवाय, अहिं शब्द मृदु (-कोमलता) ना भाववाळो अने आर्जव श- ऋजु (-सरलता) ना भाववाळो छे. अर्थात् एमां मृदु शब्द अने ऋजु परथी मार्दव ने आर्जव शब्द थया छे,

---

अवतरण—आ गाथाने विषे संवरतत्त्वमां आवेली १२ भा- भावनाओमांनी ९ भावनाओ कही छे.

॥ मूळ गाथा ३० मी, ॥

ढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
सुइत्तं आसव संवरो य तह निज्जरा नवमी ॥३०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

प्रथममनित्यमशरणं, संसार एकता चान्यत्वं ।
अशुचित्वमाश्रवः संवरश्च तथा निर्जरा नवमी ॥३०॥

॥ शब्दार्थः ॥

पढमं-प्रथम	असुइत्तं- अशुचित्वभावना
अणिच्चं-अनित्यभावना	आसव-आश्रवभावना
असरणं-अशरणभावना	संवरो -संवरभावना
संसारो-संसारभावना	य तह—तथा वळी
एगया -एकत्वभावना	निज्जरा—निर्जराभावना
अन्नत्तं- अन्यत्वभावना	नवमी—नवमी

गाथार्थः—पहेली अनित्य भावना, बीजी अशरणभावना त्रीजी ससारभावना, वळी चोथी एकत्वभावना, पांचमी अन्यत्वभावना, छट्ठी अशुचित्वभावना, सातमी आश्रवभावना, तथा आठमी संवरभावना, अने नवमी निर्जराभावना

विस्तरार्थः—लक्ष्मी-कुटुंब-यौवन-शरीर-द्रव्यपदार्थो -सुख इत्यादि सर्वभावो क्षणमां उत्पन्न थइ क्षणमां विनाश पामनाराछे इत्यादि अस्थिरता-अनित्यतानुं चिंतवनकरवुंते पहेलीअनित्यभावना.

दुःख वखते अने मरण वखते राजा-चक्रवर्ति के पोतानां सगां व्हालां-तेमानुं कोइपण शरण थाय तेम नथी दुःख पण पोताने भोगववानुं छे, अने आवेला मरणने पण रोकवा कोइ समर्थ नथी इत्यादि चिंतववुं ते बीजी अशरण भावना

माता होय ते स्त्री थाय, पुत्र पिता थाय, पिता होय ते पुत्र थाय इत्यादि प्रत्येक जीव आ संसारभ्रमणमां प्रत्येक संबंधवाळो अनन्त वखत थाय छे. इत्यादि चिंतववुं ते संसारभावना,

आ जीव संसारमां एकलो आव्यो छे, एकलो जवानो छे, अने सुखदुःखादि पण एकलोज भोगवनार छे, परन्तु कोइ सहायक के साथे थवानुं नथी इत्यादि रूपे चिंतववुं ते एकत्वभावना.

शरीर-धन-कुटुंब इत्यादि अन्य छे. अने आत्मा अन्य पदार्थ छे, पण शरीरादि ते हुं आत्मा नथी इत्यादि चिंतववुं ते अन्यत्वभावना,

आ शरीर रस रुधिर-मांस-मेद अस्थि-मज्जा-ने शुक्र ए सात अशुचिमय धातुओनुं बनेलुं छे. पुरुषना शरीरमां ९ द्वार (२ चक्षु-२ कान-२ नाक-१ मुख-१ गुदा-१ लिंग) सदाकाळ अशुचि थी वहा करे छे, अने स्त्रीना १२ द्वार (२ स्तन ने १ योनि अधिक कारणके योनि बे होय छे,) निरन्तर अशुचीथी वह्या करेछे, वळी अत्तरादिसरखा सुगंधी अने शुचीपदार्थो पण आ अशुची देहना संगे अशुची रूप थाय छे, एवी उपरथी सुन्दर देखाती पण अवळो करीने देखे तो त्रास उपजावनी आ देह उपर ममत्व भाव शुं ! इत्यादि चिंतववुं ते छट्ठी अशुचीभावना.

मिथ्यात्व-अविरति-कषाय-ने योग ए चार हेतुओमांना कोइपण एक अथवा अनेक हेतुए कर्मनो आश्रव (आगमन) थाय छे. अने ज्यां सुधी कर्मनो आश्रव चालु छे, त्यां सुधी आ आत्मा सर्वथा स्वस्वरूप प्रगटाववा समर्थ नथी इत्यादि चिंतवन करवुं ते ७ मी आश्रवभावना. छे

समिति-गुप्ति-परिषह-यतिधर्म-भावना-ने चारित्रवडे नवा आवता कर्मनुं रोकाण थाय छे. इत्यादि स्वरूप चिंतववुं ते आठमी संवरभावना;

प्रकारना बाह्य तपथी अने ६ प्रकारना अभ्यन्तर तपथी कर्मनी निर्जरा (धीरे धीरे क्षय) थाय छे. इत्यादि चिंतववु ते नवमी निर्ज्जराभावना छे,

---

अवतरण—आ गाथामां बाकी रहेली ३ भावनाओ कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा ३१ मी. ॥

लोगसहाओ बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ॥ ३१ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

लोकस्वभावो बोधि, र्दुर्लभा धर्मस्य साधका अर्हन्तः।
एता भावना, भाव्याः प्रयत्नेन ॥ ३१ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

लोगसहाओ—लोकस्वभावभावना	अरिहा- अरिहंत
बोही—सम्यक्त्वभावना	एआओ--ए सर्व
दुल्लहा—दुर्लभ	भावणाओ- भावनाओ
धम्मस्स-धर्मना	भावेअव्वा—भाववी
साहगा--साधनारा	पयत्तेणं- प्रयत्नवडे

गाथार्थः—१० मी लोकस्वभावभावना, ११ मी बोधिदुर्लभभावना अने १२ मी धर्मना साधक अरिहन्त भगवन्त पण दुर्लभ छे एवी भावना (अर्थात् धर्मभावना अथवा अरिहन्त दुर्लभ भावना) ए १२ भावनाओ प्रयत्न पूर्वक भाववी (ते संवर कर्मने रोकनार छे,

विस्तरार्थः—आ लोक ६ द्रव्यथी भरेलो छे, तेनो आकार केडे हाथ दइने ऊभेला आमाणसना पुरुष सरखो छे. अधोलोकमां सात नरक-१० भुवनपतिने ८ व्यन्तर देवोनी वस्ती छे, ते

वेश वाडेना कोठीआ सरखा आकारनो छे, मध्यलोक गोळ था-
ळी सरखो १८०० जोजन जाडो ने १ राज लांबो पोळो छे ने
तेमां मनुष्य तिर्यंचनी तथा ८ वाणव्यन्तर पांच ज्योतिषीनी वस्ती
तथा असंख्य द्वीप समुद्रवाळो छे ऊर्ध्वलोक उभी करेली मृदं
गना आकारवाळो छे. ने तेमां २६ वैमानिक देवोनी व-
स्ति छे, लोकाग्रे सिध्ध शिलापर सिद्ध परमात्माओ रहे छे, सर्व
लोक १४ रज्जु प्रमाण उंचो ने नेवाइ पोळाइमां नीचे सात राज
ने मध्यलोकने स्थाने पांच राज प्रमाण छे, लोकना मध्यमां १४
राज उंची ने १ राज लांबो पहोळी थुंगळी सरखी त्रस नाडीमांज
त्रस जीवोनी वस्ती छे. शेष सर्वत्र पांच स्थावर जीवोनी वस्ति
छे, लोकने कोइए बनाव्यो नथी के कोइए धरी राख्यो नथी प-
रन्तु स्वभावतः छे. इत्यादि १४ राजलोकनुं स्वरूप चिंतववुं ते
लोकस्वभावभावना छे,

जीवने संसारमां भमतां अनन्त काळ थयो ते दरम्यानमां अ-
नन्तवार राजऋद्धि वगेरे सर्व वस्तु पाम्यो, परन्तु सम्यक्त्व (--शु-
द्धदेव--गुरु- धर्मनी श्रद्धा) प्राप्ति थइ नहिं,कारणके सम्यक्त्व प्रा-
प्ति थवी आ जीवने महा दुर्लभ छे, वळी जीवने वैराग्यादि कार-
णथी द्रव्य चारित्र पण प्राप्त थाय छे, अनेक प्रकारनी कष्टक्रिया-
ओ पण सुलभ थाय छे, परन्तु शुद्ध श्रद्धा थवी महा दुर्लभ थाय
छे, इत्यादि स्वरूप चिंतववु ते बोधिदुर्लभभावना,

हवे कदाच महा कष्टे शुद्ध श्रद्धा थाय छे तो ते शुद्ध श्रद्धा-
पूर्वक अरिहन्तनो कहेलो हेय ने उपादेयरूप भावधर्म आचरवो
महा मुश्केल छे, कयुं छे के कथनो कथे सब कोय--रहणी अ-
ति दुर्लभ होय, इत्यादि स्वरूप चिंतववुं ते धर्मदुर्लभभावना
ए उपर कहेली १२ भावनाओ प्रयत्नपूर्वक भाववी (चिंत-

वगी) के जेथी नवां आवतां कर्मोनुं रोकाण थाय.

अवतरण—आ गाथामां संवरतत्त्वमां आवेलां पांच चारित्रोमांनां चार चारित्र कहे छे.

॥ मूळ गाथा ३२ मी. ॥

सामाइअत्थपढमं, छेओवट्ठावणं भवे वीअं।
परिहारविसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ।

सामायिकमथ प्रथमं, छेदोपस्थापनं भवेद् द्वितीयं ।
परिहारविशुद्धिकं, सूक्ष्मं तथा सांपरायिकं च ॥ ३२ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सामाइअ—सामायिक चारित्र	परिहारविसुद्धीअं--परिहार विशुद्धि चारित्र
अत्थ—अथ--हवे	
पढमं--पहेलुं	सुहुमं--सूक्ष्म
छेओवट्ठावणं—छेदोपस्थापनचरित्र	तह--तथा
भवे--छे	संपरायं--संपराय
वीयं--बीजुं	च--वळी

गाथार्थः—हवे १ लुं सामायिक चारित्र, अने बीजुं छेदोपस्थापन चारित्र छे, तथा त्रीजुं परिहारविशुद्धी, अने ४ थुं सूक्ष्मसंपराय चारित्र छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां पांच प्रकारनां चारित्र कहे छे सम-एटले ज्ञान--दर्शन--चारित्रनो आय- लाभ ते समाय अने

ो सहित समय लागतां सामायिक एटले जेनावडे अथवा जे
न-दर्शन—चारित्रनो लाभ ते, अर्थात् सामायिक एटले सर्व
वद्यव्यापारना त्यागरूप सर्वविरतिचारित्र कहेवाय, अहिं
के पांचे प्रकारनां चारित्र परमार्थथी सामायिकरूप छे.
पण कंइक जातना फेरफारवडे पांच जुदा जुदा नाम पा-
ा छे. त्यां प्रथम दीक्षा अङ्गीकार करवी ते अहीं
ामायिक चारित्र कहेवाय छे. आ सामायिक चारित्र बे प्रका-
ु छे तेमां भरत अने ऐरवत क्षेत्रमां पहेला अने छेल्ला तीर्थंकरना
ासनमां ज्यां सुधी शिष्यने महाव्रतनो आरोप न कराय त्यां
धी लघु दीक्षारूप अल्पकालनु (विशेषतः ६ मासनुं) जे चा-
त्र ते इत्वर सामा० चा० कहेवाय, अने भरत ऐरवत क्षेत्रमां
ध्यना २२ तीर्थंकरना शासनमां अने महाविदेहमां सर्व मुनीओ-
 प्रथमथीज महाव्रतनो आरोप छे. ते ते यावज्जीव मुनीनो हो-
ायी तेओनु ते चारित्र यावत्कथिक सामा० चा० कहेवायछे

हवे बीजु छेदोपस्थापना चारित्र त्यां छेद एटले प्रथम जेटली
दतनी लघु दीक्षा पाळी होय ते काळ दीक्षानो नहि गणवो ते
ूर्वपर्यायनो छेद कहेवाय, अने उपस्थापना एटले पुनः महाव्रत-
ो स्थापना करवी ते ज्यांथी दीक्षापर्याय (दीक्षाकाळ) नी ग-
ाणी थाय एवी रीतनु जे पुनः चारित्र ग्रहण ते छेदोपस्थापना
ारित्र कहेवाय. आ चारित्र भरत ऐरवतमां पहेला अने छेल्ला
ीर्थंकरना शासनमां होय छे. ए चारित्रने लोकमां वडीदीक्षा कीधी
ले छे. ए चारित्र बे प्रकारनुं छे. त्यां शिष्यने ज्यारे इत्वर सामायि-
क चारित्रनु आरोपण थाय (—वडीदीक्षा अपाय) त्यारे अने ए-
क जिनेश्वरना शासनमां मुनिने बीजा जिनेश्वरनुं शासन (नुं
ारित्र) अङ्गीकार करवुं होय (जेमके पार्श्वनाथना शिष्यने श्री-
 महावीरनुं शासन अंगीकार करवुं होय) ते वखते जे चार के
 पंचमहाव्रत रूप चारित्र धर्म अंगीकार करे ते निरतिचार छेदो-

प० चारित्र कहेवाय. अने चारित्रना मूळगुणनो (महाव्रतनो) घात करनारने जे पुनः चारित्र आपवुं पडे ते सातिचार चारित्र कहेवाय,

हवे त्रीजुं परिहारविशुद्धि नामनुं चारित्र छे. त्यां परिहार एटले तप विशेषवडे विशुद्धि एटले चारित्रने जे विशुद्ध करवुं ते परिहार विशुद्धि चारित्र बे प्रकारनुं छे, तेमां प्रथम ९ मुनिनो समुदाय होय छे, तेमां एक वाचनाचार्य होय छे, चार मुनि तप करनार होय, अने चार मुनि ते तपस्वीओनी वैयावच्च (सारवार) करनार होय. एमां जेओ तप क्रियामां प्रवर्ते छे ते वखते तेओ निर्विशमानक चारित्री अने तप संपूर्ण कर्या बाद तेज मुनिओ निर्विष्टकायिक चारित्री कहेवाय छे, एओनो तप ग्रीष्मऋतुमां जघन्य उपवास, मध्यम छट्ठ अने उत्कृष्ट अट्ठम, शिशिरऋतुमां ज० छट्ठ, मध्यम अट्ठम ने उ० दशम, वर्षाकालमां ज० अट्ठम म० दशम ने उ० द्वादशभक्त होय छे, दरेक पारणे आयंबिल, भिक्षामां पांचनुं ग्रहण ने बे (वस्तुनो) अभिग्रह होय, ए प्रमाणे ६ मास सुधी तप कर्या बाद सारवार करनार मुनिओ एज विधिए ६ मास तप करे, ते वखते निर्विष्टकायिक मुनिओ निर्विशमानकनी सारवार करे, तेओनो पण ६ मास तप पूर्ण थया बाद वाचनाचार्य ६ मास सुधी तप करे अने आठे निर्विष्ट कायिक मुनिओ निर्विशमानक वाचनाचार्यनी सारवारमां रहे ए प्रमाणे ए तप १८ मासे पूर्ण थया बाद इच्छा होय तो जिनकल्पी मार्ग अंगीकार करे अथवा तो पुनः गच्छमां प्रवेश करे, आ परिहारविशुद्धि चारित्र केवली भगवान पासे अंगीकार थाय छे; अथवा तीर्थंकर पासे रहेलागणधरादिकनी पासे अंगीकार कराय छे. पण बीजानी पासे नहिं ए परिहारविशुद्धि चारित्रनां २० द्वार आ प्रमाणे—

१ क्षेत्र—परि० वि० चारित्र अंगीकार करनार मुनिओनुं ज-
न्मक्षेत्र ५ भरतअने ५ ऐरवत, पण महाविदेह नहिं, अने परिहार-
कल्प अंगीकार करवानुं क्षेत्र पण एज. वळी जिनकल्पीनुं संहरण
थाय तो जेम सर्व क्षेत्रोमां जिनकल्पीनी प्राप्ति छे तेम एओनुं संह-
रण पण नथी.

२ काळ—अवसर्पिणीना त्रीजे अने चोथे आरे तेओनो ज-
न्मकाळ होय छे, अने सद्भाव (हयाती) तो अव०ना ३–४–५
मां अने उत्स० ना ३–४ आरामां.

३ चारित्र—सामायिकचारित्र अने छेदोप० चारित्रनां
संयमस्थान (–अध्यव० स्थान) थी उपरनां जे असं० लोकप्रदे-
श प्रमाण परि० वि० नां संयमस्थानो छे तेमां वर्तता जीवनेज प-
रि० वि० चारित्रनी प्राप्ति होय.

४ तीर्थ—जिनेश्वरनुं शासन विच्छेद पाम्युं होय अथवा
उत्पन्न पण न थयुं होय तेवा अवसरमां परि० वि० चारित्रीया
न होय पण शासन प्रवर्तमान समयेज होय.

५ पर्याय—जेनो गृहस्थपर्याय जघ० २९ वर्षनो अने उ०
देशोनपू० क्रोड वर्षनो होय अने यतिपर्याय जघ० २० वर्ष अने
उ० देशोन पू० क्रो० वर्षनो होय तेवो मुनि परि० वि० चा-
रित्र अंगीकार करे,

६ आगम—नवुं सिद्धान्त न भणे पण प्रथमनुं भणेलुं स्म-
रण करे.

७ वेद—नपुंसवेदी वा पुरुषवेदी होय पण स्त्रीवेदी नहि.

८ कल्प—स्थित कल्पमांज होय. (त्यां अचेलकादि १०
कल्पवाळा मुनि स्थितकल्पी, अने शय्यातरादि चारमां वर्तनारा-
ओ अने शेष६कल्पमां नहिं वर्तनारा मुनिओ अस्थितकल्पी कहेवाय

१. शय्यातरपिंड-चतुर्याम-पुरुषज्येष्ठ अने कृतिकर्मकरण
ए ४ अवस्थितकल्प छे, ने शेष ६ अनवस्थितकल्प छे.

९ लिंग—द्रव्यलिंग (–मुनिवेष) अने भावलिंग बन्ने होय

१० लेश्या—कल्प अंगीकार करती वखते ३ शुभ लेश्या अने त्यारबाद छए लेश्या होय. (कर्मपरिणति विचित्र होवाथी अ शुभलेश्याओनो उदय थाय पण ते अत्यंतसंक्लिष्ट न होय अने तेमां पण थोडो काळज रहे छे पछी शुभलेश्यामांज आवे छे,)

११ ध्यान—अंगीकार काळे धर्मध्यान अने त्यार बाद आर्त-रौद्र–ने धर्मध्यान पण होय. तीव्रकर्म परिणामथी अशुभ-योगोनी उत्कृष्टदशामां आर्तरौद्र पणुं आवे पण ते निरनुबन्ध होयछे

१२ गण—जघन्यथी ३ गण अने उत्कृष्ट शत संख्यावाळा (सयस उकोसा एवो पाठ होवाथी सोकरतां वधारे समजाय छे)गण अगीकार काळे (सर्व क्षेत्रमां मळीने) होय, अने अंगीकार कर्या-बाद जघ० वा उ० समकाळे वर्तता सेंकडो (घणा १००) गण होय तेमां पुरुषसंख्या जघ० थी २७ उत्कृष्टथी १००० अंगीका-रकाळे होय अने त्यार बाद परि० वि० मां वर्तता जघ० थी सें-कडो पुरुष अने उत्कृष्टथी हजारो होय अने प्रवेश करनार तथा निकळनार बन्ने समकाळे जघ० थी एक ने उ० थी पृथक्त्व होय

१३ अभिग्रह—द्रव्यादि कोइपण अभिग्रह न होय कारण ए कल्पज अभिग्रहरूप छे.

१४ प्रव्रज्या—कोइने पण दीक्षा न आपे (एज कल्पस्थि-ति छे) परन्तु यथाशक्ति उपदेश आपे.

१५ मुंडापन—आ मुनि कोइने मुंडे नहि (प्रव्रज्यानंतर मुंडन अवश्य होय एवो नियम नथी कारणके अयोग्यने दीक्षा दी-धी होय तोपण पाछळथी अयोग्यता मालूम पडतां मुंडन न करे माटे अहिं मुंडनद्वार भिन्न कर्युं.)

१६ प्रायश्चित्तविधि—मनवडे सूक्ष्म अतिचार लागतां पण निश्चय चतुर्गुरुक प्रायश्चित्त आवे.

१७ कारण आ कल्पनी यथाविधि पालना एज कर्मक्षयनुं नि-

मित्त होवाथी तेओने बीजुं ज्ञानादिक शुद्ध आलंबन पण न होय (अर्थात् ए कल्प पतितदशावाळो नथी के जेथी ज्ञानादि आलम्बने पण स्थिर रहे.) अथवा जेनावडे तत्संबंधि अपवाद स्थान सेववा पणुं होय तेवुं ज्ञानादि आलम्बन न होय.

१८ निष्प्रतिकर्मता–शरीरसंस्कार न करे, आंखमां पडेलुं तृण पण बहार न काढे. प्राणांतकष्टे पण अपवाद मार्ग सेवे नही

१९ भिक्षा त्रीजे प्रहरे गोचरी तथा विहार करे, शेष वखते काउस्सग्ग करे–निद्रा अति अल्प करे. कदाच जंघाबलनी क्षीणताये विहार न करी शके तोपण अपवाद स्थान न सेवतां कल्पमर्यादाप्रमाणे संपूर्ण पाळे,

२० पन्थ-परिहारकल्पी कल्प समाप्त थया बाद पुनः ते कल्पमां अथवा गच्छमां प्रवेश करे एटले स्थविरकल्पी थाय नहिंतर जिनकल्प अङ्गीकार करे, तेमां पुनः ते कल्पमां अगर स्थविरकल्पमां रहेनारा इत्वरपरिहारी, अने जिनकल्प अंगीकार करनारा यावत्कथिक परिहारी कहेवाय.

अर्थात् आ चारित्र बे प्रकारनुं छे, त्यां कल्पविधि संपूर्ण थया बाद तुर्तज बीजीवार कल्पने अथवा गच्छने अंगीकार करे ते इत्वर परि० वि० चारित्र, अने कल्पसमाप्ति बाद तुर्त जिनकल्प अङ्गीकार करे तो यावत्कथिक परि० वि० कहेवाय.

हवे सूक्ष्मसंपराय चारित्रनुं स्वरूप कहेवाय छे, त्यां उपशम श्रेणिगत वा क्षपकश्रेणिगत मनुष्य नवमे गुणस्थाने लोभकषायने सूक्ष्म करे (–कषायांशनी वर्गणाओनो अनुक्रम थोडी दरेक वर्गणा दला अल्पर–रसवाळी करे) अने त्यारबाद दशमे गुणस्थाने ते सूक्ष्मकषायने उदयमां आणी भोगवे ते सूक्ष्म संपराय चारित्र १० मे गु० स्थाने जाणवुं अहिं सूक्ष्म संपराय–कषाय एवो अर्थ जाणवो.

अवतरण—आ गाथामां बाकी रहेल एक यथाख्यात चारित्रनुं स्वरूप कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३३ मी. ॥

तत्तो अ अहक्खायं, खायं सव्वंमि जीवलोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ॥३३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ततश्च यथाख्यातं, ख्यातं सर्वस्मिन् जीवलोके ।
यच्चरित्वा सुविहिताः, गच्छन्त्यजरामरं स्थानं ॥३३॥

॥ शब्दार्थः ॥

तत्तो–त्यार पछी
अ–वळी
अहक्खायं–यथाख्यातचारित्र
खायं–प्रसिद्ध
सव्वंमि–सर्व (ने विषे)
जीवलोगम्मि–जगतमां
जं–जे चारित्रने
चरिऊण–आचरीने
सुविहिया—सुविहित (–सारी विधि प्रमाणे पाळनारा) मनुष्यो,
वच्चंति–जाय छे–पामे छे,
अयरामरं–मोक्ष
ठाणं–स्थानने

गाथार्थः—वळी त्यार पछी सर्व जगतमां प्रसिद्ध एवं यथाख्यात नामनुं पांचमुं चारित्र छे. के जे चारित्रने अंगीकार करीने घेर विधिए पाळनार सुविहित मनुष्यो मोक्ष पामे छे.

विस्तरार्थः पूर्वे चारित्रना चार भेद कह्या बाद हवे पांचमुं यथाख्यात चारित्र कहेवाय छे. त्यां यथा एटले जेवी रीते ख्यात एटले सिद्धान्तमां कह्युं छे तेवी रीतनुं सर्व विरति चारित्र (कषायविनानुं) ते यथाख्यात चा० कहेवाय एना बे भेद छे. तेमां उपशमश्रेणिवाळा जीवने ११ मे उपशान्त मोह गुणस्थाने मोहनी उपशान्ति रूप चारित्र छे, ते उपशम यथाख्यात चा०, अने क्षपकश्रेणिवाळा जीवने १२ मे क्षीणमोह गुणस्थाने मोहना क्षयक-

॥ संवरतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

नरकगतिमां १२—नरकगतिमां १२ भावनारुप १२ संवर भेद होय छे, पण समिति गुप्ति परिषह अने यतिधर्म ए सर्व विरतिवंतने होवाथी अने सर्व विरतिनो नरकमां अभाव होवाथी समिति विगेरे ४५ संवरभेद न होय अने १२ संवरभेद होय.

तिर्यंचगतिमां १२—नरकगतिवत्.

देवगतिमां १२—नरकगतिवत्.

मनुष्यगतिमां ५७—मनुष्यगतिमां सर्वविरतिनो सद्भाव होवाथी संवरतत्त्वना सर्वे ५७ भेद होय.

एकेन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियमां संवरनो कोइपण भेद न होय, कारण के सर्वविरतिना अभावे समिति विगेरे ४५ संवर न होय, अने मनयोगना अभावे १२ भावना पण न होय.

द्वीन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

त्रीन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

चतुरिन्द्रियमां ०—एकेन्द्रियवत्.

पंचेन्द्रियमां ५७—पंचेन्द्रियमां गर्भजमनुष्यने सर्वविरति अने मनोयोगना सद्भावे सर्वे ५७ संवरभेद होय छे.

पृथ्वीकायमां ०— कारण एकेन्द्रियवत्

अप्कायमां ० ,,

तेउकायमां ० ,,

वायुकायमां ० ,,

वनस्पतिमां ० ,,

त्रसकायमां ५७— त्रसकायमां गर्भजमनुष्यने ५७ संवरभेद होय.

॥ निर्जरातत्त्व ॥

अवतरण—पूर्व गाथाओमां संवरतत्त्वनुं स्वरूप कहीने हवे निर्जरा अने बन्धतत्त्वनुं स्वरूप कहे छे. त्यां प्रथम आ गाथामां सामान्यथी निर्जराना १२ अने बंधतत्त्वना ४ भेद कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३४ मी, ॥

बारसविहं तवो नि–ज्जरा य बन्धो चउविगप्पो अ ।
पयइ ठिइ अणुभाग–पएसभेएहिं नायव्वो ॥३४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्वादशविधं तपो, निर्जरा च बंधश्चतुर्विकल्पश्च ।
प्रकृतिस्थित्यनुभाग–प्रदेशभेदैर्ज्ञातव्यः ॥ ३४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

बारसविहं–१२ प्रकारनो	ठिइ–स्थिति (–काळनियम)
तवो–तप	अणुभाग–अनुभाग (–रस)
निज्जरा निर्जरातत्त्व	पएस–प्रदेश (कर्मना अणु)
बन्धो–बन्धतत्त्व	भेएहिं–(ए चार) भेदोवडे,
चउविगप्पो–चार प्रकारनुं	नायव्वो–जाणवो,
पयइ–प्रकृति (–स्वभाव)	

गाथार्थः—१२ प्रकारनो तप ते निर्जरातत्त्व छे, अने प्रकृति–स्थिति–रस–अने प्रदेश–ए चार भेदवडे बंध (तत्त्व) चार प्रकारनो जाणवो.

विस्तरार्थ—१२ प्रकारनो तप आगळनी गाथाओमां दर्शा-वाशे, ने चारप्रकारना बन्धनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे. अहिं कर्मना चार प्रकारना बन्धमां शास्त्रप्रसिध्ध मोदकनुं दृष्टान्त आ-प्रमाणे छे—

जेम सुंठ वगेरे पदार्थना लाडुमां कोइ लाडुनो स्वभाव वायु दूर करवानो, कोइनो कफ दूर करवानो. अने कोइनो पित्त दूर करवानो एम जुदा जुदा स्वभाव होय छे. तेम आठप्रकारना कर्मना पण जुदा जुदा स्वभाव होय छे, जेम ज्ञानाव० कर्मनो स्वभाव आत्माना ज्ञानगुणने आवरवानो, दर्शनाव० कर्मनो स्व-भाव दर्शनगुणने आवरवानो, इत्यादि जे कर्मनो जे स्वभाव ते स्व भाव सहित[1] ते कर्म बन्धाय छे, माटे प्रकृतिबन्ध कहेवाय.

तथा जेम कोइ मोदक १० दिवस सुधी सारो रहे ने त्यार-बाद तेनो गुण विनाश पामे, कोइ १५ दिवस अने कोइ १ मास सुधी सारो रहे तेम कोइ कर्म आत्मानी साथे २० कोडाकोडी सा-गरोपम रहे कोइ कर्म ३०को०को०सा०अने कोइ कर्म वधुमां वधु७० को० को० सागरोपम आत्माना संबन्ध ते स्वभावे रहे छे अने त्या-रबाद ते आत्माथी अलग थइ ते ते स्वभाव रहित थइ जाय छे. ए प्रमाणे कर्मने कर्मपणे रहेवानो काळ पण बन्धमां समयेज नियमित थाय छे माटे कर्मना काळनो नियम ते स्थितिबन्ध कहेवाय,

तथा जेम कोइक मोदक मधुर-मीठो होय छे. ने कोइक कडवो होय छे, ने कोइक तीखो इत्यादि शुभाशुभ रसवाळो होय छे, तेम कोइ कर्म शुभ रसवाळुं (—एटले उदय आवतां जीवने हर्ष—सुख आपनारु) अने कोइ कर्म अशुभ रसवाळुं (एटले उदय आवतां

१— कर्मनां नाम तथा ते ते कर्मना स्वभाव अने स्थि-ति आगळ गाथाथीज कहेवाशे.

जीवने दुःख-शोक आपनारुं) होय छे. वळी ते शुभ वा अशुभ रस पण कोइमां तीव्र ने कोइमां मन्द होय छे, ए प्रमाणे तीव्रता अने मन्दता युक्त जे शुभाशुभ विपाकनो नियम पण कर्मबंध वखतेज थाय छे ते रसबंध कहेवाय.

वळी जेम कोइक मोदक ओछा लोटनो अने कोइक मोदक वधारे लोटनो (एटले कोइक पाशेरीयो ने कोइक शेरीयो) बांधेलो होय छे, तेम कोइ कर्म बीजां कर्मथी ओछा वा अधिक प्रदेश (अणुओ) वाळु बंधाय ते प्रदेशबंध कहेवाय.

अवतरण—पूर्व गाथामां १२ प्रकारना तपने निर्जरातत्त्व कह्युं त्यां ६ प्रकारनो बाह्य तप अने ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप मळीने १२ प्रकारनो तप थाय छे. ते आ गाथामां प्रथम ६ प्रकारनो बाह्य तप दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ३५ मी ॥

अणसणमूणोअरिया-वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संली-णया य बज्झो तवो होइ ॥३५॥

१ आ चारे बन्ध मात्र मोदकना दृष्टान्तेज होय एम नहि, परन्तु बीजा दूध-घृतादि पदार्थोना दृष्टान्ते पण होइ शके- जेमके अमुक अमुक दूधना जेम देह पुष्टयादि भिन्न भिन्न गुण छे, तेम कर्मना पण भिन्नभिन्न स्वभाव छे, अमुक दूध जेम अमुक वखत सुधी सारुं रही शके छे, तेम अमुक कर्म पण अमुक वखत सुधी कर्म पणे रही शके छे, अमुक दूध जेम अमुक मीठाशादि रसवाळुं छे तेम अमुक कर्म पण अमुक मीठाशादि रसवाळुं छे. जे अमुक दूध जेम हीनाधिक प्रदेशोवाळुं छे तेम कर्म पण हीनाधिक प्रदेशोवाळुं छे इत्यादि रीते अनेक पदार्थोद्वारा बालकोमां दृष्टान्त यथायोग्य विचारवां

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अनशनमूनोदरिका-वृत्तिसंक्षेपणं रसत्यागः ।
कायक्लेशः संलीनता च बाह्यस्तपो भवति ॥ ३५ ॥

॥ शब्दार्थ ॥

अणसणं-अनशन (उपवासादि तप	कायकिलेसो-कायक्लेश (लोच वगेरे करवो)
ऊणोयरिया-उनोदरिका (बे-चार कवल उणा रहेवुं	संलीणया संलीनता (अंगोपांगादिनो संकोच करवो)
वित्ती—वृत्तिनो (आजीविकानो)	बज्झो—बाह्य
संखेवणं-संक्षेप करवो,	तवो-तप
रसच्चाओ-रसत्याग (विगय त्याग)	होइ-छे.

गाथार्थः—उपवासादि करवो ते अनशनतप-बे चार कवल उणा रहेवुं ते उनोदरिकातप-आजीविकानो संक्षेप करवो ते वृत्तिसंक्षेपतप-विगयादिनो त्याग करवो ते रसत्यागतप-लोचादि कष्ट सहन करवां ते कायक्लेशतप अंगोपांगादिनो संकोच करवो ते संलीनतातप-ए प्रमाणे ६ प्रकारनो बाह्य तप (थी कर्मनो क्षय-निर्जरा थाय) छे.

विस्तरार्थः—आ गाथामां ६ प्रकारनो बाह्य तप कह्यो छे त्यां मोक्षप्राप्तिमां बाह्य कारणरूप जे तप ते बाह्यतप कहेवाय तेना ६ प्रकार आ प्रमाणे—

अनशन-अहिं अन् एटले नहि अशन एटले चारप्रकारनो आहार,[1]

---

१ भात वगेरे रांधेलो आहार अशन, सर्व जातनां तृषा मटाडनारां पाणी पान, धाणी-चणा इत्यादि कांई छेक फरा-ळ ते खादिम अने सोपारी-एलायची आदि मुखवास ते स्वादिम ए चार प्रकारना आहार कहेवाय छे.

अर्थात् आहार न करवो ते अनशनतप बे प्रकारनो छे, त्यां उपवास-आयंबिल-एकाशन-पोरिसि-नवकारशी-छट्ठ-अट्ठम इत्यादि तप अमुक नियमित काळना होवाथी इत्वर अनशन कहेवाय अने मरण पर्यंत आहार पाणीनो त्याग करवो ते यावत्कथिक अनशन कहेवाय. प्रसिद्धिमां एनेज अनशन अंगीकार कर्युं कहेछे

उनोदरिका—क्षुधा लागी होय त्यारेज जमवुं ते पण पेट भरीने अकळामण थाय तेम नहिं जमतां १-२-३-४ इत्यादि कवल उणा रहेवुं के जेथी आरोग्यता पूर्वक एक कवल आहार जेटलो पण अनशन तप गणाय छे, कारणके तेटले अंशे भोजननी आशक्ति-लोलुपता टळी होय तोज बे चार कवल उणा रहेवानुं बनी शके छे, अहिं, ऊन एटले न्यून उदर—पेट राखवुं अर्थात् पेट कंइक ऊणुं राखवुं ते उणोदर परथी उनोदरिका शब्द बन्यो छे,

---

१ ए यावत्कथिक अनशनना पण पादोपगमन अने भक्तप्रत्याख्यान ए बे भेद छे, ते दरेकना पुनः निहारीम अने अनिहारिम ए बे भेद छे, त्यां पडी गयेला वृक्षमाफक निश्चेष्ट काया राखवी ते पादोप० अने कायचेष्टा प्रवर्ते पण मात्र आहारनोज त्याग होय ते भक्तप्रत्या० जाणवुं तथा नियमित स्थानथी शरीर बहार काढवुं ते निहारिम, अने शरीरने गुफादि एकज स्थानमां राखवुं ते अनिहारिम जाणवुं.

२ कह्युं छे के

बत्तीसं किर कवला—आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलियाए, अट्ठावीसं मुणेयव्वा ॥ १ ॥

अर्थः—" पुरुषने निश्चय ३२ कवल जेटलो आहार उदर पूरनारो (तृप्ति करनार) कह्यो छे. अने स्त्रीने २८ कवल जेटलो आहार जाणवो " एमांथी जेटला कवल उणा रहेवाय तेटलो उनोदरी तप जाणवो. अहिं कवलनुं सामान्य प्रमाण मु-

वृत्तिसंक्षेप—अहिं जे जे आहार-वस्त्र इत्यादि द्रव्योवडे वृत्ति एटले आजीविका (-जीवननिर्वाह) चालती होय ते ते द्रव्योमां वृत्ति एटले मनोवृत्तियोना संक्षेप-संकोच करवाना अभ्यास रूपे अनेक प्रकारना अभिग्रहो धारण करवा ते वृत्तिसंक्षेप कहेवाय ते द्रव्य-क्षेत्र-काळ-ने भावथी चार प्रकारे छे, त्यां द्रव्यथी अमुक पदार्थ—क्षेत्रथी अमुकस्थळे-काळथी अमुकवखते अने भावथी अमुक अमुक रीते मळे तोज ते वस्तु ग्रहण करवी, जेम श्री महावीरस्वामिए करेलो अभिग्रह चन्दनबाळाथी पूराणो तेम अभिग्रह धारण करवा ते पदार्थ उपरथी लोलुपता टळी होय तोज बनी शके अन्यथा नहिं, माटे ते वृत्तिसंक्षेप पण तपरूप छे,

रसत्याग—रस एटले दूध-दहिं-घी-गोळ-तेल ने साकर ए ६ रसिक पदार्थो आत्माने विकार उपजावनारा होवाथी विकृति कहेवाय छे ते ६ विकृतियोमांथी यथाशक्ति एक बे यावत् सर्वनो त्याग करवो ते रसत्याग तप कहेवाय,

कायक्लेश—लोच करवो-आतापना लेवी इत्यादि कष्ट मोक्षनी इच्छाए सहन करवां ते कायक्लेश तप कहेवाय,

---

कवळोना ३२ भेदनुं शास्त्रमां कह्युं छे—अथवा अर्थान्तरथी विचारीए तो एक दरेकथी सुख पूर्वक जेटलो आहार मुखमां राखी शकाय तेटला प्रमाणनो एक कवल जाणवो ते जेवा ३२ के २८ कवल संपूर्ण तृप्ति करनार थाय छे पछी अधिक आहार करनार अवश्य आहारी जाणवो

१ अथवा वृत्ति एटले "भिक्षा" नो संक्षेप ते प्रमाणे—दातारथी वा घरोथी उपाश्रये आहार आवे तोज लेवो ते भिक्षानियम अने एक धाराए अथवा बे इत्यादि धाराए अर्थ होय एवो जेटलो वस्तु वडे तेटलोज लेवो एवो नियम ते वृत्तिनियम

संलीनता—अहिं संलीनता एटले संकोच एटले अशुभ व्यापारनी निवृत्ति जाणवी, ते संलीनता चार प्रकारनी छे, त्यां अशुभ मार्गे प्रवर्तती इन्द्रियोने संकोची कबजामां राखवी ते इन्द्रिय संलीनता, कषायथी निवृत्त थवुं ते कषायसंलीनता, अशुभ योगथी निवृत्त थवुं ते योगसंलीनता, अने स्त्री-पशु-नपुंसक इत्यादि विकारोत्पादक जीवोना संसर्गवाळां स्थान त्याग करीने सारा स्थानमां रहेवुं ते विविक्तचर्या संलीनता कहेवाय ए चारे प्रकारनो संलीनता तप कर्मनी निर्जरा करनार छे,

ए ६ प्रकारना तप बाह्यतप कहेवाय. अने ते कर्मनी निर्जरा करनार छे.

अवतरण—आ गाथामां ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३६ मी. ॥

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
ज्झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ॥३६॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

प्रायश्चित्तं विनयो, वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं कायोत्सर्गो पि चा- भ्यन्तरस्तपो भवति ॥ ३६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त	उस्सग्गो-काउस्सग्ग
विणओ—विनय	वि अ - वळी पण
वेयावच्चं-वैयावृत्त्य (सारवार)	अब्भिंतरओ—अभ्यन्तर
तहेव-तेमज	तवो-तप
सज्झाओ—स्वाध्याय	होइ—छे.
झाणं-ध्यान	

गाथार्थः—१० प्रकारनुं प्रायश्चित–७ प्रकारनो विनय–१० प्रकारनी वैयावच्च– ५ प्रकारनो स्वाध्याय– २ प्रकारनुं शुभध्यान– अने २ प्रकारनो काउसग्ग ए ६ प्रकारनो अभ्यन्तर तप (थी कर्मनो क्षय थाय) छे.

विस्तरार्थः—मोक्षप्राप्तिमां जे तप अन्तरंग कारणरूप छे ते अभ्यन्तर तप नीचे प्रमाणे ६ प्रकारनो छे,

प्रायश्चित्त—प्रायः एटले बाहुल्यताए (पापनो विच्छेद करनार-इति अध्या०), अने चित्त एटले मननी विशुद्धि करनार ते प्रायश्चित्त १० प्रकारे छे, त्यां गुर्वादि समक्ष करेला पापनो प्रकाश करवो ते आलोचना प्राय०, पुनः ते पापने नहि आचरवाना संस्कारथी जे मिच्छामि दुक्कडं आपवु (-मिथ्यादुष्कृत एटले मारुं पाप मिथ्या थाओ ए प्रमाणे माफी मागवी) ते प्रतिक्रमणप्राय०, गुरु समक्ष पापनो प्रकाश करवो अने मिथ्यादुष्कृत पण आपवुं ते मिश्रप्राय०, अकल्पनीय अन्नपानादिनो त्याग करवो ते विवेकप्राय०, काउस्सग्ग करवो (कायचेष्टानो त्याग करी अमुक लोगस्स गणवा अथवा अमुक ध्यान करवु) ते कायोत्सर्गप्राय०. नीवी प्रमुख तपरूप दंड आचारवो ते तपप्राय० दीक्षापर्याय घटाडवारूप दंड ते छेदप्राय०, कोइ मोटो अपराध थवाथी पुनः महाव्रत उचरवारूप दंड ते मूलप्राय०. करेला अपराधनो जे तपरूप दंड आप्यो छे ते ज्यां सुधी न करे त्यांसुधी महाव्रतमां न स्थापवो ते अनवस्थाप्यप्राय०, तेवा प्रकारना अपराधथी १२ वर्ष सुधी गच्छनो अने वेषनो त्याग करी अमुक प्रकारनी मोटी शासन प्रभावना करीने पुनः महाव्रतोच्चार करी गच्छमां प्रवेश करी शके एवो दंड ते पारांचिकप्राय०, कहेवाय, ए १० प्रकारना प्रायश्चित्तथी कर्मनी निर्जरा थाय छे.

विनय—वि एटले विशेषे करीने आठप्रकारनुं कर्म जेनाथी नय (नि) दूर थाय ते विनय, अथवा गुणवन्तनी भक्ति ते विनय कहेवाय ते ज्ञान-दर्शन-चारित्र-ने उपचार विनय ए प्रमाणे ४ प्रकारनो छे, त्यां पांच ज्ञाननुं विशेष करी बहुमान करवुं, अने तेनुं श्रद्धान करवुं ते ज्ञानविनय, अने श्रुतज्ञानमां जो काले विणए बहुमाणे इत्यादि गाथामां कहेलो आठ प्रकारनो ज्ञानाचार ते पण ज्ञानविनय कहेवाय, तथा शम (—कषायमन्दता)—संवेग (—वैराग्य)—निर्वेद (—संसारथी उदासीनता)—अनुकम्पा (—दया-कृपा) ने आस्तिक्य [धर्म-अधर्म देवलोक-नारक इत्यादि पदार्थो छे एवी प्रतीति, ए ५ सम्यक्त्वलक्षणने धारण करवां, तथा निस्संकिय निक्कंखिय इत्यादि गाथामां कहेला आठ दर्शना-

१ १ जे काले जे भणवा योग्य होय ते काले ते भणवुं ते काला-चार.
२ ज्ञानना अने ज्ञानीना विनय करवो ते विनयाचार
३ ज्ञाननी अने ज्ञानीनी अन्तरंग प्रीति राखवी ते बहुमानाचार
४ जे अध्ययन माटे जे तप कहेला होय ते तप करीने अध्ययन करवुं ते उपधान आचार
५ जेनी पासे भण्या होय तेनुं नाम कहेवुं ते अनिह्नवाचार
६ अक्षर शुद्ध भणवा ते व्यंजनाचार
७ अर्थ शुद्ध विचारवो ते अर्थाचार
८ सूत्र अर्थ बंने शुद्ध भणवा ते तदुभयाचार

२ १ जिनेश्वरना वचनमां शंका न करवी ते निःशंकित दर्शनाचार
२ अन्यदर्शनीओना चमत्कारादिकनी इच्छा न करवी ते निःकांक्षित दर्शनाचार
३ मुनिना मलिन वस्त्रादिकथी दुगंछा न करवी ते निर्विचिकित्सा दर्शनाचार
४ मिथ्यात्वीना चमत्कार जोइने मुंझावुं नहि ते अमूढदृष्टि दर्शनाचार
५ सम्यक्त्ववंत [illegible] ते उपबृंहणा दर्शनाचार

चारनुं पालन करवुं ते दर्शनविनय कहेवाय. तथा पूर्वे कहेलां सामायिकादि ५ प्रकारनां चारित्रनी श्रद्धा-तेनुं विधिपूर्वक पालन करवुं– अने तेनी सत्यप्ररूपणा करवी ते चारित्रविनय कहेवाय, तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि उत्तम गुणयुक्त मुनिवगेरेने देखी उभा थवुं–सामे जवुं–हाथ जोडवा–क्षमाश्रमणादि वन्दन आपवां, मिष्ट संभाषण करवुं, इत्यादि शुद्धक्रियाना व्यवहाररूप जे विनय ते उपचारविनय. वळी बीजा ग्रन्थोमां तो मनविनय–वचनविनय–अने कायविनय सहित गणतां ७ प्रकारनो विनय पण गणेल छे, ए प्रमाणे चार अथवा ७ प्रकारनो विनय कर्मनी निर्जरा करवामां अन्तरंग कारणरूप होवाथी एने अभ्यन्तर तपरूपे कहेल छे,

वैयावृत्त्य—आचार्यादिकनी सेवा करवी–औषध–वस्त्र-अन्नपानादि आपवुं ते वैयावृत्त्य कहेवाय ते आचार्य–उपाध्याय–तपस्वी-शिष्य–ग्लान–कुल–गण–संघ–साधु–ने समनोज्ञ ए १०नुं वैयावृत्त्य करवुं ते वैयावृत्त्यना १० भेद छे, (त्यां नव दीक्षित शिष्यने चारित्राचार शिखववो इत्यादि शिष्यवैयावृत्त्य गणाय, ग्लान–रोगीनी सेवा करवी ते ग्लान विनय. चांद्रकुल इत्यादि एक आचार्यनी सन्तति ते कुल कहेवाय, कुलनो समुदाय गण, अने साधु साध्वी-श्रावक-ने श्राविका रूप चतुर्विध संघ कहेवाय, ने समनोज्ञ एटले स्वधर्मी बन्धुओ जाणवा. शेष सुगमछे)

६ धर्मथी चलताने स्थिर करवो ते स्थिरिकरण दर्शना०

७ स्वधर्मीनी भक्ति करवी ते वात्सल्य दर्शना०

८ शासननी शोभा-वृद्धि थाय तेम करवुं ते प्रभावना दर्शना०

१ विनयना ४ भेद गणाया होवाथी ए त्रण भेदने उपचार विनयमां अन्तर्गत जाणवा.

२ वस्तुतः संघः एटले [ज्ञान दर्शनगुणात्मे परमार्थतः

स्वाध्याय—(सु–शोभनिक–प्रशस्त अध्याय–भणवुं वगेरे ते स्वाध्याय) अर्थात् प्रशस्त अध्ययनरूप स्वाध्याय पांच प्रकारनो ते आ प्रमाणे—

१ शिष्यादिकने सूत्र तथा अर्थ पाठ आपवो ते वाचना,
२ संदेह पडे त्यां पूछवुं ते पृच्छना,
३ प्रथमनुं भणेलुं संभारी जवुं ते परि(रा)वर्त्तना
४ प्रथम भणेला सूत्रार्थनो अर्थ (रहस्य) विचारवो ते अनुप्रेक्षा,
५ धर्मनी देशना (उपदेश) आपवी ते धर्मकथा.

ए पांचे प्रकारनो स्वाध्याय अभ्यन्तर तपरूप होवाथी कर्मनी निर्जरा करनार छे,

ध्यान–चित्तनी एकाग्रता–अथवा योगनो निरोध ते ध्यान कहेवाय छे. एमां चित्तनी एकाग्रतारूप ध्यान १३ मा गुणस्थान सुधी अने योग निरोधरूप ध्यान १४ मे गुणस्थाने छे, त्यां प्रथम चित्तनी एकाग्रतारूप ध्यानना आर्त्तध्यान–रौद्रध्यान–धर्मध्यान अने शुक्लध्यान ए चार प्रकार छे तेमां पण दरेक ध्यान चार चार प्रकारनुं ते आ प्रमाणे—

॥ आर्त्तध्यानना ४ प्रकार ॥

१ स्वजन कुटुंबादि इष्ट (प्रिय) पदार्थनो वियोग थवाथी जे चिंता–शोक–विलाप वगेरे थाय ते इष्टवियोगार्त्तध्यान.

२ अप्रिय पदार्थोना संगमथी (–प्रतिकूळ परिवार मळवो

संघः इति वचनात्) ज्ञानादि गुणनो समुदाय अने ते समुदायनो आधार साधु वगेरे ते पण आधाराधेय भावे संघ कहेवाय.

दिकथी जे चिंता-विलाप वगेरे थाय ते अनिष्टसंयोगार्त्त न.

३ शरीरे रोगादिक थवाथी जे चिंता विलापादि थाय ते र्चितार्त्तध्यान

४ भविष्य काळमां सुख मेळववा संबंधी जे चिंता-नियाणु दि करवुं ते अग्रशोचार्त्तध्यान ए चारे त्याग करवा योग्य छे

॥ रौद्रध्याननां ४ प्रकार ॥

१ द्वेषवडे प्राणीने बांधवा-हणवादिकनी चिंता ते हिंसानु-न्धिरौद्रध्यान.

२ छळ प्रपंचादि करवाना परिणामथी असत्य बोलवानी ने मत्य तरीके स्थापवानी जे चिंता ते मृषानुबन्धिरौद्रध्यान.

३ क्रोधादिकषायना वशथी परनुं द्रव्यादि हरण करवानी छा ते स्तेयानुबन्धिरौद्रध्यान.

४ विषयना साधन-धन-परिवारादिकनुं रक्षण करवानी जे वंता ते संरक्षणानुबन्धिरौद्रध्यान.

॥ धर्मध्यानना ४ भेद ॥

१ वीतरागनी जे आज्ञा तेज धर्म छे एवी भावना पूर्वक वीत-रागनी आज्ञाओ विचारवी ते आज्ञाविचय धर्मध्यान.

२ राग-द्वेष-कषाय-इत्यादि संसार बन्धननां निमित्त सर्व अपाय-कष्टरूप छे, इत्यादि विचारवुं ते अपायविचय धर्मध्यान.

३ सर्व जाननां सुख वा दुःख ते पूर्वकृत कर्मनुंज (विपाक-) फळ छे इत्यादि विचारवुं ते विपाकविचय धर्मध्यान,

४ (छ द्रव्यरूप) लोकनी आकृति तथा ६ द्रव्यनुं स्वरुप विचारवुं ते संस्थानविचय धर्मध्यान.

॥ शुक्लध्यानना ४ भेद ॥

१ पृथक्त्ववितर्क सविचार-२ एकत्ववितर्क अविचार
३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति—४ व्युपरतक्रिया अनिवृत्ति,

ए ४ भेद छे, तेमां पृथक्त्व एटले भिन्नभिन्न, वितर्क एटले श्रुतज्ञान, अने विचार एटले अर्थ-व्यंजन-ने योग ए त्रणनुं संक्रमण अर्थात् एक ध्येय (- अर्थ) थी अन्य ध्येयपर जवुं ते अर्थसंक्रान्ति, एक व्यंजन (विचारोनी अक्षर श्रेणिपर) थी बीजा व्यंजनमां जवुं ते व्यंजनसंक्रान्ति अने एक योग परथी अन्ययोगमां जवुं ते योगसंक्रान्ति कहेवाय, ए प्रमाणे आ शुक्लध्यानना प्रथम भेदमां श्रुतज्ञानने अनुसारे त्रणे जातनां भिन्नभिन्न संक्रमण होय छे, परन्तु एकज पदार्थ उपरनुं स्थिर ध्यान नथी पण द्रव्यथी गुणमां गुणथी पर्यायमां पर्यायथी द्रव्यमां इत्यादि परावृत्तिवाळु ध्यान ते माटे एनुं नाम पृथक्त्ववितर्क सविचार छे,

तथा जे द्रव्य वा पर्यायनुं ध्यान छे तेज द्रव्य वा पर्यायमां स्थिर रहे, अने ध्येयनी-व्यंजननी के योगनी संक्रान्ति होय नहि (-मनयोगे वा काययोगे वा वचनयोगे कोइपण एकज योगमां स्थिरपणे ध्यान होय) ने ते श्रुतज्ञानने अनुसारे (वा पूर्वधर श्रुतज्ञानीने) ए ध्यान होय छे माटे ए बीजा भेदनुं नाम एकत्ववितर्कअविचार छे,

तथा जे वखते सूक्ष्म योगप्रवृत्ति (योग निरोध कियाबाद) होय छे ते वखते जे आत्मप्रदेशात्मक ध्यान वर्ते छे ते ते (सूक्ष्म क्रिया योगनिरोध थयां पुनः विनाश पामनार होवाथी अप्रतिपाति छे माटे ए त्रीजा ध्याननुं नाम सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति छे.

तथा जे वखते क्रिया (व्युपरत एटले) विराम पामी छे, ते

थी थयेलुं अक्रियपणु हवे (अप्रतिपाति एटले) सदाकाळ
हेवानुं छे माटे ए चोथा भेदनुं नाम व्युपरतक्रियाप्रतिपाति छे,

एमां आर्त्त ने रौद्रध्यान अशुभ छे माटे अहिं निर्जरा प्रकर-
णमां तेनो उपयोग नथी तोपण प्रसंगथी दर्शावेल छे ने ते बन्ने
अशुभध्यान ५ मा गुणस्थान सुधी (मतान्तरे ६ ट्ठा सुधी) कहे-
ल छे अने धर्मध्यान अप्रमत्त मुनिने कहेल छे, अने वधुमां वधु
१२ मा गुणस्थान सुधी पण (तत्त्वार्थमां) कहेल छे, पुनःतत्त्वार्थ-
मां प्रथमनां बे शुक्लध्यान पण ११-१२ ए बे गुणस्थाने कहेल छे
वळी ए बे ध्यान पूर्वधरनेज होय छे, छतां पण मरुदेवादिवत् को
ई जीवने पूर्व विना पण होय. तथा त्रीजुं शुक्ल ध्यान मात्र सू०
कायपयोगे वर्तता सयोगीकेवलिने योगनिरोधकाळे होय, अने चो-
थुं शु० ध्यान अयोगिगुणस्थानेज (-शैलेशी अवस्थामांज होय,)

उत्सर्ग—शरीरादिनो उत्सर्ग–त्याग ते कायोत्सर्ग कहेवाय
ते द्रव्यथी अने भावथी एम बे प्रकारनो छे, तेमां पण द्रव्यो-
त्सर्ग चार प्रकारनो अने भावोत्सर्ग ३ प्रकारनो छे ते आ प्रमाणे

१ गच्छनो त्याग करी जिनकल्पादि कल्प अंगीकार करवो ते
गणोत्सर्ग

२ अणसणादि व्रत लइ शरीरचेष्टानो—कायक्रियानो त्या-
ग करवो ते कायोत्सर्ग

३ कल्पविशेष वडे (अन्यकल्प अंगीकार करतां सर्वज्ञनी आ

---

१ घणा ग्रन्थोमां उपशान्त क्षीणकषाययोः पाठ छे प-
ण तेनो अर्थ "उपशम श्रेणिधेत अने क्षपक श्रेणिवन्तने" एवो
करवो. एम विचारसारमां कह्युं छे.

२ १३ मे गुणस्थाने पण शुक्लध्यानमो चोथो भेद निर्वि-
कल्पदशाए संभवे छे.

ज्ञानानुसारं] उपधिनो त्याग करवो ते उपधीउत्सर्ग.

४ अशुद्ध आहार ग्रहण करवानो त्याग करवो ते अशुद्ध
हारोत्सर्ग. (ए ४ द्रव्योत्सर्ग कह्या.)

१ क्रोधादिकषायनो त्याग करवो ते कषायोत्सर्ग.

२ मिथ्यात्वादि भवबन्धनना कारणनो त्याग करवो ते
भवोत्सर्ग

३ कर्मबन्धना कारणोनो त्याग ते कर्मोत्सर्ग. ए ३ भावो
त्सर्ग कह्या.

ए प्रमाणे १२ प्रकारनो तप कर्मनी निर्जरा करनार छे.

वन्धतत्त्व

अवतरण—पूर्वे ३४ मी गाथामां [illegible]
[illegible]ता ते चार भेदनो अर्थ आ गाथामां कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

[illegible]इसहावो वुत्तो, ठिई कालावहारणं ।
[illegible]णुभागो रसो णेओ. पएसो दलसंचओ ॥३७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

[illegible]कृतिः स्वभाव उक्तः, स्थितिः [illegible]
[illegible]नुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसंचयः ॥३७॥

॥ शब्दार्थः ॥

[illegible]इ—प्रकृति
[illegible]हाव—स्वभाव
[illegible]त्तो—कह्यो छे
ठिई—स्थिति
[illegible]ल—काळनो
[illegible]अवहारणं—अवधारण (—नियम)

अणुभागो—[illegible]
रसो—[illegible]
णेओ—[illegible]
पएसो—[illegible]
दल—[illegible]
संचओ—[illegible]

गाथार्थः—प्रकृति एटले कर्मनो [illegible]
[illegible]ना काळनो नियम. अनुभाग एटले कर्मनो [illegible]
[illegible]कर्मना दलिकनो (अणुओनो) [illegible]
[illegible](चार) ना भेद छे, अथवा ए चार [illegible] छे.

विस्तरार्थः—प्रकृति एटले [illegible]
[illegible]छे, ते कर्मनो स्वभाव केवो छे ! [illegible]

आपशे ? ते प्रकृतिबन्ध कहेवाय. जेमके ज्ञानावरण कर्म आत्माना ज्ञानगुणनुं आच्छादन करे, वेदनीयकर्म आत्माने सुखदुःख उपजावे, मोहनीयकर्म आत्माने विवेकथी भूलावे इत्यादि जे कर्मनो जे स्वभाव ते प्रकृतिबन्ध एटले कर्मनो स्वभाव कहेलो छे. ते दरेक कर्मना स्वभाव आगळ गाथाथीज कहेवाशे,

तथा स्थिति एटले काळनुं अवधारण–एटले निश्चय करेल छे अर्थात् कयुं कर्म आत्मानी साथे केटलो काळ रही शके ? एवा प्रकारनो जे नियम ते काळनुं अवधारण कहेवाय. ते पण आगळ गाथाथीज कहेवाशे,

तथा अनुभाग एटले कर्मना शुभाशुभ फळनी तीव्रता अथवा मन्दता ते रस कहेवाय छे, जेमके कोइने कोइ कर्म सुखरूपे वेदाय छे, अने कोइ कर्म दुःखरूपे वेदाय छे, अने ते पण कोइने अत्यन्त तीव्र सुख के दुःखरूपे वेदाय छे, अने कोइने अतिमन्द सुख के दुःखरूपे वेदाय छे, जेम कोइक जीवे पूर्वे ज्वरसंबन्धि अशाता वेदनीय कर्म एवा प्रकारनुं बांध्युं छे के जे आ भवे तावरूपे उदय आवतां त्रण दिवसना तावमां शरीर एकदम नहिं उठी शकाय तेवुं अशक्त बनावी देछे, अने कोइकने महिनाना महिना सुधी ताव शरीरमां रहे छे तोपण तेने खबर सरखी पण पडती नथी तेनुं कारण ए छे के पहेला जीवे अशाता वेदनीयकर्म तथा प्रकारना तीव्र परिणाम वडे तीव्र रसवाळु बांधेलुं छे, अने बीजा जीवे तेवा प्रकारना रसवाळु नहिं बांधतां मन्द रसवाळु बांधेलुं छे, एवा प्रकारनी कर्मबन्धमां शुभाशुभ उदय आववाना नियम पूर्वक उदय काळे जे तीव्र अनुभव अथवा मन्द अनुभवनो नियम कर्म बन्धाती वखते निर्णित थएलो होय छे ते अनुभाग अथवा रस कहेवाय,

तथा प्रदेश एटले दल-परमाणुओना संचय-समुदाय. अ-
कर्म ते कार्मणवर्गणा नामना पुद्गल परमाणुओना समुदाय-
छे, माटे कर्म अवश्य परमाणुओना समुदायनुं बनेलुं छे, ते
णुओ सर्व कर्मना सरखी संख्याए होता नथी पण हीनाधिक
होय छे.

ए प्रमाणे कर्मबंध चार प्रकारनो छे तेमां पण कर्म बंधना
४ हेतु छे. १ अज्ञान (-मिथ्यात्व)-२ अव्रत (-त्यागनो
ाग)-३ कषाय-ने ४ योग ए चार कारणमांथी पण प्रकृति-
अने प्रदेशबंधनुं कारण योग छे, अने स्थितिबंध तथा अनु-
बंधनुं कारण कषाय (मिथ्यात्वने अव्रत ते कषायमां अंतर्गत
वा) छे ए प्रमाणे बंधतत्त्वना ४ भेद कह्या.

---

१ शास्त्रोमां कर्मना अनुभागनो अर्थ घणा सरा ग्रन्थोमां
मव करेलो छे, केटलाएक ग्रन्थोमां शुभाशुभफळ, केटलाएक
ग्रन्थोमां तीव्रमन्दता, अने कोइक ठेकाणे स्वभाव पण
करेलो छे. अपेक्षापूर्वक विचारतां सर्वे अर्थ बन्ध बेसता
अने ते अपेक्षाविचारनुं वर्णन अत्रे ग्रन्थ वृद्धिकारक
ना मध्यी नहि दर्शाववा छतां जे तात्पर्य समजायुं छे ते
छुं ते संक्षेपमां आ प्रमाणे-

उदय वखते तीव्र अथवा मंद थतो शुभ (आह्लादकारी)
अशुभ (अनाह्लादकारी) अनुभव आपवानां जे कारणभूत
ते अनुभाग वा रस कहेवाय.

अर्थात् अनुभागबन्ध ३ प्रकारना नियममां कारणरूप छे
आ प्रमाणे-१ उदयनुं नियमितपणुं करवुं. २ जीवने अनु-
पणुं वा प्रतिकूळ पणुं उपजाववुं. ३ शुभ अशुभ प्रमाणमां
न आपवुं. ए त्रण कर्मना अनुभागबन्ध कारणरूपे छे.

१ थाडु ग्रन्थमां दरेक कर्मना केटला परमाणु छे ते ग्रन्थ-
र दर्शावेला नहि होवाथी संक्षेपमां अत्रे दर्शावाय छे,-त्यां

अवतरण—हवे आ गाथामां आठ प्रकारना कर्मनां ना
अने तेना उत्तरभेद केटला ? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ३८ मी ॥

इह नाणदंसणावर–णवेयमोहाउनामगोयाणि ।
विग्घं च पण नव दुअ–ट्ठवीस चउतिसयदुपणविहं

संस्कृतानुवादः

अत्र ज्ञानदर्शनावरण-वेदनीयमोहायुर्नामगोत्राणि ।
विघ्नं च पंचनवद्व्यष्टाविंशचतुस्त्रिशतद्विपंचविधं ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—

इह–अहिं	विग्घं–अन्तराय कर्म
नाण–ज्ञानावरण कर्म	पण–पांचप्रकारनुं
दंसणावरण–दर्शनावरण कर्म	नव–नव प्रकारनुं
वेय–वेदनीय कर्म	दु–बे प्रकारनुं
मोह–मोहनीय कर्म	अट्ठवीस–अट्ठावीश प्रकारनुं
आउ–आयुष्य कर्म	चउ–चार प्रकारनुं
नाम–नामकर्म	तिसय–एकसो त्रण प्रकारनुं
गोयाणि–गोत्रकर्म	दु–बे प्रकारनुं
	पणविहं–पांच प्रकारनुं

* कर्मनी अधिक स्थिति ते कर्मना परमाणु अधिक आवता परन्तु वेदनीयना सर्वथी अधिक परमाणु आवता ते आ क्रमे
आयुष्यना—सर्वथी अल्प (पण असंख्य)
नाम-गोत्रना—आयु० थी विशेषाधिक (परस्पर तुल्य) ते
ज्ञानाव०—दर्शं०—ने अन्त० ना { नाम० गो० थी विशेषा० ने परस्परतुल्य
मोहनीयना—ज्ञानावरणादि ३ थी विशेषा०
वेदनीयना—मोह० थी पण विशेषा०

गाथार्थः—अहिं ज्ञानावरण कर्म ५ प्रकारनुं-दर्शनावरणकर्म ९ प्रकारनुं-वेदनीय कर्म २ प्रकारनुं-मोहनीय कर्म २८ प्रकारनुं-आयुष्यकर्म ४ प्रकारनुं-नामकर्म १०३ प्रकारनुं-गोत्र कर्म २ प्रकारनुं-ने अन्तराय कर्म ५ प्रकारनुं छे. (ए प्रमाणे ८ मूळ कर्म १५८ उत्तर भेद छे.)

विस्तरार्थ—हव पूर्वे गाथामां जे प्रकृतिबंध, एटले कर्मनो स्वभाव कह्या ते कर्मनां नाम अने तेना भेद दर्शावे छे. अथवा प्रकृतिबंध बे प्रकारनो १ मूळप्रकृतिबंध ने २ उत्तरप्रकृतिबंध तेमां मूळप्रकृतिबंध ८ प्रकार ने उत्तरप्रकृतिबंध १५८ प्रकारे छे. ते आ प्रमाणे—

आत्माना ज्ञान गुणने आवरे (आच्छादन करे-रोके) ते ज्ञानावरण कर्मना ५ भेद—१ मतिज्ञानाव०-२ श्रुतज्ञाना०-३ अवधिज्ञानाव०-४ मनःपर्यवज्ञानाव०-ने ५ मुं केवळज्ञानावरण. (ए पांच उत्तर प्रकृतिबंध कहेवाय.)

आत्माना दर्शन गुणने आवरे ते दर्शनावरण कर्म ९ प्रकारनुं प्रथम पाप तत्त्वना भेदमां कह्या प्रमाणे जाणवुं.

आत्माने सुख दुःखरूप वेदाय ते वेदनीय कर्म बे प्रकारनुं, १ शाता-ने २ अशाता वेदनीय.

आत्माने मोहपात-मोह पमाडे एटले विवेकथी मुंझावे ते मोहनीय कर्म पापतत्त्वमां कह्या प्रमाणे २८ प्रकारनुं जाणवुं.

आत्माने परगतिमां एति-लइ जाय ते आयुष्य कर्म देवायु, नरकायु, तिर्यगायु, ने मनुष्यायु ए प्रमाणे ४ प्रकारनुं छे.

आत्माने नामयति-अनेकरूप भवे नमावे-पमाडे ते नाम

१ आ गाथा श्रीमान्‌ मागेक वगेरे तरफथी प्रसिद्ध थयेल प्रतमां ३९ मी छे, पण अहंकमनो मुख्यताये आ पुस्तकमां मी राखी छे.

कर्म पुन्य अने पाप तत्त्वमां कह्या प्रमाणे १०३ प्रकारे छे, तो संक्षेपमां ते भेदो आ प्रमाणे छे–४ गति–५ जाति–५ शरीर-३उ ग–१५ बंधन–५संघातन–६संघयण ६–संस्थान–५वर्ण–२गंध रस–८ स्पर्श–४ आनुपूर्वी–२ विहायोगति–१० त्रसदशक– स्थावर दशक—ने ८ प्रत्येक प्रकृति. एना अर्थविस्तार पुन्य अ पाप तत्त्वमां आवी गयो छे, ने जे बाकी रह्या होय ते प्रथम क ग्रंथथी जाणवो.

आत्माने उच्च अथवा नीच शब्दोवडे गूयते—बोलावा ते गोत्र कर्म उच्चगोत्र ने नीच गोत्र एम २ प्रकारनुं छे.

आत्माने जेनाथी दानादिकना विघ्न—अन्तराय पडे ते अ न्तराय अथवा विघ्न कर्म पापतत्त्वमां कह्या प्रमाणे पांच प्रकार छे. ए प्रमाणे ज्ञानावरणादि मूळप्रकृतियो ८ छे, अने मतिज्ञान वरणादि उत्तरप्रकृतियो १५८ छे.

अवतरण—पूर्व गाथामां आठ कर्म अने तेना विशेष भे कहीने हवे आ गाथामां ते आठ कर्मोना स्वभाव (प्रकृति बंध कया कया प्रकारनां छे ते दर्शावे छे.

॥ मूळगाथा ३९ मी ॥

पडपडिहारसिमज्ज, हडचित्तकुलालभंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ॥

संस्कृतानुवादः

पटप्रतिहारासिमद्य-हडिचित्रककुलालभांडागारीणाम् ।
यथैतेषां भावाः-कर्मणामपि जानीथ तथा भावाः ॥३९॥

शब्दार्थः—

पड-पाटो	जह-जेम (जेवा)
पडिहार-द्वारपाळ	एएसिं-एओना (पाटावगेरेना)
असि-तरवार (खड्ग)	भावा-स्वभाव छे
मज्ज-मदिरा	कम्माण वि-कर्मोना पण
हड-हेडो	
चित्त-चितारो	जाण-जाणवा
कुलाल-कुंभार	तह-तेम (तेवा)
भंडगारीणं-भंडारी (ना)	भावा-स्वभाव

गाथार्थः—वस्त्र वगेरेनो पाटो—द्वारपाळ—खड्ग—मदिरा—हेडी—चितारो—कुंभार—अने भंडारी एओना (एटना) जेवा स्वभाव छे तेवा स्वभाव आठ कर्मना पण जाणवा. (अर्थात् ज्ञानाव० नो स्वभाव आंखे बांधेला वस्त्रना पाटा सरखो छे इत्यादि अनुक्रमे ८ कर्मना ८ स्वभाव जाणवा.)

विस्तरार्थः—हवे आठ मूळ कर्मोना जुदा जुदा स्वभाव दृष्टान्तपूर्वक कहेवाय छे ते आ प्रमाणे—

ज्ञानावरणीय कर्म आंखना पाटा सरखुं छे, एटले आंखे पाटो बांधवाथी जेम कोइ पण वस्तु देखी-जाणी शकाती नथी तेम आत्मानी ज्ञानरूप चक्षुने ज्ञानावरण कर्मरूप पाटो—पडदो आवी जवाथी आत्मा कंइ पण जाणी शकतो नथी.

दर्शनावरणीय कर्म द्वारपाळ सरखुं छे, एटले राजा जेम द्वारपाळे राजसभामां आवतां रोकेला मनुष्योने देखी शके नहि, अथवा राजाने देखवा इच्छता मनुष्यो द्वारपाळे रोकाण करवाथी

१ राजा प्रजाने न देखे अने प्रजा राजाने न देखे एम बन्ने पक्षमां दर्शनाव० कर्मना दृष्टान्तनो लागवपणुं प्राचीन ग्रन्थमां कह्यो छे.

राजाने देखी शके नहि तेम आत्मानो देखवानो स्वभाव छे छतां पण दर्शनावरण कर्मना उदयथी पदार्थ या विषयोने देखी शके नहि.

वेदनीय कर्म मधवडे लेपायली तरवार अथवा खड्ग सरखुं छे, एटले मधवडे लेपायली तरवारने चाटतां प्रथम स्वाद लागे पण जीभ कपावाथी परिणाम अत्यंत पीडा करनार थाय तेम शातावेदनीयने अनुभवतां परिणाम अत्यंत अशातानो अनुभव करवो पडे तेम वेदनीय कर्म जीवने पौद्गलिक सुख अने दुःख बन्ने आपे छे.

मोहनीय कर्म मदिरा सरखु छे, एटले मदिरा पीवाथी मनुष्य जेम परवश अने विवेक रहित थवाथी हिताहित जाणी शकतो नथी, तेम जीव पण मोहनीय कर्मना वशथी विवेकशून्य थतां आत्माने हितकर अने अहितकर शुं छे ? ते जाणी शकतो नथी. अर्थात् मदिरोन्मत्त जीव जेम मान मां कहे ने बहेन पण कहे हाथीने हाथी कहे अने पाडो पण कहे अथवा स्त्रीने स्त्री कहे ने मा पण कहे अने पाडाने पाडो कहे अने हाथी पण कहे एम गमे तेम मनमां आवे तेम साचा जूठो बकवाद कर्या करे तेम मोहनीय कर्मथी उन्मत्त थयेलो जीव पण धर्मने धर्म कहे ने अधर्म पण कहे, अधर्मने अधर्म कहे ने धर्म पण कहे, एम साचा जूठा मनः कल्पित अर्थ बोल्या करे माटे मोहनीय कर्म ते खरेखर मदिरा सरखुंज छे.

आयुष्य कर्म बेडी (जेल) सरखु छे, एटले जेम जेलमां पूरायलो मनुष्य जेलमांथी छूटवा इच्छे तो पण छूटी शके नहि पर-

---

१ अहिं ५ निद्रा ते आत्माने उत्पन्न थयेली दर्शनलब्धिने उपघात करनार [-रोकनार) छे. ने चक्षुर्दर्शनावरणादि चार तो आत्मानी दर्शनलब्धिने मूळथीज हणनार छे [दर्शन लब्धिने उत्पन्नज थवा दे नहि.]—इति कर्मप्रकृत्यादौ

न्धु न्यायाधीशे ज्यां सुधीनी टीप मारी छे त्यांसुधी . जेलमां रहेवुं ज पडे तेम कुद्रतना न्यायाधीशे आत्मपरिणामरुप गुन्हाने अनुसारे जे गतिमां जेटलो काळ रहेवा फरमाव्युं छे तेटलो काळ ते गतिमां रहेवुंज पडे पण जीव ते गतिमांथी छूटी बीजी गतिमां जवानी इच्छा करे तो पण निर्णित थयेला काळरुप आयुष्यने पूर्ण कर्या विना बीजी गतिमां जइ शके नहिं. माटे आयुष्य कर्म जेल (अथवा पींजरा) सरखुं छे. चार गतिमांथी नरक गतिना जीवो अत्यंत दुःख पडवाथी नरकगतिमांथी छुटवा इच्छे छे, पण छुटी शकता नथी, ने अनुत्तर देवो अनंत पौद्गलिक सुखने वैराग्यवडे असार जाणवाथी मनुष्यगतिमां आवी चारित्र अंगीकार करवा इच्छे छे पण देवगतिमांथी (आयुष्य पूर्ण थया विना स्वयं) छुटी शकता नथी अने बीजा जीवो तो प्रायः पोतानो भव छोडवा इच्छता नथी, अने कदाच उंच गतिमां जवानी आशाए छोडवा इच्छे तो पण छोडी शके नहिं माटे आयुष्य कर्म ते बेडी सरखुंज छे.

नाम कर्म चितारा सरखुं छे, एटले चितारो जेम जीवनी छबीओ चितरतां तेना हाथ पग शरीर वगेरे भिन्न भिन्न जातना आकार चितरीने एक छबी बनावे, तेम नामकर्म पण जीवनां देवत्व-नारकत्वादि तथा हाथ-पग-शरीर-संघयण-आकृति-इत्यादि जुदा जुदा प्रकारनां (जीवनां) रुप घडे (बनावे) छे, माटे नामकर्म चितारा सरखु छे.

गोत्रकर्म कुंभार सरखुं छे, एटले कुंभार जेम एक घडो मदिरानो बनावे ते दुगंछनीय थाय, अने बीजो घडो मंगल कुंभनो नो बनावे ते पूजनीक थाय तेम गोत्रकर्म पन कोइ आत्माने अ स्पशादि (ढेड-चमार-भंगी-वाघरी इत्यादि) हीनकुळनो बनावे

ते जगतमां हीन मनाय, अने कोइ आत्माने क्षत्रियादि उच्च कुळवाळो बनावे ते जगतमां पूज्य मनाय माटे गोत्रकर्म कुंभार सरखुं छे

१ वर्तमान समयमां अनार्य प्रजाना शिक्षणनी—राज्यकुशळतानी हुन्नरकळानी-अने आबादी वगेरे कारणोनी असरथी अर्थात् ते शिक्षणथी आर्यसंस्कारो पलटावाथी केटलाएक भाषाशास्त्रीओ एवी कल्पना करे छे के—मनुष्यत्व सर्वने सरखुं छे, माटे सर्वनो हक्क पण सरखो होवो जोइए माटे अमुक माणस उच्चकुळनो, अने अमुक माणस हीनकुळनो ए कल्पना साक्षर वर्गने अयोग्य छे, कारणके महात्माओने तो 'वसुधैव कुटुंबकम् आखी पृथ्वी पोताना कुटुम्ब तुल्य ' छे. तो आवी उच्चभावनामां अमुक उच्च अने अमुक नीच एम मानवानो अवकाशज क्यांथी होय ! इत्यादि अनेक कल्पनाओ करी सर्वने एक सरखो व्यवहार करवानुं शीघ्रथा प्रयत्न करे छे, पण ते सर्व आर्यधर्मनी फीलोसोफीनु (तत्त्वज्ञाननु) अनभिज्ञपणुं (अज्ञान) ज जाहेर करे छे, कारणके उच्च नीच पणानो व्यवहार आर्यधर्ममां मात्र कर्म (कार्य) ने अंगे ज नहि परन्तु तेवा तेवा प्रकारना कर्मथी उत्पन्न थता गुणोवडे पण मनायलो छे. वळी उच्च नीचपणानो व्यवहार मुखमात्रथी भले न मानवामां आवे पण कुदरतथी रागादिक सद्गुणोने जे उच्चत्वनुं मान अपाय छे,- अने दुर्गुणोने जे हीनपणानुं मान अपाय छे ते कोनाथी निवारण थइ शके तेम छे ? जो कहो के उच्च गुणोने अंगे उच्चता अने दुर्गुणोने अंगे हीनता तो मानवा योग्यज छे, तो पछी आर्य धर्म पण तेमज कहे छे, तो सर्वमनुष्यने एक सरखा मानवानी कल्पना कइ रीते थइ शके ? अहिं सर्व वातनो सार एज छे के दुनियामां उच्चपणुं अने हीनपणुं आज काळथी नहिं पण अनादि काळथी चाल्युं आव्युं छे, ने चालशे. वळी अनार्य प्रजामां उच्चकुळ हीनकुळ मानवानो व्यवहार नथी एम कहेवुं पण असत्य छे, कारणके ते प्रजामां पण लॉर्ड-अमी

अन्तरायकर्म भंडारी सरखुं छे, एटले राजाने दान देवुं हो- छतां पण जो भंडारी प्रतिकूळ होय तो राजाथी दान आपी शकाय नहिं, ने दान लेनारथी लइ शकाय पण नहिं अने अनु- कूळ होय तो राजा दानादि करी शके तेम अहिं आत्मा (रूप- राजा) अन्तराय कर्म (रूप भंडारी) नी (क्षयोपशमरूप) अनुकूळताए दानादि करी शके, अने [उदयरूप) प्रतिकूळताए दानादिक न करी शके, माटे अन्तरायकर्म भंडारी तुल्य छे.

ए प्रमाणे पाटा विगेरे आठवस्तुओना जेवा जेवा स्वभाव कह्या तेवा प्रकारे आठकर्मोना पण जुदा जुदा स्वभाव जाणवा.

अवतरण—हवे आ अने आगळनी गाथामां कया मूळ क- र्मनी केटली स्थिति बन्धाय छे ? ते (–स्थितिबन्ध) दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

नाणे य दंसणावरणे, वेयणिए चेव अन्तराए अ ।
तीसं कोडाकोडी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ॥४०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ज्ञाने च दर्शनावरणे–वेदनीये चैवान्तराये च ।
त्रिंशत्कोटाकोटि–रतराणां स्थिति श्चोत्कृष्टा ॥ ४० ॥

---

१ इत्यादि दानदान कुटुंबवाळा उच्च मनाय छे. अने बीजा ते अपेक्षाए हीन मनाय छे, माटे रूपान्तरथी अनार्य प्रजामां पण उंचकुळ नीचकुळ मानवानो व्यवहार छे मे ते कुदरतना घरनो होवाथी कोइ निवारवा समर्थ पण नथी सारांश के–उ- च्चत्व नीचत्व मानवानो व्यवहार योग्यज छे. अने कर्मशास्त्र- ना नियम पूर्वकज छे.

॥ शब्दार्थः ॥

नाणे-ज्ञानाव० कर्मनी	तीसं-त्रीस (३०)
दंसणावरणे-दर्शनाव० कर्मनी	कोडाकोडी-कोडाकोड(१००-००००० ,००००००००)
वेयणिए-वेदनीयकर्मनी	अयराणं-सागरोपम
चेव-निश्चय	ठिइ-स्थिति
अंतराए-अन्तरायकर्मनी	उक्कोसा-उत्कृष्ट

गाथार्थः—ज्ञानावरणकर्मनी-दर्शनावरणकर्मनी-वेदनीयकर्मनी-अने अन्तराय कर्मनी उत्कृष्ट स्थिति निश्चय ३० कोडाकोडी (=३०००००००००००००००) सागरोपम जेटली छे,

विस्तरार्थ—सुगम छे.

अवतरण—पूर्वगाथामां ४ मूळकर्मनी उत्कृष्ट स्थिति दर्शावीने हवे आ गाथामां बाकी रहेलां ४ मूळकर्मनी उ० स्थिति दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ४२ मी ॥

सित्तरि कोडाकोडी, मोहणिए वीस नाम गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउठिइबंध उक्कोसा ॥ ४२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सप्ततिः कोटीकोटि-र्मोहनीये विंशतिर्नामगोत्रयोः ।
त्रयस्त्रिंशदतराण्यायुः, स्थितिबन्ध उत्कृष्टः ॥४२॥

---

१ [illegible]

॥ शब्दार्थः ॥

सित्तरि-सित्तेर (७०)	तित्तीसं-तेत्रीश (३३)
कोडाकोडी-क्रोडक्रोड	अयराइं-सागरोपम
मोहणिए-मोहनीय कर्मनी	आउ-आयुष्य कर्मनो
वीस-वीश २० (को० को०)	ठिइबंध-स्थितिबंध
नाम-नाम कर्मना	उक्कोसा-उत्कृष्टथी
गोएसु-गोत्रकर्मनी	

गाथार्थः—मोहनीय कर्मनो स्थितिबन्ध ७० को० को० साग०, नाम अने गोत्रकर्मनो स्थितिबन्ध २० को० को० साग० अने आयुष्यनो उ० स्थि० बन्ध ३३ सागरोपम छे.

विस्तरार्थः—सुगम छे.

अवतरण—हवे आ गाथामां आठ मूळकर्मनो जघन्य स्थितिबन्ध दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ४२ ॥

बारसमुहुत्त जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नामगोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बन्धट्ठिई माणं ॥ ४२ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्वादशमुहूर्त्तानि जघन्या, वेदनीयेऽष्टौ नामगोत्रयोः ।
शेषाणामन्तर्मुहूर्त्त-मेतद्बन्धस्थितिमानं ॥ ४२ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

बारस-बार (१२)	वेयणिए-वेदनीय कर्मनी
मुहुत्त-मुहूर्त	अट्ठ-आठ (८)
जहन्ना-जघन्य (अल्प)	नाम-नामकर्मनी

गोयम्मु-गोत्रकर्मनी
सेसाणं-बाकीनां पांच कर्मनी
अन्तमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त

एयं-ए (प्रमाणे)
बंधट्ठिई-कर्मना स्थितिबंधनुं
माणं-प्रमाण छे

गाथार्थ—वेदनीयकर्मनी जघ० स्थिति १२ मुहूर्तनी नाम
कर्म अने गोत्रकर्मनी जघ० स्थि० ८ मुहूर्तनी, अने शेष (-बाकी
नां) ५ कर्मनी जघ० स्थि० अन्तर्मु० छे. ए प्रमाणे (आठे कर्म
जघ० स्थितिबन्धनुं प्रमाण कह्युं,

विस्तरार्थः—सुगम छे.

१ श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां १ अन्तर्मु० नो पण कह्यो छे, मो
अकषायी जीवने २ समयनी पण होय छे. बीजी सर्व स्थिति
ओ सकषायी होवाथी अन्तर्मु० थी ओछी न होय.

॥ ८ मूळकर्मनी स्थिति अने *अबाधा ॥

कर्म	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट अबाधा	जघन्य अबाधा
ज्ञानाव०	३० को० को० सा०	१ अन्तर्मु०	३००० वर्ष	अन्तर्मु०
दर्शना०	,,	,,	,,	,,
वेदनीय	,,	१२ मुहूर्त	,,	,,
मोहनीय	७० को० को० सा०	१ अन्तर्मु०	७००० वर्ष	,,
आयुष्य	३३ सा०	अन्तर्मु०	साधिकपूर्व क्रोडवर्षनो त्रीजो भाग	,,
नाम	२० को० को० सा०	८ मुहूर्त	२००० वर्ष	,,
गोत्र	,,	,,	,,	,,
अन्तराय	३० को० को०	१ अन्तर्मु०	३००० वर्ष	,,

* कर्म बन्धाया बाद जेटला काळ सुधी जीवने कंइपण फळ न आपे तेटलो काळ अबाधा काळ कहेवाय छे, अर्थात दरेक कर्म पोतपोतानो अबाधा काळ वीत्या बाद उदय आवे.

ગોઅ ગોત્રકર્મની	એવં-એ (પ્રમાણે)
સેસાણં-બાકીનાં પાંચ કર્મની	જંઘઈ-કર્મના સ્થિ-
અંતમુહુત્તં-અંતર્મુહૂર્ત	તિને પ્રમાણ છે

ગાથાર્થ—વેદનીયકર્મની જઘ૦ સ્થિતિ ૧ [illegible] કહી અને ગોત્રકર્મની જઘ૦ સ્થિ૦ ૮ મુહૂર્તની) ૫ કર્મની જઘ૦ સ્થિ૦ અંતર્મુ૦ છે, એ જઘ૦ સ્થિતિઓનું પ્રમાણ કહ્યું,

વિસ્તરાર્થઃ—સુગમ છે.

[illegible]

विस्तरार्थः—हवे मोक्षतत्त्वना जे नव भेद छे ते ९ अनुयोगद्वार कहेवाय छे. ए ९ द्वार फक्त मोक्षने अंगे छे, एम नहि पण दरेक पदार्थने अंगे ए ९ द्वार अवतारी शकाय छे. ते ९ द्वारनुं स्वरूप आ प्रमाणे—

१ सत्पदप्ररूपणाद्वार—कोइ पण पद (-शब्द) वाळो पदार्थ (भाव) सत् (विद्यमान) छे के असत् छे? अर्थात् ते पदार्थ जगतमां छे के नहि? तेनी जे साबिती आपवी ते सत्पदप्ररूपणा.

२ द्रव्यप्रमाणद्वार—ते पदार्थ जगत्मां केटला छे? तेनी संख्या दर्शाववी ते द्रव्यप्रमाणद्वार.

३ क्षेत्रद्वार—ते पदार्थ (तेमांनो एक वा अनेक पदार्थ) दुनियामां केटली जग्या रोकीने रह्यो छे? एम जे दर्शाववुं ते क्षेत्रद्वार अर्थात् अवगाहनाद्वार.

४ स्पर्शनाद्वार—पुनः ते पदार्थ जे क्षेत्रमां (जग्यामां) रह्यो ते क्षेत्रमां जेटला आकाश प्रदेशो छे तेटलाज स्पर्शीने रहेल छे के तेथी अधिक? एम दर्शाववुं ते स्पर्शनाद्वार. अहिं एक अणु (परमाणु) ओछामां ओछी ७ आकाश प्रदेशने (१ पोतानामां अवगाहेलो, ने बीजा ६ दिशिना ६ प्रदेशने) स्पर्शे छे. परन्तु अवगाहना एकज आकाश प्रदेशनी छे. ए प्रमाणे अवगाहना अने स्पर्शनामां तफावत छे, अर्थात् अवगाहनाथी (क्षेत्रद्वारथी) स्पर्शना अधिकज होय छे.

५ काळद्वार—ते पदार्थनी स्थिति (टकाव) केटलाक काळपर्यन्तनी छे? एम दर्शाववुं ते काळद्वार.

६ अन्तरद्वार—जे पदार्थ जे रूपे छे ते पदार्थ मटीने बीजारूपे थइ पुनः ते (असल्ना) रूपे थाय के नहि? अने

मोक्षतत्त्व

अवतरणः—हवे नवमा मोक्षतत्त्वनो प्रारंभ थाय छे, तेमां प्रथम आ गाथामां मोक्षना ९ भेद एटले नव द्वार कहेवाय छे.

संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य ।
कालो अ अंतर भागो, भावे अप्पाबहु चेव ॥ ४१ ॥

संस्कृतानुवादः

सत्पदप्ररूपणा, द्रव्य-प्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शना च ।
कालश्चान्तरं भागो, भावोऽल्पबहुत्वं चैव ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—

संत-छता (विद्यमान)
पय-पदनी
परूवणया-प्ररूपणाद्वार
दव्वपमाणं-संख्या प्रमाणद्वार
च-अने
खित्त-क्षेत्रद्वार
फुसणा-स्पर्शनाद्वार
कालो कालद्वार
अंतर-अंतर (विरह) द्वार
भाग-भागद्वार
भावे-भावद्वार
अप्पाबहुं-अल्पबहुत्वद्वार
चेव-निश्चे

गाथार्थः—१ सत् (विद्यमान) पदनी प्ररूपणा द्वार—२ द्रव्य (संख्या) प्रमाणद्वार-३ क्षेत्रद्वार-४ स्पर्शनाद्वार-५ कालद्वार-६ अंतरद्वार-७ भागद्वार-८ भावद्वार अने ९ अल्पबहुत्वद्वार (ए ९ द्वार अथवा ९ भेद मोक्षतत्त्वना छे.)

णामिक भाव. (जीवने भव्यत्व-अभव्यत्व-ने जीवत्व एम ३ प्र-कारनो, अने अजीवने पोतपोताना स्वभावरूप अनेक प्रकारनो छे). ए ५ भावमांथी कयो पदार्थ कया भावमां अंतर्गत थइ शके छे ? एम विचारवुं ते भावद्वार.

९ अल्पबहुत्वद्वार—ते पदार्थना भेदोमां परस्पर संख्यानी हीनाधिकता दर्शाववी ते अल्पबहुत्वद्वार,

ए प्रमाणे ए नव द्वारो प्रत्येक पदार्थमां अथवा पदार्थना गुणने पण लगाडी शकाय. ने ते पद्धति गुरुगमथी विचारवा योग्य छे, अहिं ग्रंथकर्त्ता ए नवे द्वार मोक्षतत्त्वमां (सिद्ध जीवोने अंगे) उतारनार छे,

---

अवतरण—आ गाथामां मोक्षना (९ भेदमांथी) पहेला भेदनो अर्थ दर्शावे छे.

संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमव्व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं ॥४४॥

संस्कृतानुवादः

सत् शुद्धपदत्वाद्विद्यमानं खकुसुमवत् न असत् ।
मोक्ष इति पदं तस्य तु प्ररूपणा मार्गणाभिः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—

संतं-सत् (विद्यमान]
सुद्ध-शुद्ध-एक
पयत्ता-पदपणु होवाथी
विज्जंतं-विद्यमान
ख-आकाशना
कुसुम-पुष्प-फुलनी
व्व-पेठे
न-नथी
असंतं-असत् (-अविद्यमान)
मुक्ख—मोक्ष

जो तेम थाय तो ते अन्तरने केटलो काळ रहीने पुनः सिद्धित्व
पणुं आवे ? एम जे दर्शाववुं ते अन्तर (एटले व्यवधान-आं-
तरा) कहेवाय.

७ भागद्वार—ते पदार्थनी संख्या स्वजातीय होय (वा पर-
जातीय) पदार्थोना केटलामे भागे (वा केटला गुणी ?) छे ?
एम दर्शाववुं ते भागद्वार.

८ भावद्वार—औपशमिक-औदयिक-क्षायिक-क्षायोपश-
मिक-ने पारिणामिक ए भावोमांथी ते पदार्थ कया भावमां अंतर्गत
थाय छे ? एम दर्शाववुं ते भावद्वार. अहिं जगतना दरेक पदार्थो ए
भावोमांना कोइपण एकादिक भावमां अन्तर्गत होय छे. त्यां मोह-
नीय कर्मना उपशमथी उत्पन्न थयेलो जे भाव (कषायादिकनी
शान्ति) ते औपशमिकभाव, (उपशम सम्यक्त्व ने उपशम
चारित्र ए बे प्रकारनो छे अने आ भाव मात्र मोहनीय कर्मनो होय
छे.) तथा कर्मना क्षयोपशमथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते क्षायोप-
शमिक भाव, (दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य-लब्धि० सम्यक्त्व-
देशविरति सर्वविरति-मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यव ज्ञान-
चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शन-अवधिदर्शन-मतिअज्ञान-श्रुतअज्ञान-ने विभंग
ज्ञान ए प्रमाणे १८ प्रकारनो छे ने ते घातीकर्मोनो होय छे.)
तथा कर्मना क्षयथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते क्षायिकभाव,
(केवलज्ञान-केवलदर्शन-दानादिलब्धि ५-सम्यक्त्व चारित्र ए
क्षायिक सम्यक्त्व एम ९ प्रकारे छे ने ते घातीकर्मनो होय छे.) तथा
कर्मना उदयथी उत्पन्न थयेलो जे भाव ते औदयिक भाव. (४
गति-४ कषाय-३ वेद-६ लेश्या-१ अज्ञान-१ मिथ्यात्व-१ अ-
सिद्धत्व-१ असंयम ए २१ प्रकारनो छे ने ते सर्वकर्मोनो छे) तथा
जीव अने अजीवने अनादिकालथी परिणमवारूप जे भाव ते पारि-

ः भाव. (जीवने भव्यत्व-अभव्यत्व-ने जीवत्व एम ३ प्र-
, अने अजीवने पोतपोताना स्वभावरुप अनेक प्रकारनो
(९ भावमांथी कयो पदार्थ कया भावमां अंतर्गत थइ शके
म विचारवुं ते भावद्वार.

; अल्पबहुत्वद्वार—ते पदार्थना भेदोमां परस्पर संख्यानी
थकता दर्शाववी ते अल्पबहुत्वद्वार,

(प्रमाणे ए नव द्वारो प्रत्येक पदार्थने अथवा पदार्थना गुणने
गाडी शकाय. ने ते पद्धति गुरुगमथी विचारवा योग्य छे,
ग्रंथकर्त्ता ए नवे द्वार मोक्षतत्त्वमां (सिद्ध जीवोने अंगे)
नार छे,

अवतरण—आ गाथामां मोक्षना (९ भेदमांथी) पहेला
ो अर्थ दर्शावे छे.

सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमव्व न असंतं ।
खत्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं ॥४४ ॥

संस्कृतानुवादः

शुद्धपदत्वाद्विद्यमानं खकुसुमवत् न असत् ।
क्ष इति पदं तस्य तु प्ररूपणा मार्गणाभिः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—

:-सत् (विद्यमान]	कुसुम-पुष्प-फुलनी
इ-शुध्ध-एक	व्व-पेठे
त्ता-पदपणु होवाथी	न-नथी
ज्जंतं-विद्यमान	असंतं-असत् (-अविद्यमान)
-आकाशना	मुक्ख—मोक्ष

त्ति-ए (इति)	परूवणा-प्ररूपणा (कथन)
पयं—पद छे	मग्गणाईहिं-मार्गणाओवडे
तस्स-तेनी (मोक्षनी)	कराय छे,
उ—वळी	

गाथार्थः—(मोक्ष ए) एक पद होवाथी सत् एटले विद्यमान छे, परन्तु आकाशना फुलनी पेठे असत् (-अविद्यमान) नथी, अने मोक्ष ए एक पद छे, अने ते मोक्षपदनी प्ररूपणा हवे १४ मार्गणाद्वारे थाय छे.

विस्तरार्थः----हवे आ गाथामां मोक्षतत्त्वनो प्रथम भेद सत्पदप्ररूपणाद्वार कहे छे, अर्थात् मोक्ष ए वस्तु जगत्मां छे के नहि ? ते साबित करे छे. ते आ प्रमाणे----

दुनियामां जेटली एक पद एटले शब्दवाळी वस्तुओ ते सत्-विद्यमान ज छे, जेमके आकाश-पुष्प वन्ध्या-पुत्र सुवर्ण-आभूषण रत्न-तेज इत्यादि सर्व एकेक पदवाळी वस्तुओ विद्यमानछे, अने बे त्रण चार इत्यादि अधिक पदवाळी वस्तु विद्यमान होय अथवा न पण होय, जेमके सुवर्णाभरण (-सोनानुं आभरण) ए बे पदवाळी वस्तु विद्यमान छे, रत्नतेज (-रत्ननुं तेज] ए पण बे पदवाळी वस्तु विद्यमान छे, अने आकाशपुष्प [-आकाशनुं फुल तथा वन्ध्यापुत्र [-वांझणीनो पुत्र) इत्यादि बे बे पदवाळी वस्तुओ अविद्यमान छे, ए उपरथी सारांश ए आव्युं के एकेक पदवाळी वस्तुओ सर्व विद्यमान ज छे, अने एथी अधिक-बे वगेरे पदवाळी वस्तुओ विद्यमान होय एवो नियम नथी, तो हवे मोक्ष ए एक पदवाळी वस्तु होवाथी अवश्य विद्यमान छे, परन्तु आकाशपुष्पवत् (बे पदवाळी वस्तुनी माफक] अविद्यमान नथी,

र्क—जो एम कहो के एकेक पदवाळी वस्तुओ सर्व विद्य-
छे तो डित्थ–कवड्–दिस्क इत्यादि पण एकेक पदनी
करीए तो तेवी वस्तु शुं कोइ छे ! अर्थात् नथी, ज तेम
ए पण एक पद कल्पनावाळुं होय तो ते विद्यमान ज छे,
पु कही शकाय ? अने ते साथे एकेक पदवाळी वस्तुओ स-
द्यमान ज होय एम पण बनी शके नहि,

उत्तर—हे तार्किक ! अमो एम कहीए छीए के " एकेक पद
वस्तु सर्व विद्यमानज छे " तो तमारी कहेली डित्थ–क-
–दिस्क इत्यादि पदवाळी वस्तु छे ? के अवस्तु छे ! जो वस्तु
वस्तुनी अविद्यमानता केम कहो छो ? अने जो अवस्तु छे
अवस्तुनुं डित्थ कवड् दिस्क इत्यादि नाम शी रीते ? कही
छो ? अर्थात् अवस्तुनुं पद–नाम होय ज नहि, कारणके
नुंज नाम होय पण अवस्तुनुं नाम दुनियामां होतुंज नथी,
पद पण तेज कहेवायके के ते पदवाळी वस्तु होइ शके, माटे
रि डित्थ इत्यादि एक पदवाळी वस्तु पण नथी ए तो " एक
वाळी वस्तुओ " कहीने पुनः " नथी " एम कहेवाथी वदतो
घात जेवुं थयुं, माटे मानवुं जोइए के एक पदवाळी वस्तुओ
द्यमान ज छे, अने मोक्ष ए एक पद छे माटे मोक्ष ए विद्य-
न ज छे. अने ते मोक्ष कइ कइ मार्गणामां छे तेनी प्ररूपणा
ाय छे,

अवतरण—हवे आ गाथामां (मोक्षपदनी प्ररूपणा मार्गणा
रे करवा माटे) १४ मूळ मार्गणाओनुं नाम दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ४२ मी. ॥

गइइंदिये अ काए, जोए वेए कसायनाणे य ।
संजमदंसणलेसा, भवसम्मे सन्नि आहारे ॥ ४५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

गतिरिन्द्रियं च कायः, योगो वेदः कषायो ज्ञानं च ।
संयमो दर्शनं लेश्या, भव्य-सम्यक्त्वे संज्ञिराहारः ॥ ४५ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

गइ–गति मार्गणा	संजम–चारित्रमार्गणा
इन्दिए–इन्द्रियमार्गणा	दंसण–दर्शनमार्गणा
काए–कायमार्गणा	लेसा–लेश्यामार्गणा
जोए–योग मार्गणा	भव–भव्यमार्गणा
वेए–वेद मार्गणा	सम्मे–सम्यक्त्व मार्गणा
कसाय–कषाय मार्गणा	सन्नि–संज्ञिमार्गणा
नाणे–ज्ञानमार्गणा	आहारे–आहारकमार्गणा

गाथार्थः—गति ४-इन्द्रिय ५-काय ६-योग ३-कषाय ४-, ज्ञान ८-चारित्र ७-दर्शन ४-लेश्या ६-भव्य २-सम्यक्त्व ६-संज्ञी २ -ने आहारक २ ए प्रमाणे १४ मूळ मार्गणा अने ६२ उत्तर मार्गणा (-मार्गणाना भेद] छे,

विस्तरार्थ—मार्गणा एटले विवक्षित भावनुं अन्वेषण-शोधन जे द्वारए थाय ते मार्गणा कहेवाय, अहिं विवक्षित जीव भावनुं अन्वेषण-शोधन गत्यादिद्वाराए करवानुं छे, अने जीवना गुण अनेक भावोनुं अन्वेषण आमांथी गत्यादिद्वारा कर्युं होवाथी गत्यादि १४ मूळभेद अने ६२ उत्तर भेदने मार्गणा तरीके गणेली छे, ते १४ मूळ मार्गणाना ६२ उत्तर भेद [उत्तरमार्गणा] आ प्रमाणे—

गति ४

[illegible]कगति
[illegible]नुष्यगति
[illegible]वगति
[illegible]र्यंचगति

काय ६

[illegible]थ्विकाय
[illegible]प्काय
[illegible]ेजस्काय
[illegible]ायुकाय
वनस्पतिकाय
त्रसकाय

[illegible]) वेद ३

स्त्रीवेद
पुरुषवेद
नपुंसकवेद

[illegible]७) ज्ञान ८

मतिज्ञान
[illegible] श्रुतज्ञान
[illegible] अवधिज्ञान
[illegible] मनःपर्यवज्ञान
[illegible] केवलज्ञान

इन्द्रियजाति ५

१ एकेन्द्रिय
२ द्वीन्द्रिय
३ त्रीन्द्रिय
४ चतुरिन्द्रिय
५ पंचेन्द्रिय

(४) योग ३

१ मनोयोग
२ वचनयोग
३ काययोग

(६) कषाय ४

१ क्रोध
२ मान
३ माया
४ लोभ

(८) चारित्र ७

१ सामायिक चा०
२ छेदोपस्थापनिक
३ परिहारविशुद्धि
४ सूक्ष्मसंपराय
५ यथाख्यात
६ देशविरति
७ अविरति

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ विभंगज्ञान

(९) दर्शन ४
१ चक्षुदर्शन
२ अचक्षुदर्शन
३ अवधिदर्शन
४ केवळदर्शन

(१०) लेश्या ६
१ कृष्ण
२ नील
३ कापोत
४ तेजो
५ पद्म
६ शुक्ल

(११) भव्य २
१ भव्य
२ अभव्य

(१२) सम्यक्त्व ६
१ औपशमिक
२ क्षायोपशमिक
३ क्षायिक
४ मिश्र
५ सास्वादन
६ मिथ्यात्व

(१३) संज्ञि २
१ संज्ञि
२ असंज्ञि

(१४) आहारक २
१ आहारक
२ अनाहारक

ए दरेक मूळ मार्गणामां सर्व संसारी जीवोनो समावेश थइ जाय छे, अर्थात् बीजी रीते कहीए तो सर्व संसारी जीवो गतिनी अपेक्षाए ४ प्रकारना, इन्द्रियनी अपेक्षाए ५ प्रकारना कायनी अपेक्षाए ६ प्रकारना इत्यादि रीते संसारी जीवोनुं १४ रीते मार्गणा-

न- ओळखाण थाय छे, अहिं कइ मार्गणाना कया भेद-
स तत्त्वनी माप्ति छे ते दर्शाववाने माटे आ मार्गणाओनां
या उत्तर भेद पण दर्शाव्या छे, (मार्गणाओनो विशेषार्थ
नवतत्त्व प्रकरणमां प्रसंगे प्रसंगे प्रथम आवी गयेल छे, छ
शेष जिज्ञासुए चतुर्थकर्मग्रन्थथी जाणवा योग्य छे.)

अवतरण—पूर्व गाथामां मार्गणाओ कहीने हवे आ गाथा-
इ कइ मार्गणामां मोक्ष होय छे? ते दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ४६ मी. ॥

इपणिंदितसभव, सन्निअहक्खायखइअसम्मत्ते
खोऽणाहार केवल, दंसण नाणे न सेसेसु ॥ ४६ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

नरगतिपंचेन्द्रियत्रसभव्य-संज्ञियथाख्यातक्षायिकसम्यक्त्वे ।
मोक्षोऽनाहारकेवलद—र्शनज्ञाने न शेषेषु ॥ ४६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

इ- मनुष्यगति	मुक्खो–मोक्ष छे
णिंदि–पंचेन्द्रिय	अणाहार- अनाहारक
–त्रस	केवलदंसण–केवलदर्शन
–भव्य	(केवल) नाणे–केवलज्ञानमां
न्नि–संज्ञि	न–नहि
हक्खाय–यथाख्यात चारित्र	सेसेसु- बाकीनी (४ मूळ अने
खइअ–क्षायिक	६२ उत्तर) मार्गणाओमां
सम्मत्ते–सम्यक्त्वमां	

गाथार्थः—मनुष्यगतिमार्ग०-पंचेन्द्रिय मा०-त्रसकाय मा०-भव्यमा०-संज्ञि मा०-यथाख्यात चारित्रमा० क्षायिकसम्यक्त्व मा० अनाहारक मा०-केवलदर्शन मा०- केवळज्ञान मार्ग० ए १०. मार्गणामां मोक्ष थाय छे, पण बाकीनी (४ मूळ अथवा ५२ उत्तर) मार्गणामां मोक्ष होय नहिं.

विस्तरार्थः पूर्व गाथामां मार्गणाओनां मूळ नाम तथा तेना उत्तरभेदनी संख्या दर्शावीने हवे आ गाथामां ते मार्गणाओमांथी [-जीवभेदोमांथी कइ कइ मार्गणामां [-कया कया जीवभेदमां) मोक्षनी प्राप्ति थाय छे ते दर्शावे छे,

गतिमार्गणामांथी नरगइ–मनुष्यगतिमां मोक्षप्राप्ति होय छे, पण शेष ३ गतियोमां मोक्ष होय नहिं. कारणके सर्वविरति चारित्र विना मोक्षनी प्राप्ति होय नहिं, अने नारक देवने सम्यक्त्व होय पण चारित्र न होय अने ग० ति० पंचे० ने वधुमां वधु देशविरति चारित्र ज होय माटे ए त्रणे गतिमां मोक्षनी प्राप्ति नथी (माटे ज मनु० गति सर्वोत्तम छे,)

इन्द्रिय मार्गणामांथी पणिंदि— पंचेन्द्रियने मोक्षप्राप्ति होय, पण शेष एकेन्द्रियादिकने मोक्षप्राप्ति न होय, कारणके प्रथम कह्या प्रमाणे मोक्षप्राप्ति मनुष्यगतिमांज होय छे ने मनुष्यगति ते पंचेन्द्रिय मार्गणामांज अन्तर्गत छे माटे,

कायमार्गणामांथी तस–त्रसकायमांज मोक्षप्राप्ति छे, पण मनुष्यत्वना अभावथी स्थावरजीवोने मोक्ष प्राप्ति नथी.

भव्यमार्गणामांथी भव्यजीवनेज मोक्षप्राप्ति छे, परन्तु अभव्यने नहिं, कारणके भव्य ए नामज मोक्षगमननी योग्यताने अंगे पडेलुं छे(अर्थात् भव्य एटले मोक्षगमननी योग्यता वाळो जीव) माटे मोक्ष पाम्या बाद ते जीव भव्य न कहेवाय, कारणके मोक्षे

वाद " मोक्षे जवानी योग्यता " ए अर्थ लागु पडतो नथी
सिद्ध परमात्मा नोभव्य नोअभव्य-भव्य पण नहि,
अभव्य पण नहि एम कहेवाय छे, पुनः जेटला भव्य जीवो
मां छे ते सर्वे नहि पण तेनो अनन्तमो भाग ज मोक्षप्राप्ति
छे. छतां पण शेष रहेला (मोक्षे जवानी योग्यतावाळा छ-
मोक्षे नहि जनारा) जीवो योग्यतावाळा होवाथी भव्य तो
य ज. पुनः ते भव्यो पण एवा छे के जेओ कोइ पण काळे
निगोदमांथी निकळवानाज नथी तो मोक्षप्राप्तिनी तो वा-
शी ! छतां पण जेम गर्भ धारण करवानी शक्तिवाळी स्त्री
संयोगना अभावे पुत्रवाळी न होइ शके परन्तु ते वंध्या न क-
य, तेम सामग्रीना अभावे कदीपण मोक्ष नहि पामनारा भव्य
अभव्य तो न ज कहेवाय. (कोइ कोइ स्थाने एवा जीवोने
जातिभव्य कह्या छे,) इत्यादि विशेष वर्णन लोकप्रकाशादि ग्रं-
थी जाणवुं.

संज्ञि मार्गणामांथी संज्ञि-संज्ञि-मनवाळा जीवोनेज मोक्ष-
थ छे, पण असंज्ञि जीवोने नहि, कारणके विशिष्ट मनोविज्ञा-
विना चारित्रनो अभाव छे, अने चारित्रना अभावे मोक्षनो पण
भाव छे. अहिं संज्ञि एटले विशिष्ट मनोविज्ञानवाळा एवो अर्थ
लवो, परन्तु विशिष्ट मनोविज्ञानवाळा वगेरा एटले मनोयोगवाळा
अर्थ न करवो, कारण के मन योगमांथी कोइ पण योगमां
जीवने मोक्ष होय नहि, परन्तु अयोगपणुं प्राप्त थाय त्यारेज
क्ष होइ शके.

१ सिद्ध परमात्मा नोसंज्ञि नोअसंज्ञि एटले संज्ञि नहि तेम
असंज्ञि पण नथी एवा कह्या छे. तेम अयोगि अवस्थामां
[illegible] होय छे. छतां अहिं संज्ञिने जे मोक्ष कह्यो छे, ते
अयोगि भगवन् द्रव्यमनयुक्त छे, ए अपेक्षाए [illegible]-

चारित्र मार्गणामांथी अकषाय-यथाख्यात चारित्रीने मोक्षप्राप्ति होय, पण शेष ६ चारित्रमां नहि, कारण के मोक्षप्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अथवा सर्वांशे शुद्ध एवा चारित्रथी होय छे, ने तेवुं सर्वांशे शुद्ध क्षायिक यथाख्यात चारित्र ज छे.

सम्यक्त्व मार्गणामांथी क्षायिकसम्यक्त्वी जीवने मोक्षप्राप्ति होय, कारण के मोक्ष क्षायिक यथाख्यातचारित्रथी होय छे, ने क्षा० यथाख्या० चारित्र क्षायिक सम्यक्त्व विना होय नहि माटे मोक्षप्राप्ति क्षा० सम्य० मां छे.

आहार मार्गणामांथी अनाहारी जीवने मोक्षप्राप्ति छे, परन्तु आहारी जीवने नहि. कारण के आहार ते सयोगी (मन वचन कायाना योगवाळा) जीवने होय छे, ने सयोगी जीवने मोक्षप्राप्ति थती नथी माटे आहारी जीवने पण मोक्ष प्राप्ति होय नहि, परन्तु अनाहारी जीवनेज मोक्षप्राप्ति होय छे.

ज्ञानमार्गणामां केवळज्ञानीने मोक्षप्राप्ति होय छे, परन्तु शेष चारज्ञानवाळा जीवोने नहि. कारण के शेष ४ ज्ञान क्षयोपशमभावनां छे, ने क्षयोपशम भावे मोक्षप्राप्ति होय नहि पण क्षायिक भावे ज मोक्षप्राप्ति होय माटे शेष ४ ज्ञानीने मोक्ष प्राप्ति होय नहि. पण क्षायिकभाववाळा केवळज्ञानमांज मोक्षप्राप्ति होय.

दर्शन मार्गणामां केवळ दर्शनीने मोक्ष होय, परन्तु शेष चार

सिद्धभगवान् संज्ञि कहेवाय छे माटे संज्ञिने मोक्ष कह्यो छे, अथवा अयोगि भगवान् मनमां वर्तनारा नहि (संज्ञाधीमानवत्) जिनो असंज्ञाय संज्ञित्वमां मोक्ष होइ शके नहि.

१ ११ मे गुणस्थाने उपशम यथाख्या०, ने १२—१३—१४ गुणस्थाने क्षायिक यथाख्या० चारित्र ए प्रमाणे यथाख्या० चा० बे प्रकारनुं छे. पुनः सिद्धने अनुं एक पण चारित्र नहि तेथी ज्ञानमां सिद्ध भगवन्तने नोचारित्री नोअचारित्री कह्या छे.

क्षयोपशमभाववाळां होवाथी तेमां मोक्ष न होय.

ए प्रमाणे १४ मूळ मार्गणामांथी गति-इन्द्रिय-काय-ज्ञान
ारित्र-दर्शन-भव्य-संज्ञि-सम्यक्त्व ने आहारक ए
मूळ मार्गणामां तथा मनुष्यगति विगेरे १० उत्तरमार्गणामां
प्राप्ति होय छे. पण शेष योगवेद-कषाय-लेश्या ए ४ मूळ
णामां तथा नरकगति आदि ५२ उत्तरमार्गणामां मोक्षप्राप्ति
नथी. त्यां चार मूळ मार्गणाए मोक्षप्राप्ति नहिंहोवा-
कारण नीचे प्रमाणे— मोक्ष ए स्थिर परिणामे—स्थि-
ाने होय छे, ने योग तथा लेश्या बन्ने चलाचल (अस्थिर)
ामरूप छे, एटले जीवनी चल अवस्थानुं निमित्त छे माटे
ग तथा लेश्या सद्भावे मोक्षनो अभाव छे, पुनः योग अने ले
नो अन्वयव्यतिरेक संबंध छे, माटे लेश्या होते योग अवश्य
य, ने लेश्या न होय तो योग पण न होय. अथवा ज्यांसुधी
ग छे, त्यां सुधी लेश्या छे, ने योग नथी तो लेश्या पण नथी.
तो योग-लेश्याने परस्पर संबंध छे.

तथा ज्यांसुधी वेद-तथा कषायनो उदय होय त्यां सुधी उप-
म यथाख्यात चारित्र पण प्राप्त न थाय तो मोक्षप्राप्तिना का-
रणरूप क्षायिक यथाख्या० चारित्रनी तो वातज शी ? अने क्षा०
या० पाम्या विना मोक्षपण होइ शके नहिं, माटे सवेदी तथा स-
षायी जीवने मोक्षप्राप्ति नथी.

ए प्रमाणे मोक्षना सत्पद नी प्ररूपणा मार्गणाद्वारे करी.

अवतरणः—पूर्वनी ३ गाथाओमां मोक्षनो पहेलो भेद
(सत्पदप्ररूपणाद्वार) वर्णव्युं, अने हवे आ गाथामां मोक्षनो

बीजो भेद द्रव्यप्रमाणद्वार अने त्रीजो भेद क्षेत्रद्वारनुं स्वरूप दर्शावे छे.

॥मूळ गाथा ४२ ॥

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीवदव्वाणि हुंतिऽणंताणि।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वे वि ॥४७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

द्रव्यप्रमाणे सिद्धानां जीवद्रव्याणि भवन्त्यनंतानि।
लोकस्यासंख्येयभागे एकश्च सर्वेऽपि ॥ ४७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

दव्वपमाणे–द्रव्यप्रमाण द्वारमां
सिद्धाणं–सिद्ध परमात्मानां
जीवदव्वाणि–जीवद्रव्यो (जीव संख्या)
हुन्ति—छे
अणंताणि—अनन्त
लोगस्स–लोकना
असंखिज्जे–असंख्यातमे
भागे—भागे
इक्को–एक सिद्ध परमात्मा
य–अने
सव्वे–सर्वे सिद्ध परमात्मा
अवि—पण

गाथार्थः—(बीजा) द्रव्यप्रमाणद्वारमां सिद्ध परमात्मानां जीव द्रव्यो (सिद्ध जीवोनी संख्या) अनंत छे, अने (त्रीजा क्षेत्रद्वारमां) एक सिद्ध परमात्मा अने सर्वे पण सिद्धपरमात्मा लोकाकाशना असंख्यातमा भाग जेटला क्षेत्रमां रहेला छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां मोक्ष तत्त्वनो बीजो भेद द्रव्य प्रमाणद्वार, अने त्रीजो भेद क्षेत्रद्वार कहेवामां आवे छे. त्यां द्रव्य एटले पदार्थ अथवा वस्तु एवो अर्थ थायछे परन्तु आ स्थाने

स्वरूप जीवद्रव्यनुं एटले सिद्धजीवोनी संख्यानुं एवो अर्थ सुगम
य छे. हवे ते सिद्धजीवोनी संख्यानुं प्रमाण केटलुं छे ? ते
वे छे-के सिद्धाणं जीवदव्वाणि हुंति णंताणि-सिद्ध पर-
मात्मानां जीवद्रव्यो अनंत छे, अर्थात् सिद्धपरमात्मा एक बे नथी
अनंत छे. अहिं ध्यानमां राखवा योग्य छे के जीव पोतेज सि-
द्ध छे, परन्तु ज्यांसुधी कर्मसहित छे, त्यांसुधी संसारी छे, अने
रहित थतां सिद्ध थाय छे, तो ते संसारी जीवो अनंत छे ने
संसारी जीवोज सिद्ध थता होवाथी सिद्ध जीवो पण
अनंत छे.

हवे ते सिद्ध जीवो केटला क्षेत्रमां रहे छे ते क्षेत्रप्रमाणद्वार
वे छे के-लोगस्स असंखिज्जे भागे इक्को य सव्वेवि-
ना असंख्यातमा भागमां एक सिद्ध रहे छे, ने सर्व सिद्धपर-
मात्माओ पण तेटला एटले असंख्यातमा भागना क्षेत्रमां रहेला छे,
अहिं भावार्थ ए छे के—सिद्धपरमात्मा १४ राजलोकना अग्र भागे

१ आ अर्थ उपरथी सार ए लेवानो छे के दुनियाना घणो
भाग के जे ईश्वर एकज छे एम माने छे, ते असत्य छे, कारण
के सिद्धपरमात्मा सिवाय बीजो कोइ ईश्वर नथी अने ते सि-
द्धपरमात्मा अनन्त छे. वळी जो एकज ईश्वर मानीये तो अ-
त्यारमां ईश्वरनी भक्ति उपासना करनार कोइपण जीव ईश्वर
रूप थवानो नथी एम मानवुं पडे, कारणके तेम थवाथी तो ईश्वर
अनेक थइ जाय ते अन्यदर्शनीओने मान्य नथी, तो विचारवा-
नी वात छे के ज्यारे ईश्वरनी भक्ति उपासनाथी पण ईश्वर
रूप थवानुं नथी तो अनेक कष्टो वेठी ईश्वरनी भक्ति उपासना
करवी व्यर्थ छे, माटे जैनदर्शननी एज मान्यता छे के
एक जीवे जे मार्गे चाली सिद्धपणुं ईश्वरपणुं प्राप्त कर्युं छे ते
मार्गे चालनारा बीजा संसारी जीवो पण सिद्ध—ईश्वररूप थ-
ई शके छे, ने ते कारणथी सिद्ध अथवा ईश्वर एक
नथी पण अनन्त छे.

३३३ धनुष्य १ हाथ ने ८ आंगळ जेटली जाडी ने ४५ लाख जोजन लांबी पहोळी गोळाकार जग्यामां सर्व सिद्धो रहेला छे, माटे एटला प्रमाणवाळी जग्या १४ राजलोक क्षेत्रनी अपेक्षाए असंख्यातमा भाग जेटलीज छे, तथा एक सिध्ध कमीमां कमी १ हाथ ८ आंगळ जेटली जग्यामां समाय छे, ने वधुमां वधु ३३३ धनुष्य-१ हाथ-ने ८ आंगळ जेटली जग्यामां समाय छे, तो ए जग्या पण १४ राजलोकनी अपेक्षाए असंख्यातमा भाग जेटलीज छे, माटे गाथामां कह्युं छे के "लोकना असंख्यातमा भागमां एक सिध्ध अने सर्वे सिध्ध पण रहे छे" ए वात योग्यज छे, मात्र तफावत एज छे के एक सिध्धने माटे जे असंख्यातमो भाग कह्यो छे ते करतां सर्वसिध्धना क्षेत्रनो असंख्यातमो भाग संख्यातगुणो मोटो जाणवो.

अवतरणः—आ गाथामां मोक्षना जीवोने स्पर्शना-काळ-अने अन्तर ए ३ द्वार दर्शावे छे.

१-२ कारणके कमीमां कमी २ हाथनी कायावाळो पण मोक्ष जई शके, अने वधुमां वधु ५०० धनुष्य जेटली कायावाळो जीव मोक्षे जई शके छे, ते अहिंना शरीरना बे तृतीयांशना भाग जेटलो आत्मा मोक्षे जतां संकोचवाळो होय छे, माटे ए प्रमाण आवे छे,

३ आ गाथाना अर्थनो सार ए छे के जगतमां केओ पण कहे छे के 'ईश्वर सर्व जगतमां व्याप्त छे" तेमानुं वचन जैन दर्शननी अपेक्षाए अघटित छे, कारणके जैनदर्शनमां ईश्वर देहव्यापी छे पण सर्वव्यापी नथी एम आ गाथाना भावार्थमां कह्युं छे.

॥ मूळ गाथा ३७ मी. ॥

अहिया कालो, इगसिद्ध पडुच्च साइओणंतो।
पाऽभावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥ ४८ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अधिका कालः, एकसिद्धं प्रतीत्य साद्यनंतः ।
नाऽभावतः, सिद्धानामन्तरं नास्ति ॥ ४८ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

—स्पर्शना	पडिवाय–पडवाना
—अधिक छे	अभावाओ–अभावथी
—काळ	सिध्धाणं—सिध्धोने
द्ध–एक सिध्धने	अंतरं–अन्तर (वच्चे असिध्धपणु)
—आश्रयि	नत्थि—नथी
ो—सादि	
—अनन्त	

गाथार्थः—(स्पर्शना द्वारमां) सिध्धना जीवने स्पर्शना ाना अवगाह करतां) अधिक छे, (अने काळ द्वारमां) सिध्धने आश्रयि (–एक सिध्धनी अपेक्षाए) सादि–अनंत छे. अने (अन्तर द्वारमां) पडवाना (सिध्धपणुं मटीने रीपणुं प्राप्त थवाना) अभावथी सिध्धना जीवोने अन्तर वच्चे असिध्धपणुं) नथी.

विस्तरार्थः—अहिं स्पर्शनाद्वारमां सिद्धने स्पर्शना अ- छे, एटले एक सिद्ध जीव जेटला आकाशप्रदेशमां अवगा- छे, तेटला आकाश प्रदेशो तो अवगाहना रूपे स्पर्शेलाज छे, तु ते सिवाय बीजा पण आकाश प्रदेशो आजुबाजुथी अधिक

स्पर्शेला छे, ए अधिक स्पर्शना मात्र एक आकाशप्रदेश जेटला जाडा अने सिद्धनी अवगाहना जेटला विशाळ एवा प्रतरवाळी छे, अथवा सिद्धना एक जीवे एक प्रदेश जाडुं वस्तर सर्वांगे पहेर्युं होय तेवी छे. अहिं अधिकना तें अवगाहित आकाश प्रदेशोनी अपेक्षाए जाणवी. ने आ स्पर्शनाद्वार एक सिद्धनी अपेक्षाए ज सर्वत्र कहेल छे, पुनः एक आकाश प्रदेश जेटला जाडा ते अधिक स्पर्शनाना प्रतरमां बीजा जीव तथा पुद्गल वगेरेना अनन्तानन्त प्रदेशो अवगाहेला होय ते पण सिद्धने अधिक स्पर्शनामां गणवा, कारणके लोकमां ज्यां आकाशनो एक प्रदेश छे, त्यां धर्मास्ति० नो ? अधर्मास्ति कायनो अने जीव तथा पुद्गलना अनन्त अनन्त प्रदेशो अवश्य रहेला छे,माटे ते पण अधिक स्पर्शनामां गणवा.अहिं स्पर्शना अने अवगाहनामां तफावत ए छे के परस्पर प्रवेशरूपे सर्वांगे संक्रान्तथयेला प्रदेशो ते अवगाहित अने उपरथी देशांशे अडीने रहेला प्रदेशो ते स्पर्शित कहेवाय, ए प्रमाणे अधिकस्पर्शनानुं स्वरूप कह्युं.

हवे सिद्धने काळद्वारनुं स्वरूप कहे छे, त्यां प्रथम एकसिद्धआश्रयि अने अनेक (सर्व) सिद्ध आश्रयि एम काळद्वार बे प्रकारनुं छे, त्यां अमुक एक सिद्ध ज्यारे मोक्षमां गयो त्यारे ते सिद्धनी अपेक्षाए मोक्षनी सादि (स–आदि–आदि सहित –प्रारंभ थयो,) ने हवे ते मोक्षनो कोइपण काळे अन्त नहिं होवाथी अनन्त (अन्-नहिं अन्त–विनाश) काळ प्रमाणनो जाणवो, ए प्रमाणे एक सिद्ध परमात्मानी अपेक्षाए मोक्ष सादि–अनन्त छे, तथा सर्व सिद्ध परमात्मानी अपेक्षाये विचारीये तो सर्वे सिद्धमां प्रथम कोण मोक्षे गया ? अथवा मोक्षनी शरूआत क्यारथी थइ ? एना उत्तरमां सर्वज्ञो एमज कहे छे के मोक्ष प्रवाह

ादिकाळनो होवाथी अमुक काळे मोक्षनो प्रारंभ थयो तेम नथी
अनादि अने मोक्षनो कोइ काळे अन्त नहिं होवाथी अन-
छे, ए प्रमाणे सर्व सिद्ध परमात्माओनी अपेक्षाए-मोक्षतत्त्व
ादि-अनन्त काळ प्रमाण छे

हवे सिद्धने अन्तरद्वार कहे छे ते आ प्रमाणे—पडिवायाऽ
याओ एटले सिद्धपणामांथी प्रतिपातना-पडवाना अभावथी
द्धना एक जीवने पण अन्तरं—आंतरुं नथी. कारणके बळी
ला बीजनो जेम पुनः अंकुरो फुटतो नथी तेम सर्वथा क्षय पामे-
कर्म जीवने पुनः लागी शकतां नथी ने कर्म विना संसारीपणुं
नथी. ने ए प्रमाणे जीवने बे त्रण के वारवार मोक्ष होइ शक-
नथी, पण मोक्ष एकज वार होय छे, तो मोक्षने अन्तर—आं-
केवी रीते होय ? कारणके प्रथम एक जीव मोक्षे गयो, त्यां
लोककाळ रही पुनः संसारमां आवे, ने संसारमां पण केटलोक
ळ रही पुनः मोक्षमां जाय आ प्रमाणे जो बनतुं होय तो बे
र) मोक्षनी वच्चे एक (संसारीपणारूप) अन्तर पडयुं कहेवाय,
तेम तो बनतुं नथी माटे मोक्षने अन्तर पण न होय, (तेम-
नी अपेक्षाए पण एक सिद्धथी बीजा सिद्धनी वच्चे अन्तर (—
गीक्षेत्र) नथी

---

१ सादि सान्त, सादि अनन्त, अनादि सान्त, अने अनादि
नन्त, ए ४ प्रकारना काळमां अहिं मोक्षतत्त्वमां २ प्रकारनोज
ाळ लागु पडे छे. ने सिद्ध थइ पुनः संसारी थवाना अभा-
थी सादि सान्त, तथा अनादि सान्त ए बे प्रकार मोक्षने अं-
लागुपडता नथी.

२ प्रथम कहेला काळद्वार अने अहिं कहेला अन्तरद्वार
ए पण भावार्थ आवे छे के लौकिकशास्त्रोमां " ईश्वर पर-
त्मा मोक्षमांथी संसारमां आवी पुनः भक्तजनोना उद्धार मा-
अवतार धारण करे छे. " एम कयुं छे ते जैनदर्शनथी

अवतरण—आ गाथामां सिद्धना जीवोने भागद्वार अने भावद्वार दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ४९ मी.

सव्वजियाणमणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणामिए अ पुण होइ जीवत्तं ॥४९॥

संस्कृतानुवादः

सर्व्वजीवानामनंते भागे ते तेषां दर्शनं ज्ञानं ।
क्षायिके भावे पारिणामिके च पुनर्भवति जीवत्वं ॥४९॥

विपरीत छे, कारण के सर्व कर्मनो बळेला बीजनी पेठे क्षय कर्याथी मोक्षमां गयेला जीवने पुनः कर्म केवी रीते लाग्यां ? अने कर्म विना संसारमां अवतरवुं केम बनी शके ! तथा निरंजन निराकार रागद्वेष रहित वीतराग एवा निःकर्म इश्वरने कर्मविना भक्तजन उपर राग अने अभक्त उपर द्वेष केवी रीते होय ? माटे ज जैनदर्शन स्पष्टरीते जणावे छे के—कर्मविना रागद्वेष होय नहि, कर्मविना संसारमां अवतार लेवानुं बने नहि, एकवार कर्मनो सर्वथा क्षय कर्या बाद पुनः कर्म लागे नहि, ने निरंजन निराकार वीतराग एवा ईश्वर परमात्माने भक्ति करनारपर राग के इर्ष्या करनारपर द्वेष पण न होय. अने ते कारणथी मोक्षमां गयेला सिद्ध इश्वर परमात्माओ पुनः संसारमां अवतरता नथीज.

२ अर्थात् ए अन्तर काळनी अपेक्षाए कह्युं तेम क्षेत्रनी अपेक्षाए पण अन्तर नथी, कारण के ४५ लाख योजन व्यास अने ३३३ ध॰ १ हाथ ८ आंगळ स्थूल प्रमाण सिद्धक्षेत्रमां अनंतसिद्धो परस्पर देशांशे ने सर्वांशे संक्रमीने सीधासीध रह्या छे, जेथी ४५ लाख योजनमां एवी कोइ एक आकाश प्रदेश जेटली पण खाली जग्या नथी के ज्यां सिद्ध न होय. माटे क्षेत्रनी अपेक्षाए पण एक सिद्धथी बीजा सिद्धनी वच्चे अन्तर खाली क्षेत्र नथी.

॥ शब्दार्थः ॥

-सर्व.	खइए-क्षायिक
ाणं-जीवोना	भावे-भावे छे,
ंे-अनन्तमा	पारिणामिए-पारिणामिकभावे
-भागे	य-वळी
। सिद्धजीवो	पुण-पुनः
णं-दर्शन	होइ-छे
ंे-ज्ञान	जीवत्तं-जीवत्व

गाथार्थः—ते सिद्धजीवो (नी संख्या) सर्वजीवोना अनं-; भागे छे. तेओनुं (केवळ) दर्शन अने ज्ञान क्षायिकभावे छे; ने पारिणामिक भावे जीवपणु छे.

विस्तरार्थः—ते सिद्ध परमात्माओ सर्व जीवना अनन्तमा ाग जेटला अति अल्प छे कारणके जगतमां असंख्याता (निगो-ना) गोळा छे, ने एकेक गोळामां असंख्यात निगोद छे, ने ए-क निगोदमां अनन्त अनन्त वनस्पति जीवो छे, ते पण एटला मनन्त जीवो छे के प्रति समय एकेक जीव मोक्षे जाय तोपण अ-ने काळमां एक निगोद पण खाली थाय नहिं, अने वर्तमान आ-म सुधीमां जेटला सिद्ध थया छे, ने हजी भविष्यकाळमां जेटला सिद्ध थवाना छे, ते सर्व सिद्धनी संख्या केवळमां पण एक निगो-दना असंख्यातमा भाग जेटली ज थाय ए प्रमाणे मात्र साधारण वनस्पति जीवोनी अपेक्षाए पण सर्व सिद्ध परमात्माओनी संख्या अनन्तमा भाग जेटली छे तो सर्व संसारी जीवोनी अपेक्षाए सि-द्धनी संख्या अनन्तमा भागे होय तेमां शुं आश्चर्य ? ए प्रमाणे भागद्वार कह्यु.

हवे भावद्वारमां कहेल पांच भावोनां नाम तथा अर्थ कहेवाय छे

तेमांथी सिद्ध परमात्माने क्षायिक अने पारिणामिक ए बे भावज होय, कारणके सिद्धपणु कर्मना क्षयथी प्राप्त थयुं छे, माटे सिद्ध परमात्मा क्षायिक भावे छे, जे दुनियाना सर्व पदार्थो स्वस्वभावे परिणत होवाथी पारिणामिक भाव वाळा छे,तो सिद्धपरमात्मा पण परिणामिक भाववाळा होइ शके छे. परन्तु औदयिक –औपशमिक–ने क्षायोप० ए त्रणे भाव कर्मजन्य होवाथी सिद्ध परमात्माने होइ शके नहिं, हवे सिद्ध परमात्माने जे क्षायिक अने पारिणा० ए बे भाव छे, तेमां क्षायिकभावना ९ भेद, अने पारिणा० भावना ३ भेद छे, तो सिद्ध परमात्माने तेमांना कया कया भेद होइ शके ? ते संबन्धमां ग्रन्थकार पोतेज कहे छे के खइए भावे तेसिं दंसणं नाणं--क्षायिकभावे सिद्धपरमात्मने केवळज्ञान अने केवळदर्शन छे, .अने परिणामिए अ पुण होइ जीवत्तं-वळी पारिणामिक भावे सिद्ध परमात्माने जीवत्व छे, परन्तु भव्यत्व तथा अभव्यत्व नथी (ते वात प्रथम फुट नोटमांज दर्शावी छे के सिध्धपरमात्मा नोभव्या नोअभव्या– भव्य नहिं तेम अभव्य पण नहिं.) अहिं जो के इन्द्रियादि १० प्राणरूप द्रव्य जीवत्व सिद्धने नथी परन्तु ज्ञानदर्शनादि भाव प्राणोवडे भावजीवत्व छे. ए प्रमाणे भावद्वार कह्युं.

---

१ सिद्धजीवो अभव्यथी अनंतगुण छे, पण सर्वजीवथी अनंतमा भागे छे

१ दान ५ लब्धि—क्षा० सम्यक्त्व, ने क्षा० चारित्र सिद्धने कहेलुं नथी त्यां अभिप्राय छे के दानादि क्रियानी प्रवृत्ति अभाव लब्धि नथी अन्यथा अनन्तदानादिने अनन्तवीर्य लब्धि वास्तविक रीते संभवे छे. कारण के अनंत लब्धिमां अन्तर्गत समाय. तथा क्षा० सम्यक्त्वहे पण

अवतरणः—हवे आ गाथामां मोक्षना जीवोनुं अल्पबहुत्व
ार दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ५० मी ॥

ाथा नपुंससिद्धा, थीनरसिद्धा कमेण संखगुणा ।
्अ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ॥५०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

तोका नपुंसकसिद्धाः, स्त्रीनरसिद्धाः क्रमेण संख्यगुणाः ।
्दं मोक्षतत्वमेनन्नवतत्वानि लेशतो भणितानि ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—

ोवा—थोडा	संखगुणा–संख्यातगुणा
पुंस–नपुंसकलिंगे	इअ—ए
सिध्धा–सिध्धथयेला	मुक्खतत्तं—मोक्षतत्त्व (कह्युं)
ी-स्त्री लिंगे	एअं –ए प्रमाणे
र—पुरुषलिंगे	नवतत्ता–नवतत्वो
सिध्धा—सिध्ध थयेला	लेसओ–संक्षेपथी
क्रमेण–अनुक्रमे	भणिया—कह्या

गाथार्थः—नपुंसकलिंगे सिद्ध थयेला सर्वथी थोडा छे, तेथी
्त्रीलिंगे अने पुरुषलिंगे सिध्ध थयेला अनुक्रमे संख्यातगुणा छे,
् मोक्ष तत्त्व कह्युं, ए प्रमाणे नवे तत्वो (नुं स्वरुप) संक्षे-
ेपथी कह्युं.

ते उपलक्षणथी ग्रहण करवा योग्य छे तेमज सिद्धने
ाचारित्री नो अचारित्री विशेषणवाळा सिद्धान्तमां कहेला हो-
वाथी क्षायिक चारित्र पण प्रवृत्ति अपेक्षावाळुं नथी, पण वास्त
विक रीते अनंत चारित्र गुण छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां कया सिध्धजीवो अल्प छे ? ने कया सिध्ध जीवो घणा छे तेनो परस्पर तफावत दर्शावतां ग्रंथकार कहे छे के नपुंसक लिंगे सिध्ध थयेला जीवो सर्वथी अल्प छे कारण के तेवा जीवो १ समयमां १० ज मोक्षे जाय छे. अर्थात् जे मनुष्य भवमांथी निर्वाण पामी सिध्ध थाय छे ते मनुष्य भवमांथी नपुंसक लिंगवाळा १० मनुष्यो मोक्षे जइ शके छे, पण वधु नहिं, थोडा नपुंसकसिद्धा-नपुं० लिंगे सिध्ध थयेला सर्वथी अल्प छे. तेथी स्त्री लिंगे सिध्ध थयेला जीवो संख्यातगुण छे, कारण के मनुष्यभवमांथी १ समये (-समकाळे) २० स्त्रीयो मोक्षे जाय छे, ने २० ते १० थी बमणा होवाथी (जघन्य) संख्यात गुण थाय छे. तथा पुरुष लिंगे सिध्ध थयेला ते (स्त्रीलिंग सिध्ध) थी पण संख्यातगुणा छे, कारण के मनुष्यभवमांथी समकाळे १०८ पुरुषो मोक्षे जइ शके छे ने १०८ ते २० थी आठ अधिक पांचगुणी संख्या होवाथी (मध्यम) संख्यात गुणज कहेवाय छे. ए प्रमाणे पूर्वभवना लिंग आश्रयि सिध्ध परमात्मानुं अल्पबहुत्व दर्शाव्युं, कारण के सिध्धपणामां लिंगादि भेदनो अभाव होवाथी अने सर्व सिध्ध परमात्माओ सर्व रीते एक सरखा होवाथी परस्पर (भेदना

---

१ अहिं कया नपुंसको मोक्षे जइ शके छे, अने कया नथी जइ शकता ते दर्शावाय छे.

नपुंसक १६ प्रकारना जाति नपुंसक दीक्षाने अयोग्य होवाथी मोक्षे जइ शकता नथी, ते १० नपुंसकनां नाम—

१ पंडक—स्वभाव स्त्री सरखो अने आकार पुरुष सरखो परंतु अंगुलनिय चाले-टीका सहित चलावे बोलो चाले-शरीर कोमळ ने कोमळ हाथ-हाथना तावोटा पाडे· हाथना चाळा करे-आंखो नचावे-केडे हाथ दइ चाले—बेठा पाडे—शृंगार करवो बहु गमे—स्नानादि गुप्त करे—पुरुष सभामां शंका समुदायनां निरखणे सरखा स्व-

वेदवाळो होय. ए पंडकना पण ६ प्रकार छे ते धर्मबिंदुटीका थी जाणवा.

२ वातिक—पुरुषचिन्ह स्तब्ध थतां स्त्रीसंगम कर्या विना रही शके ते.

३ क्लीब—स्त्रीने नग्न देखी शुक्र स्खलनादि क्षोभ पामे ते दृष्टिक्लीब, स्त्रीनो शब्द सांभळी विकार थाय ते शब्द क्लीब, स्त्रीने स्पर्श मात्र थतां क्षोभ पामे [शुक्र स्खलनादि थाय] ते स्पर्शक्लीब, अने स्त्रीना निमंत्रणमात्रथी क्षोभ पामे ते निमंत्रणक्लीब, ए प्रमाणे ४ प्रकारना क्लीबनपुंसक छे.

४ कुंभी—जेनु पुरुषचिन्ह वारंवार स्तब्ध थाय अथवा वृषण (-अंडकोष) स्तब्ध (-कठीन) रहे ते, अथवा प्रकारान्तरे कुंभ (-घडा) सरखा मोटा स्तनवाळाने पण कुंभि नपुं० कह्यो छे.

५ ईर्ष्यालु - पोतानामां स्त्रीसंगमनी शक्ति न होय तेथी बीजा पुरुषे सेवेली स्त्रीने जोइ ईर्ष्या-अदेखाइ करे ते.

६ शकुनि (एकज दिवसमां चकलादि पक्षिनी माफक) अनेकवार स्त्रीसंगम करनार.

७ तत्कर्मसेवी - स्त्रीसंगम करीने पण अवाच्य अंग चाटवादि कर्म करे ते.

८ पाक्षिकापाक्षिक—शुक्लपक्षमां बहु अने कृष्णपक्षमां अल्प वेद उदयवाळो.

९ सौगंधिक—अवाच्य प्रदेशने सुंघ्या करनार.

१० आसक्त—शुक्रपात थया पछी पण आलिंगन करी पडी रहेनार.

ए १० जाति नपुंसको तीव्र मोहना उदयवाळा होवाथी दीक्षाने पण अयोग्य छे तो मोक्षे जवानी वातज शी ? हवे दीक्षाने योग्य होवाथी मोक्षे जवा योग्य ६ प्रकारना कृत्रिम नपुंसक आ प्रमाणे—

१ वर्धितक- जेओनी इन्द्रियनो छेद कर्यो होय तेवा नाझर अने पावइया विगेरे.

२ चिप्पित—जन्मतांज आंगळीओना मर्दनथी जेनां वृषण (—अंडकोष) गळावेल होय.

३ मंत्रोपहत—मंत्रवळथी पुरुषवेद नाश पाम्यो होय तेवा.

४ औषध्युपहत—औषधियी (दवायी के वनस्पतियी) जेनो पुरुषवेद हणाइ गयो होय तेवा.

५ ऋषिशप्त—मुनिना शापथी पुरुषवेद हणायो होय तेवा

६ देवशप्त-कोइ देवना शापथी पु० वेद हणायो होय तेवा.

ए ६ प्रकारना कृत्रिम नपुंसको मोक्षे जवा योग्य छे ते संबंधि विशेष स्वरूप श्रीनिशियसूत्रथी जाणवुं. पुनः ए ६ जातिवडे पुरुष छे, परन्तु ते ते कारणोथी पुरुषवेद हणाया बाद तेओने नपुंसक वेदनो उदय होय छे, आ ६ नपुंसकोने पूर्वे कहेला १० नपुंसकोवत् वेदनो उदय नगरदाहसरखो उत्कट होतो नथी, पण पुरुषवेद हणावाथी पुरुषवेदना अभावरूपे नपुंसक वेद (न—नहि पुंसक—पुरुषपणुं अर्थात् पुरुषपणुं नहिं ते नपुंसक) होय छे. तेथी वेदनो उदय पुरुषवेद करतां पण मंद होय छे,

पुनः पुरुषाकृति नपुं०—स्त्री आकृति नपुं०—ने नपुं० आकृतिवाळा नपुंसक एम त्रण प्रकारना नपुंसक आकृति भेदे छे ते पण त्रणे मोक्षगमन योग्य छे.

२ पुरुष—स्त्री—अने नपुंसक ए त्रणे वेद – लिंगने-पथ्यना भेदथी त्रण त्रण प्रकारना होवाथी ९ प्रकारनाछे ते आ प्रमाणे

१ स्त्रीसंगमना अभिलाषवाळा जीव वेदपुरुष कहेवाय.

२ पुरुषचिन्ह– दाढी—मूछ–इत्यादि लक्षणोवडे लिंगपुरुष.

३ पुरुषनो वेष पहेरेली स्त्रीआदि नेपथ्यपुरुष,

४ पुरुषनी इच्छावाळो जीव वेदस्त्री कहेवाय.

५ योनी—स्तन—दाढी मूछनो अभाव इत्यादि चिन्होवाळो जीव लिंग स्त्री कहेवाय.

६ स्त्रीनो वेष पहेरेला एवा पुरुषादि नेपथ्यस्त्री कहेवाय

७ स्त्री अने पुरुष ए बन्नेपर अभिलाषवाळो तीव्र वेदोदयी जीव वेदनपुंसक.

८ स्त्रीपणानां केटलांक चिन्ह स्तनादि होय ने केटलांक चिन्ह योनिवगेरे न होय, तेमज पुरुषपणानां केटलांक चिन्ह पुरुष चिन्ह वगेरे होयः ने केटलाक चिन्ह दाढी मूछ वगेरेने होय एवा प्रकारना (स्त्री पुरुष लक्षणोना सद्भावने अभाव-

प्रमाणे) अल्पबहुत्व (सिद्धत्वावस्था आश्रयि) संभवतुं नथी,

अने लिंग आश्रयि जेम अल्पबहुत्व कह्युं तेम समंगोपांग द्वेष भेद आश्रयि पण अल्पबहुत्व (–समकाळे कया जीवो अल्प ने कया जीवो घणा सिद्ध थाय छे ते) कहेवाय छे,

वाळा) जीव लिंगनपुंसक कहेवाय छे,

१ केटलुंक स्त्रीवरनो अने केटलुंक पुरुषवरनो विलक्षण वेष पहेरनार (–पायरया–हीजडा वगेरेना सरखा वेषवाळा) तथा पुरुषादि वेषथी नपुंसक गणाय.

४ ९ प्रकारमांथी नेपथ्य अने लिंग पुरुषादि ६ भेद मोक्षगमन योग्य छे ने त्रण भेद मोक्षने अयोग्य छे.

प्रथम कहेला १६ नपुंसक संबंधि गाथाओ आ प्रमाणे छे.

पंडए वाइए कीवे, कुंभी इसालु सउणि ।
तक्कम्मसेवी य, पक्खियापक्खिए इय ॥ १ ॥

सोगंधिए अ आसत्ते, एए दस नपुंसगा ।
संकिलिट्ठत्ति साहूणं, पव्वावेउं अकप्पिया ॥ २ ॥

अर्थः—पंडक–वातिक–क्लीब–कुंभी–इर्ष्यालु–शकुनि ए प्रमाणे शकुनि–तत्कर्मसेवी– अने पाक्षिकापाक्षिक ए ६ तथा सौगंधिक–आसक्त ए १० प्रकारना नपुंसको अतिसंक्लिष्ट परिणामी छे माटे मुनिओए दीक्षा आपवामां अकल्पनीय छे. त्यां पंडगनां लक्षणनी गाथा—

महिलासहावो सरवन्नभेओ मेंढं महंतं मउयाय वाणी ।
ससद्दयंमुत्तमफेणगं च, एआणि छप्पंडगलक्खणाणि ॥ १ ॥

अर्थः—स्त्री सरखो स्वभाव–स्वर विलक्षण– अने वर्णादि विलक्षण–लिंग मोटुं–वाणी कोमळ–मूत्र शब्द सहित, ने फीण विनानुं–ए ६ पंडकनां लक्षणो छे इत्यादि.

॥ समकाळे सिद्धि गमनयोग्य जीवोनी संख्या ॥

मनु० नी स्त्रीमांथी आवेला	२०
वैमानिक देवांगनानांथी आवेला	२०
ज्योतिषी देवांगनाथी आवेला	२०
भुवनपत्यादि (पाताल वासी देवोनी देवांगनामांथी आवेला	५
तिर्यंच स्त्रीमांथी आवेला	१०
मनुष्य पुरुषमांथी मनुष्य थयेला	१०
ज्योति० देवथी मनु० थयेला	१०
भव० देवथी मनु० थयेला	१०
व्यंतर देवथी मनु० थयेला	१०
तिर्यंच पुरुषथी मनु० थयेला	१०
कल्प देवथी आवेला	१०८
पृथ्विकाय-अप्काय-ने पंकप्रभाथी [प्रत्येकथी) आवेला	४
रत्नप्रभाथी आवेला	१०
शर्कराप्रभाथी आवेला	१०
वालुकाप्रभाथी आवेला	१०
धूमादि ३ मांथी आवेल	०
वनस्प० थी आवेला	६
अग्नि-वायु-विकले० थी आवेला	०

पुरुषथी पुरुष थयेला	१०८
पुरुषथी स्त्री थयेला	१०
पुरुषथी नपुं० थयेला	१०
स्त्रीथी पुरुष थयेला	१०
स्त्रीथी स्त्री थयेला	१०
स्त्रीथी नपुं थयेला	१०
नपुं० थी पुरुष थयेला	१०
नपुं० थी स्त्री थयेला	१०
नपुं० थी नपुं० थयेला	१०

नन्दन वनथी	४
प्रत्येक विजयमांथी	२०

१ अर्थात् मोक्ष गमनथी उपान्त्य भवमां जीव मनु० स्त्रीना अवतारमां होय ते मनु० स्त्री पणामांथी मरण पामी अनन्तरभवे (अन्त्य भवे) मनुष्य थई केटला जीव मोक्षे जाय ?

२ उपान्त्य भवमां पुरुष होइ मरण पामी अन्त्य भवमां पुरुष थईने

र्म भूमिमांथी	१०	अन्यलिंगे	१०
भूमिमां जन्मेला (अथवा भूमिमांथी	१०८	गृहस्थपणे	४
		जैन साधुना वेषवाळा	१०८
कवनथी	२	स्त्री लिंगे	२०
र्ध्व लोकथी	४	पुरुषलिंगे	१०८
धोलोकथी	२०-२२-४०	नपुं० लिंग	१०
च्छलोकथी	१०८	अवस० ना ३-४ था / उत्स० ना आरामां	१०८
मुद्रमांथी	२	अवस० ना ५ मा आरामां	२०
दी वगेरेना जळथी	३	" १-२-६ आरामां	१०+
२०० धनु० कायावाळा	२	उत्स० ना १-२-५-६ आरामां	१०+
हस्त कायवाळा	४		
ध्यम कायावाळा	१०८		

१-२ कोइ वैरी देवे कर्मभूमिमांथी संहरण करी आणेला केवलिओ ए बे स्थाने मोक्षे जाय अन्यथा नहि.

३ पंडकवनथी

४ १००० योजन ऊंडी सलिलावती ने वप्रा नामनी बे कुब्ज विजयोमांथी प्रदेशमांथी. अहि पण मत (२०-२२-४०)छे,

५-६ कोइ वैरी देवे संहरी समुद्र नदादिमां फेंकी दीधे-ला अथवा चारणपणे त्यां गयेलाने भावनाथी अकस्मात् केवल उत्पन्न थइ मोक्षे गयेला.

७ २ हाथथी उपर ने ५०० धनु० थी वच्चे

८ नारदादि जैनेतरमुनिना वेषवाळा

९ मरुदेवी ५२५ धनु० कायावाळा पण

\+ ए काळमां संहरण करेल सिद्ध थाय.

अवतरण—आ गाथामां नवतत्वने जाणवाथी शुं लाभ थाय ते कहे छे—

॥ मूळ गाथा ५१ मी ॥

जीवाइनव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेऽवि सम्मत्तं ॥५१॥

संस्कृतानुवादः—

जीवादिनवपदार्थान् यो जानाति तस्य भवति सम्यक्त्वं ।
भावेन श्रद्धतो, अज्ञानवत्यपि सम्यक्त्वं ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः

जीवाइ–जीव वगेरे	सम्मत्तं–सम्यक्त्व
नव–नव (९)	भावेण–भाववडे–भावथी
पयत्थे–पदार्थोने (तत्वोने)	सद्दहन्तो–श्रद्धा करना
जो–जे जीव	अयाणमाणे–अज्ञानीने
जाणइ–जाणे	अवि–पण
तस्स–तेने	सम्मत्तं–सम्यक्त्व
होइ–होय–थाय	

गाथार्थः—जे जीव जीवादि नव पदार्थ (–तत्व) ने जाणे तेने सम्यक्त्व होय छे, अथवा भावथी (नवतत्वनी) श्रद्धा करनार (नवतत्वने सत्य माननार) एवा अज्ञानी जीवने (–नवतत्व नहि जाणनारने) पण सम्यक्त्व होय छे.

विस्तरार्थः—जीव–अजीव–पुन्य–पाप–आश्रव–संवर–निर्जरा–अने मोक्ष ए जीवादी नव पदार्थने जे कोइ जाणे तेने समकित होय छे.

प्रश्नः—देवने नारकने मनुष्यने अने मत्स्य वगेरे जळचरादि तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवोने पण सम्यक्त्व होय छे, त्यां मनुष्य अने देवने तो गुर्वादिना उपदेशथी नवतत्त्व जाणवानुं बनी शके परन्तु नारक जीवोने नरकमां अने मत्स्य वगेरेने समुद्रादि स्थाने नवतत्त्व जाणवानुं केवी रीते बनी शके? अने जो नवतत्त्व ज न जाणे तो चालु पाठमां कह्या प्रमाणे तेने सम्यक्त्व केवी रीते होय ? तथा मन्द बुद्धिवाळा के जेओ नवतत्त्वनुं स्वरूप जाणी शके नहि वा जीवोने सम्यक्त्व केवी रीते होय ?

उत्तर—हे जिज्ञासु ! ए सर्व प्रश्नो उत्तर गाथामांज कह्यो छे भावेण सद्दहन्तो अयाणमाणे वि सम्मत्तं एटले पूर्वोक्त ना स्वरूपने जाणतो न होय छतां पण जो भावथी श्रद्धा करनार होय (—सर्वज्ञोए ए नवतत्त्वनुं जे स्वरूप कह्युं छे ते सत्य ज छे, एव दृढ मान्यतावाळो होय) तो तेवा अज्ञान जीवने पण सम्यक्त्व होय छे.

ए प्रमाणे होवाथी जे जीव नवतत्त्वनो ज्ञानी होय तेने ज सम्यक्त्व होय एवो एकान्त नियम नहिं, पण बाहुल्यताए नवतत्त्वनु ज्ञान ते सम्यक्त्व उत्पन्न करवामां प्रबळ साधनरूप होवाथी नवतत्त्वना ज्ञानीने सम्यक्त्व होइ शके ए वात बहुधा निर्विवाद छे,

हवे नवतत्त्वनुं स्वरूप जाणवाथी सम्यक्त्व (शुद्ध श्रद्धा) शी रीते उत्पन्न थाय ? ते कहेवाय छे—नवतत्त्वना स्वरूपने संक्षेपथी जाणनारा जीवने एवी हृदयभावना प्रगट थाय के सर्वज्ञे जे आ नवतत्त्वरूप पदार्थो कह्या छे ते जगतमां कोइ साक्षात् तो कोइ अनुमानादि प्रमाणथी पण अवश्य संभवे छे, वळी सर्वज्ञोए ज्ञानमां जे देख्युं छे तेज कह्युं छे, माटे ते ते पदार्थो दुनियामां विद्यमान छे ज, इत्यादि संक्षेप ज्ञानीने पदार्थोनी अस्तित्वादिभावना द्वारा सम्य-

क्त्व प्रगट थाय छे, अने विस्तार ज्ञानीने विशेष स्वरूपनुं ज्ञान थतां ते ते स्वरूपनुं अस्तित्व अने कथननो परस्पर अविरोध इत्यादि जोइने पण सम्यक्त्व प्रगट थाय छे,

प्रश्न—सम्यक्त्व ते पदार्थ छे के कोइ गुण छे ?

उत्तर—सम्यक्त्व ए पदार्थ नथी पण आत्मानो श्रद्धारूप गुण छे, अर्थात् जे वस्तु जेवारूपे छे ते वस्तुने तेवारूपे जाणवी ते सम्यक्त्व, अथवा देवने विषे देवबुद्धि, गुरुने विषे गुरुबुद्धि, अने धर्मने विषे धर्मबुद्धि, ते सम्यक्त्व कहेवाय, (अहिं सम्यक् एटले सारु-अने साचुं-त्व एटले पणुं अर्थात् सारापणु के साचापणुं ते सम्यक्त्व कहेवाय,] अथवा सर्वज्ञे जे कह्युं तेज सत्य छे, एवा प्रकारनी दृढ मान्यता तेपण सम्यक्त्व कहेवाय इत्यादि सम्यक्त्वना अनेक अर्थ जाणवा.

प्रश्न—आपणने सम्यक्त्व छे के नहि ! ते जाणी शकाय के नहि ?

उत्तरः—आपणने सर्वज्ञे कहेला धर्म उपर तेमज सर्वज्ञे कहेली दरेक वात उपर घणो दृढ राग अने विश्वास छे, एम आपणुं मन साक्षी आपतुं होय अने आस्तिक्य-अनुकंपा इत्यादि सम्यक्त्वनां ६७ लक्षणोमांनां लक्षणो वर्ततां होय तो व्यवहारथी एम मानी शकीए के आपणने व्यवहार सम्यक्त्व छे, परन्तु निश्चय सम्यक्त्व (वस्तुतः सम्यक्त्व) छे के नहि? ते वात तो सर्वज्ञ जाणे परन्तु आपणे छद्मस्थ जाणी शकीए नहिं

प्रश्न—शुद्ध धर्म उपर राग होय छतां आपणने सम्यक्त्व छे एम निश्चय पूर्वक केम न जाणी शकाय ? पोताना आत्माना गुणनी साक्षी पोतानो आत्मा पण न करी शके ए केवुं आश्चर्य ?

उत्तर—हे जिज्ञासु? शुद्ध धर्म उपर राग मात्रथी निश्चय सम्यक्त्व होइ शकतुं नथी. पण सर्वज्ञ कहेला पदार्थना अनन्त भा-

थी एक भाव उपर पण अविश्वास आवतो होय ने शेष सर्व न भाव उपर विश्वास बेसतो होय तोपण सम्यक्त्व होतुं नथी. सर्व बात उपर विश्वास होय ते पण दर्शन मोहनीय कर्म आवरण खसवाथी थयेल होय तोज निश्चयथी सम्यक्त्व होइ, अन्यथा ते कर्मनुं आवरण खस्या विना बाप दादानी रुढी आदिक कारणथी थयेलो जे राग ते निश्चय सम्यक्त्वरूप नथी, ने दर्शन मोहनीय कर्मनुं आवरण खस्युं छे के नहिं ते सर्वज्ञ जी शके छे, पण आपणा सरखा अल्पज्ञानी जीवो जाणी शके हैं. मात्र धर्म उपर राग छे एटलुं स्थूल बुध्धिए जाणी शकाय ते निश्चय पूर्वक सम्यक्त्व उत्पन्न थयुं छे के नहिं ते आपणे जाणी शकीए नहिं; जेम के आपणने ज्वर आव्यो छे, एम सामान्यथी जाणी शकाय पण ते साध्य छे के असाध्य! अने ते केटली डीग्रीनो ? ते यथार्थ अनुभवी वैद्यज जाणी शके तेम धर्म उपर राग छे एम सामान्यतः जाणी शकाय पण ते राग सम्यक्त्वोत्पत्ति जेटलो छे ? के कमी छे ? ते यथार्थ अनुभवी सर्वज्ञ विना कोण जाणी शके ?

अवतरण—आ गाथामां सम्यक्त्व एटले शुं ? अथवा केवी बुद्धिवाळाने सम्यक्त्व होइ शके ? ते कहे छे,

मूळ गाथा ५२ मी,

सव्वाइ जिणेसरभासियाइं, वयणाइ नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धी जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥५२॥

संस्कृतानुवादः

सर्वाणि जिनेश्वरभाषितानि, वचनानि नान्यथा भवंति।
एतद्बुद्धीर्यस्य मनसि, सम्यक्त्वं निश्चलं तस्य ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—

सव्वाइ--सर्वे	इअ--(इह--इइ] एवी (अहिं-एवी)
जिणेसर--जिनेश्वरनां	बुध्धी--बुध्धि
भासियाइं--कहेलां	जस्स--जेना
वयणाइ--वचनो	मणे--मनमां .
न--नहिं	सम्मत्तं--सम्यक्त्व
अन्नहा--अन्यथा -असत्य	निच्चलं--निश्चल--दृढ
हुंति--होय--छे	तस्स--तेनुं

गाथार्थः—श्री जिनेश्वरनां कहेला सर्वे वचनो असत्य न होय (--एक पण वचन असत्य न होय] एवी बुद्धि जेना मनमां होय तेने निश्चल-दृढ सम्यक्त्व छे, ·

विस्तरार्थः—जिनेश्वरे कहेलां सर्व वचनो अन्यथा-असत्य न होय, कारणके असत्य भाषण ७ कारणथी होय छे,ते आ प्रमाणे

जीव ज्यारे क्रोधना आवेशमां आवी जाय छे त्यारे जेम मरजीमां आवे तेम सत्यासत्यनो विचार कर्या विना बोले छे,माटे असत्य भाषणमां क्रोध ए कारण छे-

जीवने ज्यारे अभिमान थाय छे, त्यारे पोतानी श्रेष्ठता दर्शा-

१ ए शब्दस्थाने श्री नवतत्त्व वृत्तिमां मूळपाठमां इइ छे. ने वृत्तिमां इति शब्द होवाथी मूळपाठमां इइ जोइए एम अनुमान थाय छे, ने विशेषतः इअ या इइ बीज पाठ सार्थक समजाय छे,

१ शास्त्रमां क्रोध-लोभ-भय-ने हास्य ए ४ कारण दर्शाव्यां छे परन्तु अहिं विशेष बोधने माटे में ८ कारण दर्शाव्यां छे, माटे वांचकवर्गे शास्त्रमर्यादानो लोप कर्यो एम न विचारवुं.

अथवा तो सत्य बोलतां आ वखते मारुं अपमान तिरस्कार थशे, ए कारणथी पण ते वखते असत्य बोले छे. माटे) भाषणमां मान ए कारण छे.
ए प्रमाणे मायाथी ने लोभथी पण असत्य बोले छे, तेमज भयथी असत्य बोले छे. ने केटलाएक हांसी-मश्करी-कुतूहल दि माटे असत्य बोले छे तेथी भय अने हास्य ए पण अ- भाषणमां कारण छे ए रीते क्रोध-मान-माया-लोभ-भय य—ए ६ असत्यनां कारण छे तेमज केटलाएक जीवो ने ए तेमां कोइपण कारण होतुं नथी अने मनमां सत्य बोलवानोज र होय छतां ते वातनमां अज्ञाणपणुं होय छे, तेथी असत्य ; छे अने कोइवार ज्ञान पदार्थना संबन्धमां पण अनाभोगे (उ- त रहित पणे) असत्य बोली जवाय छे माटे असत्य भाष- i अज्ञान अने अनाभोग कारण छे,

ए प्रमाणे असत्य भाषणनां ८ कारणोमांनुं एक कारण भगवानने छे नहिं कारणके भगवान् कषाय त छे माटे क्रोधादि ६ कारण न होय. अने भगवान् सर्व- छे माटे अज्ञान अने अनाभोग पण कारण न होय, तो हवे [कयुं कारण होइ शके ? के जेथी भगवानने असत्य बोलवा- ; जरुर पडे ! माटे सर्वज्ञ अने कषाय रहित एवा जिनेश्वरोए ते वचनो कह्यां छे तेमांनुं एक पण वचन असत्य नथी पण त्यज छे. एवा प्रकारनी शुद्धबुद्धि जेना मनमां होय ते निश्चय स- त्वत्व--दृढ सम्यक्त्व कहेवाय छे. अने जेओ सर्व वचनो सत्य ने पण एकज वचन असत्य माने तो तेवा जीवो.ने पण सम्यक्- (होय नहिं. जेम श्रीवीर भगवानको प्रभु सर्वांग भगवानना ते वचन सत्य मानवो होतो पण कयां कारणेज कयुं कहेवाय. त कारण बाहिन्न हाद ने कयुं कहेवाय एम ते महावीर आदि क- ; ते ते पुण्डित हुं नथी एम एकज वचन असत्य मानवाथी ज-

मालि निन्हव (सत्य वचनने ओळवनार] अथवा मिथ्यादृष्टि गणायो छे.

तथा गोष्ठामाहिल्ल आचार्य सर्व पदार्थोने यथार्थ प्ररूपता प- ण "जीवप्रदेशने कर्म सर्पनी कांचळीवत् स्पर्शेलुं छे, पण आ- त्मप्रदेशनी अंदर मळेलीने रहेलुं नथी" ए एकज विपरीत अर्थ क- हेवाथी मिथ्यादृष्टि गणाया, एवा आ शासनमां ७ निन्हवो एकेक वचनने असत्य मानवाथी मिथ्यादृष्टि तरीके प्रसिद्ध थया छे, माटे जे प्रमाणिक पुरुषनुं अनेक वचन सत्य मानीए ने एक वचन अ- सत्य मानीए तो ते पुरुषने आपणे सर्वांशे प्रमाणिक मानीए छीए एम कही शकाय नहि, माटे सर्वज्ञ सरखा प्रमाणिक पुरुषोनां स- र्व वचनो सत्यज मानी शकाय.

अथवा जेम न्यायी राजानी सर्व आज्ञाओने प्रमाण करनार प्रजा के सेवक राजनिष्ट कही शकाय पण केटलीक आज्ञाओ माने ने केटलीक आज्ञाओ न माने तो ते प्रजा वा सेवक द्रोही गणाय तेम सर्वज्ञरूप धर्मराजानी सर्व वचनोने सत्य माननार धर्मनिष्ठ अथवा सम्यक्त्वी गणाय पण केटलांक वचनोनो अनादर करे तो ते धर्मद्रोही अथवा मिथ्यादृष्टिज गणाय माटे श्री जिनेश्वरनां क- हेलां सर्व वचनो सत्य माननारा जीवनेज निश्चय सम्यक्त्व होइ शके.

अवतरणः—पूर्वगाथामां सम्यक्त्वनुं स्वरूप कहुं अने हवे आ गाथामां ते सम्यक्त्व पामिथी शुं लाभ थाय ? ते कहे छे.

॥मूळ गाथा ५३ ॥

अंतोमुहुत्तमित्तं-पि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल--परियट्टो चेव संसारो ॥ ५३ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अन्तर्मुहूर्त्तमात्रमपि, स्पर्शितं भवेत् यैः सम्यक्त्वं ।
तेषामपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तश्चैव संसारः ॥ ५३ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

अंतोमुहुत्त—अन्तर्मुहूर्त्त
मित्तं—मात्र
ऽपि—पण
फासियं—स्पर्श्युं
हुज्ज—होय
जेहिं—जेओए
सम्मत्तं—सम्यक्त्व
तेसिं—तेओने
अवड्ढ—अपार्ध (ओछो अर्धो)
पुग्गलपरियट्टो—पुद्गलपराव-
र्त्तकाळ
चेव—निश्चय
संसारो—संसार

गाथार्थः—जे जीवोए अन्तर्मुहूर्त्त मात्र पण सम्यक्त्व स्पर्श्युं होय ते जीवोने निश्चय ओछो अर्ध पुद्गलपरावर्त्त संसार (बाकी रहे छे, ने त्यारबाद अवश्य मोक्षे जाय छे.)

विस्तरार्थः—हवे सम्यक्त्व पामवाथी शुं लाभ थाय ? ते दर्शावे छे के—एक अन्तर्मु० मात्र पण जे जीवोने सम्यक्त्व स्पर्श्युं होय एटले जे जीवोने एक अन्तर्मु० जेटलुं अल्पकाळनुं सम्यक्त्व प्राप्त थयुं होय तो ते जीवोने अर्धपुद्गलपरावर्त्त जेटलोज संसार बाकी रहे छे, अर्थात् ते जीवो अर्धपुद्गलपरावर्त्त जेटला अल्प (पण अनंत) काळमां मोक्षे अवश्य जाय छे.

अहिं अन्तर्मु० नो काळ ते आंख मीचीने उघाडे तेटला काळना पण असंख्यातमा भाग जेटलो अति अल्प होय छे, अथवा वीजळीना एक तीव्र झबकाराने जेटलो वखत लागे तेथी पण अति अल्प (–असंख्यातमा भाग जेटला) वखतने अहिं अन्तर्मु०

कहेवाय छे, ते प्रथम समयावलिमुहूत्ता ए गायामां दर्शाव्या प्रमाणे जो के ९ समयथी २ घडीमां १ समय कमी (अर्थात् ४८ मिनिटमां १ समय कमी जेटला) काळ सुधीनां पण अन्तर्मुहूर्तोज कहेवाय छे, परन्तु अहिं असंख्य समयात्मक मध्यम अन्तर्मु० जाणवुं, एटला अल्पकाळनुं सम्यक्त्व पण जो प्राप्त थाय तो जीव अवश्य मोक्षे जशे एम निर्णय थइ चुक्यो जाणवो।

१० को० को० सागरोपमनी १ अवसर्पिणी अने एटलाज काळनो १ उत्सर्पिणी थाय, अने ए बे मळीने १ काळचक्र थाय, अथवा असंख्यात वर्षनो १ पल्योपम, १० कोडाकोडि (–१०,००००००००००००००) पल्योपमनो १ सागरोपम, २० कोडाकोडि (–२०,०००,०००,०००००० सागरोपमनुं १ काळचक्र, अने एवां अनंतकाळचक्रनो अथवा अनंत अवस०–उत्स० नो १ पुद्गलपरावर्त्त काळ थाय छे, आ जीवे संसारमां परिभ्रमण करतां एवां अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तो अनादिकाळथी मांडीने आजसुधीमां व्यतीत कर्यां छे, परन्तु कोइ पण सम्यक्त्वादि लाभ प्राप्त कर्यो नथी, अने जो हजी पण सम्यक्त्वादि लाभ न प्राप्त करे तो जेटलां पूर्वे व्यतीत कर्यां तेटलां अथवा तेथी अनंतगुणां पुद्गलपरावर्त्त व्यतीत करवां पडे, अने जो अन्तर्मु० जेटलोवार पण सम्यक्त्व मात्र पामे तो तेटलां

---

१ ए बाबतमां बन्ने मत शास्त्रमां प्रसिद्ध छे, कोइ कहे छे के जेटलो काळ पूर्वे व्यतीत थयो तेटलो भविष्यमां व्यतीत करवानो छे, ने कोइ कहे छे के तेथी अनन्त गुणो काळ व्यतीत करवानो छे, अथवा बीजी रीते जेटलो भूतकाळ छे, तेटलो भविष्य काळ छे, एम केटलाएक आचार्यो कहे छे, ने केटलाएक तो 'अणागयद्धा अणंतगुणा' भविष्यकाळ(भूतकाळथी) अनन्तगुणो छे एम कहे छे, बन्ने मत युक्तिवाळा छे.

अनंत पुद्गलपरावर्त्त व्यतीत न करतां मात्र वधुमां वधु ०॥ पुद्गलपरावर्त्तन व्यतीत करवो पडे अने त्यारबाद अवश्य मोक्षप्राप्ति थाय ए आ गाथानो भावार्थ छे. (अहिं अपार्द्ध शब्दनो अर्थ अप-अपगत अर्थात् व्यतीत थयेल छे अर्ध-अर्ध विभाग जेमांथी ते अपार्ध, अर्थात् जेमांथी प्रथमनो अर्ध भाग व्यतीत थया बाद जे छेल्लो अर्ध भाग रहे ते छेल्ला अर्धनुं नाम अपार्ध कहेवाय.)

अवतरणः—पूर्व गाथामां अन्तर्मु० मात्र पण सम्यक्त्व पामनारने ०॥ पुद्गलपरा० संसार बाकी रहे एम कह्युं तो पुद्गलपरावर्त एटले शुं ? ते (आ गाथामां) दर्शावे छे.

॥ मूल गाथा ५४ ॥

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टओ मुणेयव्वो ।
तेऽणंताऽतीअद्धा, अणागद्धा अणंतगुणा ॥५४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

उत्सर्पिण्योऽनंताः , पुद्गलपरावर्त्तको ज्ञातव्यः ।
तेऽनंता अतीताद्धा, अनागताद्धा अनंतगुणा. ॥ ५४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

उस्सप्पिणी-उत्सर्पिणीओ	ऽणंता—अनन्त
अणंता-अनंत	ऽतीअ—अतीत-भूत
पुग्गलपरिअट्टओ-पुद्गलपरावर्त (काळ)	अद्धा—काळ
मुणेयव्वो-जाणवो	अणागय—अनागत-भविष्य
ते—ते पुद्गलपरावर्तो	अणंतगुणा—अनंतगुणा

गाथार्थः—अनंत उत्सर्पिणीओ (मळीने) १ पुद्गल परावर्त्त काळ जाणवो, ते (–तेवा) अनंत पुद्गलपरावर्त्त प्रमाण (जेटलो) अतीत काळ (–भूतकाळ) छे, अने (तेथी भूतकाळथी) अनंतगुण (पु० परा० जेटलो) अनागत काळ (–भविष्य काळ) छे.

विस्तरार्थः—पूर्व गाथाना विस्तरार्थमां कह्या प्रमाणे १८ को० को० पल्योपमनो १ सागरोपम, अने १० को० को० सागरोपमनी १ अवसर्पिणी अथवा १ उत्सर्पिणी (काळ विशेष) थाय छे, एवी अवसर्पिणीओ वा उत्सर्पिणीओ अनंत थाय त्यारे एक पुद्गलपरावर्त्त थाय, अने ते अनंत पुद्गल परावर्त्तनो एक अतीत अद्धा (–भूतकाळ) थाय, अने तेथी अनंतगुणा पुद्गलपरावर्त्तनो एक अनागत अद्धा (–भविष्यकाळ) थाय. आ स्थाने केटलाएक एम पण कहे छे के जेटला पु० परा० नो भूतकाळ छे. तेटला पु० परा० नो भविष्यकाळ छे.)

---

१ पुद्गलपरावर्त्त आठ प्रकारे छे ते आ प्रमाणे—

१— चौद राजमां जेटला पुद्गलो छे ते सर्व पुद्गलोना सर्व अणुओने कोइ एक जीव औदारिक देहपणे परिणमावी परिणमावीने मूके=विसर्जे तेमां जेटलो काळ व्यतीत थाय तेटलो काळ औदा० बादर द्रव्यपुद्गलपरावर्त्त, तेवीज रीते वैक्रिय बा० द्र० पु० परा० इत्यादि (आहारक सिवाय] ७ प्रकारना बा० पुद्गल परा० जाणवा,

२—चौदराजमां जेटला पुद्गलो छे ते सर्व पुद्गलना परमाणुओने औदा० देहपणे अनुक्रमे परिणमावी परिणमावी विसर्जे तेमां जेटलो काळ व्यतीत थाय तेटलो काळ औदा० सूक्ष्म द्रव्य पुद्गलपरावर्त्त, ए प्रमाणे वैक्रियादि सात प्रकारना० सू० द्रव्य पुद्गलपरावर्त्त जाणवा. [अहिं पुद्गल परिणमननी गणत्रीमां एक समये घणा नवा (–प्रथम नहिं ग्रहण करेला)

अवतरणः—आ गाथामां सिद्ध जीवोना १५ भेद दर्शावे छे.

॥ मूळ गाथा ५५ ॥

जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय सिद्धणिका य ॥ ५५॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जिनाजिनतीर्थातीर्था, गृहन्यस्वलिंगस्त्रीनरनपुंसः
प्रत्येकस्वयंबुध्धा; बुद्धबोधितसिध्धा अनेकाश्च ॥ ५५ ॥

परमाणु ग्रहण थया हतां पण तेमांनो विवक्षित पहेलो नवो (प्रथम अग्रहित)ग्रहण कर्यो गणवो. अने प्रथमना बादर पु०परा० मां तो एक समयमां जेटला परमाणु नवा ग्रहण थाय ते सर्व ग्रहण कर्यानी गणत्रीमां आवता हता, ए बा० पु०परा०मां उत्क्रम (क्रम विनानी गणत्री)हतो तेनो सू०पु०परा०मां अनुक्रम पूर्वक गणत्री गणवी. अने ते अनुसार आगळ पण सू० अने बा० पु० परा० मां क्रमोत्क्रमनो पद्धति स्वयं विचारवी

३-४ सर्व लोकाकाशना प्रदेशोमां विना अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ बा० क्षेत्र पु० परा० अने अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ सू० क्षे० पु० परा०.

५-६एक काळ चक्रना सर्व समयोने उत्क्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ बा०काळ पुद्गल परा०,ने अनुक्रमे मरण पामतां जेटलो काळ लागे तेटलो काळ सू० काळ पु० परा०

७-८ कर्मना रस बन्धमां कारणरूप सर्व अध्यवसाय स्थानोमां विना अनुक्रमे मरण पामवामां जे काळ लागे तेटलो काळ बा० भाव पु० परा०, ने अनुक्रमे मरण पामवामां जे काळ लागे ते सू० भाव पु० परा० कहेवाय

॥ शब्दार्थः ॥

जिण–जिनसिध्ध	नर–पुरुषलिंग सिध्ध
अजिण–अजिनसिद्ध	नपुंसा–नपुंसक लिंग सिध्ध
तित्थ–तीर्थसिद्ध	पत्तेय–प्रत्येक बुध्धसिध्ध
अतित्थ–अतीर्थसिद्ध	सयंबुध्धा स्वयंबुध्धसिध्ध
गिहि–गृहस्थलिंग सिद्ध	बुध्धबोहिय–बुध्धबोधितसिध्ध
अन्न–अन्यलिंग सिध्ध	सिध्ध एक सिध्ध
सलिंग–स्वलिंग सिध्ध	ऽणिक्क–अनेक सिध्ध
थी–स्त्रीलिंग सिध्ध	य–वळी–अने

गाथार्थः—जिनसिद्ध, अजिनसिद्ध, तीर्थसिद्ध, अतीर्थसि-द्ध, गृहस्थलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, स्त्रीलिंगसि-द्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, प्रत्येकबुद्धसिद्ध, स्वयंबुद्ध-सिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, एकसिद्ध, ने अनेकसिद्ध (ए प्रमाणे सिद्धना १५ भेद छे.)

विस्तरार्थः—हवे १[1] भेदे सिद्ध थाय ते १५ भेदनुं स्वरूप दर्शावाय छे.

१ जिन—तीर्थंकर पदवी प्राप्त करीने जे जीवो मोक्षे गया ते जिनसिद्ध.

२ तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर्या विना जे जीवो मोक्षे गया ते अजिनसिद्ध.

३ तीर्थ—संघनी स्थापना थया बाद जे जीवो मोक्षे गया ते तीर्थसिद्ध.

---

१ कहेवाता सर्व भेद सिद्ध अवस्थाना समयने आश्रयि नहि पण पूर्वभवावस्थाथी जाणवा.

४ तीर्थनी स्थापना थया पहेलां जेओ मोक्षे गया ते अतीर्थसिद्ध.

५ गृहस्थना वेषमां जेओ मोक्षे गया ते गृहस्थलिंगसिद्ध.

६ तापस विगेरे अन्यदर्शनी साधुना वेषमां जेओ मोक्षे गया ते अन्यलिंगसिध्ध.

७ सर्वज्ञोक्त रजोहरण (–ओघो)–मुहपत्ति–चोलपट्ट (–इत्यादि मुनि योग्य वेष) ते स्वलिंग कहेवाय, एवा प्रकारना मुनिना) वेषमां रह्यो छतो जे जीव मोक्षे जाय ते स्वलिंगसिद्ध.

---

१ अहिं मोक्षे जतां वेष भले गृहस्थनो होय के तापसादि अन्य साधुनो होय परन्तु आचार विचार तो श्री सर्वज्ञोक्त सिद्धान्तने अनुसारे ज होवा जोइए, नहितर पोतपोताना मानेला धर्मने अनुसारे क्रियाकांड करनारने मोक्ष होइ शके ज नहि अने जो दुनियामा वर्तता सर्व धर्मो मोक्षने आपनार होय तो धर्म के अधर्मनो भेदज न रहे.

अहिं सर्वज्ञोक्त संयमना नियमो पाळवानी अरुचिवाळा जीवो एम कहे छे के "गृहस्थ वेषमां पण मोक्ष थाय छे, पण संसार त्यागीने साधु बनी जवाथी ज मोक्ष थाय छे एम नथी" ए प्रमाणे कहेनाराओए ख्यालमां राखवुं जोइए के एवा विचारथी साधुपणुं नहिं अंगीकार करी गृहस्थधर्म पाळवामां के गृहस्थना वेषमां कोइ काळे पण मोक्ष प्राप्ति छे ज नहि, परन्तु अहिं गृहस्थना वेषमां जे मोक्ष कह्यो ते जे जीवने संसार त्याग करी साधुपणुं अंगीकार करवानी उग्र भावना प्रगटी होय, ने गृहस्थपणाने काळा केदखाना तुल्य मानतो होय तेवा जीवने भावनानी प्रबळताथी शीघ्र केवळज्ञान उत्पन्न थइ जाय ने आयुष्य अन्तर्मुहूर्तमात्र अल्प होय तो तेवाने तेवा गृहस्थ वेषे पण मोक्ष कह्यो छे, ने जो आयुष्य अधिक होय तो गृहस्थनो वेष त्याग करी अवश्य साधुपणानो वेष अंगीकार करे एवो नियम छे. (कूर्मापुत्र केवलि थया छतां पण ६ मास गृ-

हम्यवेरे रह्या ए॰ अपवाद रूप होवाथी अहिं ग्रहण करवा योग्य नथी.) पुनः तापसादिना वेषमां मोक्ष कह्यो ते पण ए रीते ज जाणवो, अने ते तापसादि पण केवळज्ञान पाम्या बाद अधिक आयुष्य जाणे तो अवश्य साधुवेष अंगीकार करे तेनो पाठ आ प्रमाणे—

" यदा अन्यलिंगिनां भावतः सम्यक्त्वादि प्रतिपन्नानां केवलज्ञानं प्रतिपद्यन्ते तदा अन्यलिंगत्वं द्रष्टव्यं, अन्यथा यदि दीर्घमायुष्कमात्मनः पश्यन्ति ज्ञानेन ततः साधुलिंगमेव प्रतिपद्यन्ते" [नवतत्त्वावचूरी]

अर्थः—भावथी सम्यक्त्वादि पामेला अन्यलिंगिओने ज्यारे केवळज्ञान अंगीकार कराय (-अन्यलिंगीयो ज्यारे केवळज्ञान अंगीकार करे) त्यारे अन्यलिंगीपणुं जाणवुं, नहितर ज्ञानवडे जो पोतानुं दीर्घ आयुष्य जाणे तो साधुनो वेषज अंगीकार करे) ए पाठ जो के तापसादि वेषवाळाने अंगे छे तोपण तत्त्व एक होवाथी गृहस्थलिंगना संबंधमां पण उपयोगी छे.

माटे सार एज छे के गृहस्थने पण मोक्ष छे पण विचारथी गृहजंजाळ नहिं छोडी साधुपणुं नहिं स्वीकारनार गृहस्थने मोक्ष होइ शके नहिं.

२ अहिं तापसादिना वेषमां मोक्ष कह्यो ते संबन्ध १ नंबरनी स्फुटनोटमां आपेला शास्त्रपाठथी यथायोग्य विचारवो. अर्थात् सार एज छे के तापसादिना वेषे मोक्ष होवाथी तापसादिनो धर्म पण मोक्ष आपनार छे एम न जाणवुं.

पुनः आ उपरथी एम पण समजवुं जोइए के जैन धर्ममां मात्र (जातिथी) जैनने ज मोक्ष होय एवो आग्रह नथी पण जैन सिवायना बीजा तापस वगेरे अन्य धर्मीओने पण (=अन्यजातिवाळाओने पण) मोक्ष होय एम मानेलुं छे माटे ए वात उपरथी जैनधर्मनुं निष्पक्षपातपणुं स्पष्टरीते जाहेर थायछे. कह्युंछे के

सेयंबरो य आसंबरो य बुद्धो य अहव अन्नो वा ।
समभावभावियप्पा, लहइ मुक्खं न संदेहो ॥ १ ॥
(संबोधसत्तरिका)

८ स्रीपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते स्री-लिंगसिद्ध (अर्थात् स्रीओ मोक्षे जाय ते स्रीलिंग सिद्ध.)

९ पुरुषपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते पुरुषलिंग सिद्ध (अर्थात् पुरुषो मोक्षे जाय ते पु० लिं० सिद्ध)

१० नपुंसकपणाना चिन्हवाळी देहाकृतिए जे मोक्षे जाय ते नपुंसकलिंगसिद्ध (अर्थात् कृत्रिम नपुंसको जे मोक्षे जाय ते न-नपु० लिंग सिद्ध.)

११ संध्या समयना वादळना रंगो बदलावाथी, संसारमां जेवा जेवा प्रकारनी चीजोनां जेवां जेवां स्वरूप देखीने इत्यादि निमित्त पामीने वैराग्य भावना प्रकटतां केवळज्ञान पामी मोक्षे जाय ते प्रत्येकबुद्धसिद्ध. (अहिं गुरुना उपदेशनो अभाव छे)

१२ गुरुना उपदेश विना यथाप्रकारे कर्म पातळां पडवाथी कंइपण निमित्तविना पोतानेज संसार स्वरूप असार लागवाथी वैराग्यभावना प्रकटतां केवळ ज्ञान पामी मोक्षे जाय ते स्वयंबुद्धसिद्ध कहेवाय.

अर्थः- श्वेताम्बर होय के दिगम्बर होय बौद्ध होय के बीजा कोइपण धर्मवाळो होय परंतु जो समभावयुक्त (-सर्वसीतरीते समभावयुक्त) वासित आत्मावाळो होयतो मोक्ष पामे एमां संदेह नथी.

१-२-३ वेद त्रण प्रकारनो छे -१ वेदथी-२ लिंगथी-३ वेषथी. त्यां जे वखते पुरुषवेदनो अभिलाष वर्ततो होय ते वखते वेदथी कहेवाय. तथा योनिलक्षण वगेरे चिन्हो पुरुष ते लिंगथी, अने स्त्रीनो वेष पहेरेला पुरुषादि ते वेषथी कहेवाय, ए त्रण भेदमांथी वेषथकी अने लिंगथी मोक्षे जाय (परन्तु वेद अपेक्षाए मोहवाळी दशामां लिंगथीज एक ज भेदमां मोक्ष कह्यो छे.) पण वेदना उदयवाळो वेदथीज मोक्ष होय नहि. ए प्रमाणे पुरुष तथा नपुंसकना संबंधमां पण विचारवुं. ४-५ प्रत्येकबुद्ध अने स्वयंबुद्धमां विशेष तफावत बोधि-उप-धि-श्रुत-ने वेष संबंधि छे ते आ प्रमाणे—

बोधिभेदः—स्वयंबुद्ध बाह्यनिमित्त विनाज जातिस्मरणादिकवडे बोध पामे छे ते तीर्थंकरने अतीर्थंकर एम बे प्रकारना छे, परन्तु अहिं चालु अधिकारमां अतिर्थंकर स्वयंबुद्ध स्वयंबुद्ध सिद्ध तरीके गणवा. तथा प्रत्येकबुद्ध वृषभादि बाह्यनिमित्तथी बोध (–वैराग्यादि) पामे छे, ने प्रत्येक एटले एकला विहार करे छे पण प्रत्येकबुद्ध प्रत्येकबुद्धनी साथे वा अन्यसाथे गच्छवत् एकठामळी विहार करता नथी.

उपधिभेदः- स्वयंबुद्धने पात्रादिक उपधि १२ प्रकारनी ज होय छे, ने प्रत्येकबुद्धने जघन्यथी बे प्रकारनी ने उत्कृष्टथी प्रावरण सिवाय ९ प्रकारनी उपधि होय छे.

श्रुतभेदः— स्वयंबुद्धने श्रुतज्ञान होयतो पूर्वाधित (-पूर्वभवमां भणेलुं) श्रुतज्ञान (जातिस्मरथी) होय अन्यथा न होय. वळी जो पूर्वाधीत श्रुतज्ञान होयतो साधुवेष देव आपे अथवा गुरुपासे जइने पोते ग्रहण करे, अने एकलविहार करवा.ने समर्थ होय अथवा तेवी इच्छा होय तो एकलविहार करे नहिंतर गच्छवासमां रहे. अने जो पूर्वाधीतश्रुत न होय तो निश्चय गुरुपासे जइनेज साधुवेष अंगीकार करे अने गच्छमां ज रहे. तथा प्रत्येकबुध्धने तो जघन्यथी ११ अंग ने उत्कृष्टथी किंचित् न्यून १० पूर्व जेटलुं पूर्वाधीतश्रुत होय.

वेषभेदः—स्वयंबुद्धने वेष देव आपे अथवा गुरुपासे जइने ग्रहण करे, अने प्रत्येकबुध्धने देव ज वेष आपे अन्यथा वेष रहित पण होय [इत्यादि वर्णन श्री नन्दीसूत्रनी चूर्णी तथा श्री प्रज्ञापना वृत्तिमां छे.)

पुनः स्त्रीयाने प्रत्येकबुध्धपणुं होतुं नथी. श्री नवतत्वावचूरीमां कह्युं छे के - तस्मिन् स्त्रीलिंगे वर्तमानाः संतो ये सिध्धाः प्रत्येकबुध्धवर्जिताः केचित् स्त्रीलिंगसिध्धाः (-ते स्त्रीलिंगमां वर्तता छता प्रत्येकबुध्ध सिवायना जे कोइ मोक्षे गया स्त्रीलिंगसिध्ध कहेवाय छे.)

१३ बुध्ध एटले गुरु वगेरेना बोधिय-बोध पामेला अर्थात् जेओने गुरु आदिकना उपदेशथी संसारनुं स्वरुप असार लागतां वैराग्यभावना प्रकट थवाथी केवळज्ञान प्राप्त करी मोक्षे गया होय तेओ बुध्धबोधितसिध्ध.

१४ जेओ १ समयमां एकज मोक्षे गया होय परन्तु ते समये अढी द्वीपात्मक मनुष्यक्षेत्रमांथी बीजो कोइ पण जीव मोक्षे न गयो होय तेवा जीवो एकसिध्ध.

१५ तथा १ समयमां जे अनेक जीवो समकाळे मोक्षे गया होय ते सर्व जीवो अनेकसिध्ध कहेवाय.

१-२ एक समयमां जघन्यथी १ ने उत्कृष्टथी १०८ जीवो मोक्षे जाय छे. तेमां पण एवो नियम छे के १ थी ३२ सुधीनी संख्यावाळा जीवो लागलागट आठ समय सुधी मोक्षे जाय ने नवमे समये अवश्य अन्तर पडे अर्थात् विवक्षित समये १ जीव मोक्षे गयो. पुनः बीजे समये १ जीव मोक्षे गयो, पुनः त्रीजे समये १ जीव मोक्षे गयो, ए रीते यावत् आठमा समय सुधी एकेक जीव मोक्षे जाय त्यारबाद नवमे समये कोइपण न जाय ए प्रमाणे बे बे-त्रण त्रण-यावत् बत्रीस बत्रीस जीव लागलागट आठ समयसुधी मोक्षे जाय ने नवमे समये कोइपण मोक्षे न जाय. पुनः ३३ थी ४८ सुधीनी संख्यावाळा जीवो लागलागट ७ समय सुधी मोक्षे जाय ने आठमे समये कोइपण न जाय, तथा ४९ थी ६० सुधीनी संख्या ६ समयसुधी, ६१ थी ७२ सुधीनी संख्या ५ समयसुधी, ७३ थी ८४ सुधीनी संख्या ४ समयसुधी, ८५ थी ९६ सुधीनी संख्या ३ समयसुधी ९७ थी १०२ सुधीनी संख्या २ समय सुधी ने १०३ थी १०८ सुधीनी संख्या १ समय सुधी मोक्षे जाय ने त्यारबाद अवश्य कोइ पण मोक्षे न जाय.

३ पुनः सिध्धना जे १५ भेद कह्या ते कया कया जीवो मोक्ष पामी शके ते विशेष स्पष्ट समजी शकाय ते कारणथी छे एम श्री प्रज्ञाप०जीमां कह्युं छे अन्यथा परस्पर अन्तर्गतपणुं

अवतरणः—पूर्व गाथामां जे १५ प्रकारना सिध्ध कह्या तेमां जिनसिध्ध वगेरे कोण कहेवाय ? ते दर्शावे छे. त्यां प्रथम आ गाथामां जिनसिध्ध-अजीनसिध्ध--तीर्थसिध्ध--ने अतीर्थसिध्ध ते कोण ? ते कहे छे.

॥ मूळ गाथा ५६ ॥

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंडरियपमुहा ।
गणहारि तित्थसिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥

होवाथी सिध्धना १५ भेद थइ शके नहि पण वास्तवीकरीते नीचे प्रमाणे सिध्धपरमात्माना बे अने त्रण भेद पडी शके ते आ प्रमाणे –

सिध्धना २ भेद— जिनसिध्ध-अजिनसिध्ध अथवा तीर्थसिध्ध-अतीर्थसिध्ध, अथवा एकसिध्ध-अनेकसिध्ध एम त्रण रीते बे बे भेद थइ शके छे.

सिध्धना ३ भेद—गृहलिंगसिध्ध-अन्यलिंगसिध्ध-स्वलिंगसिध्ध, अथवा स्त्रीलिंगसिध्ध-पुरुषलिंगसिध्ध ने नपुंसकलिंगसिध्ध, अथवा स्वयंबुध्धसिध्ध प्रत्येकबुध्धसिध्ध-ने बुध्धबोधितसिध्ध.

ए प्रमाणे प्रत्येक सिध्धने ६-६ भेद होइ शके छे-जेम के. श्री महावीरस्वामि मोक्षे गया तो तेओ जिनसिध्ध छे. तीर्थसिध्ध छे, स्वलिंगसिध्ध छे, पुरुषलिंगसिध्ध छे, स्वयंबुध्धसिध्ध छे, ने पोते एकला मोक्षे गया छे माटे एकसिध्ध पणछे ए रीते मरुदेवामाता अजिनसिध्ध-अतीर्थसिध्ध-गृहलिंगसिध्ध स्त्रीलिंगसिध्ध स्वयंबुध्धसिध्ध—ने प्रायः अनेक सिध्ध छे. इत्यादि रीते एकसिध्धमां सिध्धना १५ भेदमांनो एकज भेद ने तेम नहि पण बधुमां बधु ६ भेद होय.

॥ संस्कृतानुवादः ॥

जिनसिध्धा अरिहंता, अजिनसिध्धाश्च पुंडरीकप्रमुखाः।
गणधारिणस्तीर्थसिध्धा, अतीर्थसिध्धा च मरुदेवी ॥५६॥

॥ शब्दार्थः ॥

जिणसिध्धा--जिनसिध्ध	गणहारि--गणधरो
अरिहंता--तीर्थंकरो	तित्थसिध्धा--तीर्थसिध्ध
अजिणसिध्धा--अजिनसिध्ध	अतित्थसिध्धा--अतीर्थसिध्ध
पुंडरिय--पुंडरिक गणधर	मरुदेवी--मरुदेवा माता
पमुहा--वगेरे	

गाथार्थः—श्री तीर्थंकरो (मोक्षे जाय ते) जिनसिध्ध, अने पुंडरिक गणधर वगेरे अजिनसिध्ध, सर्व गणधरो तीर्थसिध्ध, अने मरुदेवा माता अतीर्थसिध्ध कहेवाय.

विस्तरार्थः—अरि एटले रागद्वेषादिरूप शत्रुने हंत एटले हणनार ते अरिहंत सर्व केवलिभगवान कहेवाय छे, परन्तु अ-हिं अधिकारना वशथी सर्व केवलि भगवान नहिं पण श्रीतीर्थंकर भगवानज अरिहंत गणाय छे, तेवा तीर्थंकर परमात्माओ जे मोक्षे जाय ते जिनसिध्ध (जिन =तीर्थंकर ए अर्थ होवाथी) कहेवाय.

तथा श्री आदीश्वर भगवानना मुख्य गणधर श्री पुंडरीक गणधर इत्यादि जेओ तीर्थंकर पदवीने नहिं पामेला मोक्षे गया होय ते सर्व अजिनसिध्ध.

तथा श्री गणधर वगेरे जेओ तीर्थनी (=चतुर्विध संघनी) स्थापना थयाबाद मोक्षे गया होय ते सर्व तीर्थसिध्ध कहेवाय. अहिं श्री गणधर महात्माओ अवश्य तीर्थ स्थपाया बादज मोक्षे जाय एवो नियम होवाथी बीजा जीवोने तीर्थ सिध्धपणे नहिं दर्शावतां मात्र श्री गणधरोनेज तीर्थसिध्ध कह्या छे. परंतु एथी मात्र गणधरोज तीर्थसिध्ध होय ने बीजा न होय एवो

नियम नथी, परन्तु जे कोइ जीव तीर्थस्थपाया बाद मोक्षे जाय ते तीर्थसिद्ध कही शकाय.

तथा श्री आदीश्वर भगवाननी माता श्रीमरुदेवा वगेरे जेओ तीर्थ स्थपाया पहेलां मोक्षे गयेल होय ते अतीर्थसिद्ध कहेवाय.

---

१ श्रीऋषभदेव भगवानने केवळ ज्ञान थयुं ते वखते सर्व इन्द्रादि देवो केवळ ज्ञाननो महोत्सव करवा तथा श्रीभगवंतनी देशना सांभळवाने आव्या ते वखते देवो समवसरण रचे छे, तेमां घणो आडंबर करी उपदेश श्रवण करता हता. ते दरम्यानमां भरतचक्रवर्तीने खबर मळतां तुरत ज पुत्रना विरहथी रात्री दिवस रुदन करी अन्ध थयेलां मरुदेवा माताने शान्ति उपजाववा कह्युं के हे मातुश्री ! आप तो रात्रिदिवस शोक कर्या करो छो के मारो पुत्र ऋषभ क्यां हशे ? शुं खातो हशे ! शुं पीतो हशे ! केटलुं कष्ट वेठतो हशे, परन्तु हवे चालो के आपना पुत्रनी केवी ऋद्धि छे ते दर्शावुं. आ खबर मळतां तुरत ज मरुदेवा माता हर्षवान थइ भरते शणगारेला हाथी पर बेसी ऋषभपुत्रने मळवा परिवार सहित जाय छे; ते समवसरणमां तो हजी देशना देवाय छे, ते वखते इन्द्रो चामरादि आदिथी प्रभुनी सेवा पूरे छे, देवो दुन्दुभि वगाडे छे इत्यादि महामहोत्सव सांभळी मरुदेवा माता मार्गमां ज विचार करे छे के अहो ! हुं पुत्र पर आटलो बधो प्रेम राखुं छुं छतां पुत्रने आटला बधा सुखमां मग्न थइ मारी खबर पण नथी लेतो ! अने संदेशो पण नथी कहावतो ! खरेखर आ मारो मोह वृथा दुःखदायी छे, संसारमां कोइ कोइनुं सगुं नथी इत्यादि भावना भावतां मार्गमां ज श्रीमरुदेवा माताने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं ने आयुष्य पण अल्पमुहूर्त मात्र बाकी रह्युं हतुं तेथी अन्तमुहूर्त पूर्ण करी मार्गमां हाथी उपर बेठां बेठां मोक्षे गयां

अहिं संघनी (तीर्थनी) स्थापना तो हजी देशना समाप्त थया बाद थवानी छे, परन्तु ते पहेलां ज मरुदेवा माता मोक्षे गयां माटे अतीर्थसिद्ध छे.

अवतरण—आ गाथामां गृहस्थलिंगसिध्ध आदि दृष्टान्त दर्शावे छे,

॥ मूळ गाथा ५७ मी. ॥

गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि
साहू सलिंगसिद्धा, थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥ ५७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

गृहीलिंगसिध्धो भरतो, वल्कलचीरी चान्यलिंगे ।
साधवः स्वलिंगसिध्धाः, स्त्रीसिध्धाश्चंदनाप्रमुखाः ॥५७ ॥

शब्दार्थः

गिहिलिंगसिध्ध–गृहस्थलिंगसिध्ध	साहू–सर्वे साधुओ
	सलिंगसिध्धा–स्वलिंगसिध्ध
भरहो–भरतचक्रवर्ती	थीसिध्धा–स्त्रीलिंगे सिध्ध
वक्कलचीरी—वल्कलचीरी	चंदणा—चन्दनबाळा
अन्नलिंगम्मि–अन्यलिंगे सिध्ध	पमुहा—वगेरे

गाथार्थः—भरत चक्रवर्ति गृहस्थलिंगे सिद्ध, वल्कलचीरी

प्रश्नः—अहीं अतीर्थपणुं बे प्रकारनुं होय छे, १ अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणीकाळमां प्रथम तीर्थंकर प्रभुनुं तीर्थ स्थपायुं न होय त्यां सुधी २ तीर्थंकर भगवाननुं तीर्थ स्थपाया बाद विच्छेद पाम्युं होय अने नवुं तीर्थ स्थपायुं न होय त्यांसुधी तेमां अहिं मरुदेवा माता तो प्रथमभेदे अतीर्थसिद्ध छे त्यारे बीजा कोइ जीवो बीजे भेदे अतीर्थसिद्ध होय के नहि ?

उत्तर—पूर्व भगवाननुं तीर्थ विच्छेद पाम्या बाद ने आगळना भगवान नवुं तीर्थ स्थापे ते पहेलां पण अनेक जीवो जातिस्मरणादि ज्ञानथी वैराग्य पामी मोक्षे जाय छे तेओ पण अतीर्थसिद्ध ज कहेवाय एम श्री प्रज्ञापनावृत्तिमां कह्युं छे

(तापस) अन्यलिंगे सिद्ध, सर्व साधुओ [जैन मुनिओ) स्वलिंगसिद्ध, अने चन्दनबाळा वगेरे स्त्रीलिंगे सिद्ध कहेवाय,

विस्तरार्थः—गृहस्थवेषे सिध्ध ते श्रीऋषभदेवना पुत्र भरतचक्रवर्ति वगेरे जाणवा, कारणके श्रीभरतचक्रवर्ति सर्व शणगार सहित थइ आरिसा भुवनमां बेठा हता ते वखते आंगळीमांथी वींटी पडी जनां ते आंगळी आरिसानी अंदर बीजा अंगनी अपेक्षाए शोभा रहित बेडोळ देखावा लागी, त्यारे लघुकर्मीपणाने लइने एवी भावना प्रगटी के अहो आ अंग परवस्तुवडे करीनेज शोभीतुं छे इत्यादि भावना वृद्धि पामतां केवळज्ञान प्राप्त थयुं, ने त्यारबाद कंइक मुदत सुधी विहार करी मोक्षे गया,

तथा प्रसन्नचंद्र राजर्षिना भाइ वल्कलचीरी पोताना तापसपितानी पासे वनमां रहेता हता ने वल्कल एटले झाडनी छालनुं चीर एटले वस्त्र पहेरता, माटे वल्कलचीरी नाम पडयुं हतुं, ते वल्कलचीरी एक दिवस पोताना तापस पितानी तुंबडी वगेरे उपकरण देखीने चिंतववा लाग्या के—आवुं पात्र में कोइ वखत पहेलां पण देख्युं छे, एम चिंतवतां चिंतवतां जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयुं ने तेथी पोते पुर्वभवमां जैन मुनिवेषे चारित्र पाल्यानुं वृत्तान्त विचारतां भावना भावतां केवलज्ञान पाम्या ने त्यारबाद मोक्षे गया,

तेमज श्री गौतमस्वामिए अष्टापद पर १५०० तापसोने अक्षीणमहानसी लब्धिथी खीर जमाडी उपदेश आपतां ते सर्वे केवळज्ञान पाम्या हता तेओ पण अन्यलिंगसिद्ध ज कहेवाय.

तथा सर्वे सर्वज्ञोक्त साधुवेषने अङ्गीकार करी जेओ मोक्षे गया ते स्वलिंगसिद्ध कहेवाय.

तथा चंपा नगरीना दधिवाहन राजानी पुत्री वसुमती के जे शतानीक राजानी चडाइथी चंपा नगरी भागतां केद पकडाइ अने आखरे कौशाम्बी नगरीमां धनावह श्रेष्ठिए ते राजपुत्रीने वेचाती लइ तेनुं चन्दना नाम राख्युं अने त्यांने शेठनी मूला नामनी स्त्रीए शोक्य थवाना भयथी माथु मुंडावी बेडीमां नांखी हती, छेवटे श्रीमहावीर स्वामिभगवाननो अडदना वाकळानु अति दरमुक्ता पूर्वक दानथाती अभिग्रह पूर्यो हतो ते चन्दनवाळा श्रीमहावीर स्वामिनी मुख्य साध्वी हती, ते पोतानी शिष्या(चेली)मृगावती सहित श्री महावीरप्रभुनी देशना सांभळवा आवेल हती ते अवसरे चन्द्र सूर्य मूळ विमाने वंदना करवा आवेल होवाथी संध्या समय थइ जवा छतां पण मृगावतीजीने खबर पडी नहिंने चन्दनवाला तो प्रवीण होवाथी उपासरे गयां, त्यारबाद चन्द्र सूर्य जवाथी अंधकार व्याप्त थतां मृगावतीजी पण भय पाम्या छतां शीघ्र उपाश्रये आव्या, त्यां गुरु चंदनवाळाए सहज ठपको आप्यो के आटलुं असुर थतां सुधी त्यां वेसी रहेवुं तमारा सरखा कुलीन साध्वीने उचित नथी ए उपालंभने शीखामणरूप गणी गुरुथी पासे पोतानो अपराध वारंवार खमावे छे ते दरम्यानमां चन्दनवाळा साध्वी निद्रावश थयेल छे, अहिं मृगावतीजीने पोताना अपराधनो पश्चात्ताप करतां केवळज्ञान उत्पन्न थयुं. जेथी गुरुनी हाथ नजीकथी सर्प जतो देखी गुरुनो हाथ खसेडयो, जेथी चंदनवाला जागी उठवाने कारण पूछवाथी सर्पनी वात कही त्यारे चंदनवालाए कह्युंके घने अंधकारमां सर्पनी केम खबर पडी? मृगावतीए कह्युंके "गुरु प्रसादथी," त्यारे चन्दनवालाए कह्युंके शुं तमने केवळज्ञान थयुंछे? तोपण मृगावतीए एज जवाब आप्यो त्यारे मृगावतीजीने खमावतां चन्दनवालाने पण केवळज्ञान उत्पन्न थयुं, ए प्रमाणे चन्दनवाळा वगेरे जे मोक्षे गयां ते स्त्रीलिंगसिद्ध कहेवाय,

१ अहिं दिगम्बर संप्रदाय एम कहे छे के स्त्रीने

अवतरण—आ गाथामां पुरुषलिंग सिध्ध वगेरेना दृष्टांत कहेछे.

॥ मूळ गाथा ५८ मी, ॥

पुंसिध्धा गोयमाई, गांगेयाई नपुंसया सिध्धा ।
पत्तेयसयंबुध्धा, भणिया करकंडु कविलाइ ॥५८॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पुरुषसिध्धा गौतमादयो, गांगेयादयो नपुंसकाः सिध्धाः ।
प्रत्येकस्वयंबुध्धा, भणिताः करकंडुकपिलादयः ॥५८॥

॥ शब्दार्थः ॥

पुंसिध्धा–पुरुषलिंगे सिध्ध	पत्तेय–प्रत्येकबुध्धसिध्ध
गोयमाई–श्रीगौतमस्वामि वगेरे	सयंबुध्धा–स्वयंबुध्धसिध्ध
गांगेयाई–गांगेय (मुनि)वगेरे	भणिया—कह्या छे,
नपुंसया–नपुंसकलिंगे	करकंडु—करकंडु मुनि
सिध्धा–सिध्ध थया	कविलाई -कपिलमुनि वगेरे

गाथार्थः—श्रीगौतमस्वामि वगेरे पुरुषलिंगे सिद्ध (कहेवाय) गांगेय विगेरे नपुंसकलिंगे सिध्ध थया कहेवाय तथा करकंडुमुनि वगेरे प्रत्येकबुद्धसिद्ध, अने कपिल केवली वगेरे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहेवाय,

विस्तरार्थः-श्री गौतम गणधर श्रीमहावीर भगवानना शिष्यहता

होय नहि, कारणके स्त्रीने वस्त्रपरिग्रह अवश्य होय छे ने परिग्रहीने मुक्ति होय नहि. पण ते कहेवुं अयुक्त छे, कारण संयमना साधनभूत उपकरण ते परिग्रह कही शकाय नही परन्तु ' मुच्छा परिग्गहो वुत्तो '- मूर्च्छा एज परिग्रह छे. माटे वस्त्रादि उपर अममत्व भाववाळी स्त्रीने मोक्ष थवामां कांइ प्रकारे हरकत नथी इत्यादि घणो वाद शास्त्रान्तरथी जाणवो

ते अने बीजा अनेक गणधरो तथा जीवो पुरुषलिंगे सिध्ध थयाछे.

गांगेय विगेरे नपुंसकलिंगे सिद्ध थया छे. अहीं नपुंसक ते कृत्रिम नपुंसक समजाय छे कारण जाति नपुंसकने मुक्ति होय नही तेम घणे स्थले देखाय छे,

तथा करकंडु वगेरे जेओ वृषभादिक बाह्य निमित्तवडे वैराग्य पामी मोक्षे गया ते प्रत्येकबुद्धसिद्ध. अहिं करकंडुनुं संक्षिप्त स्वरूप आ प्रमाणे—चंपा नगरीना दधिवाहन राजाने चेडा राजानी पुत्री पद्मावती नामनी स्त्री हती तेना गर्भनो दोहद पूरवाने राजा राणीसहित हस्ती पर बेसी वनमां गयो ते वखते प्रथम वृष्टि थवाथी पृथ्वीमांथी गंध उछळवाने लइने मदमां आवेला हस्तिना नासवाथी राजा वडवृक्षनी वडवाइए लटकी त्यांथी पोताने नगरे आव्यो अने राणी वडवाइने पकडी शकी नही, हाथी तृषातुर थवाथी चालतां चालतां घणे दूर एक मोटा अरण्यना तलावमां पेठो राणी अवसर जोइ हाथी उपरथी उतरीने तलावने कांठे आवी अने सागारिक अणसण करी वनमां चालतां पोताना पिताना भाइ तापसे नगरमां पहोंचाडी अने कामभोगथी निर्वेद पामेली राणीए साध्वीनी पासे जइ दीक्षा लेवानी इच्छाथी गर्भ विनानो बधो पोतानो वृत्तान्त कही दीक्षा अंगीकार करी. त्यारबाद प्रसव समय नजीक आव्याथी गुरुणीने छूपी रीते पोतानी वात जणावी, अने

---

१ अहीं गांगेय नामथी भिष्मपितामहनो प्रसिद्धिछे,पण तेतो "पांडवचरित्र" विगेरेमां बारमे देवलोके गया छे, वली श्री भगवतीजीना नवमा शतकमां भंगजालादि प्रश्नो पूछनार गांगेयमुनि छे, परन्तु तेमने नपुंसकसिद्ध तरीके जणाव्या नथी माटे बीजा कोइ गांगेय होवा जोइए अथवा गांगेय (भिष्मपितामह)नी माफक कृत्रिम नपुंसक थया छतां जे मोक्षे गया ते नपुंसक सिद्ध जाणवा, आ प्रमाणे समजायछे तत्व केवलिगम्य.

एवी रीते ते पद्मावती साध्वीए पुत्रने जन्म आप्यो ते पुत्रने तेना पिताना नाम वाळी मुद्रिका पहेरावी रत्नकंबलमां वींटी स्मशानमां मूकी कोण उपाडी जाय छे ते जोता एवी रही, तेवामां स्मशानना मालीके ते पुत्रने उपाडी पोतानी स्त्रीने सोंप्यो ते चांडालनी पाछळ पाछळ जइने ते चांडालनुं घर जोइ उपाश्रये साध्वी आव्या अने गुरुणीजीने कह्युं के मने तो मरेलुं बाळक जन्म्युं हतुं, त्यारबाद कंइक बहानुं काढी निरन्तर साध्वी ते बाळकने रमाडी आवे छे. ए बाळकनुं नाम अवकर्णक राखेल छे, पण मोटो थया बाद बाळकोनी साथे राजक्रीडा करतां बाळको पासे कर मागे छे, त्यारे बाळको कहे छे के करमां अमे शुं आपीए ! त्यारे अवकर्णके कह्युं के मने कंडू (-चळ) घणी थाय छे माटे तमारा करवडे खंजवाळो तो बीजो कर नहिं मागुं ए प्रमाणे करना बदलामां खंजवालता बालकोए तेनुं नाम करकंडू पाडयुं. ते बालक अनुक्रमे एक दंडना प्रभावे राज्य पाम्यो ने आज्ञा नहिं माननार दधिवाहन (पोताना पिता) पर चडाइ करी चम्पानगरी घेरी ते वखते परस्पर महा युद्ध थयुं पद्मावती साध्वीए लडाइ बन्ध पाडी पुत्र पितानी अने पोतानी ओळखाण करावी जेथी दधिवाहने पोतानुं राज्य पण करकंडुने सोंपी अने दीक्षा लीधी हवे करकंडु राजाए गवलीना वाडामां एक सारो लक्षणवाळो नानो वाछरडो देखीने गवलीने हुकम आप्यो के आ वाछरडाने पोतानी मानुं बधुं दूध पीवा देवुं पण दोहवी नहिं, तेमज बीजी गायोनुं दूध पण पीवडाववुं; आ प्रमाणे गवलीए करवाथी ते वाछरडो महा तेजस्वी स्वरूपवाळो मदोन्मत्त बळद थयो. राजा तेने जोइ बहु आनन्द पामे छे. हवे केटलेक दिवसे ते बळद वृद्धावस्थाथी जीर्ण देहवाळो फटूंपो अने हाडमात्र कायावाळो थइ गयो ते वखते राजाए

तेने देखतां गवलीने दूध नहिं आपतो होय एम धारी ठपको आप्यो त्यारे गवलीए तेनी वृद्धावस्था जणावी, करकंडु राजाने एकदम भावना प्रगटी के शुं आटला उपायोथी पुष्ट करेली कायानी अन्ते आज दशा ! इत्यादि भावनाथी वैराग्य पामी स्वतः लोच करी देवे आपेलो मुनिवेष ग्रहण करी प्रत्येकबुद्ध एवा करकंडुराजर्षि पृथ्वीपर विहार करवा लाग्या अने अनुक्रमे मोक्षे गया ए प्रमाणे द्विमुख राजर्षिने इन्द्रध्वजनी कफोडी स्थिति देखवाथी, अने श्रीनमि राजर्षिने पोतानी स्त्रीओनां घणां कंकणोनो खडखडाट (ग्लान अवस्थामां) सहन नहिं थतां स्त्रीओए बधु कंकणो उतारी एकेक कंकण राखतां अवाज नहिं थवाथी पोताना आत्माने सुख उपजतां वैराग्य पामी दीक्षा अंगीकार करी मोक्षे गया. ए सर्व प्रत्येकबुद्धनां चरित्र विस्तरार्थीए श्री उत्तराध्ययनथी जाणवां,

तथा कंइपण बाह्य निमित्तनी अपेक्षाविना वैराग्य पामी कपिलादिवत् मोक्षे गया ते स्वयंबुद्धसिद्ध. त्यां कपिलकेवलिनुं संक्षिप्त दृष्टान्त आ प्रमाणे—कौशाम्बी नगरीमां जीतशत्रु राजाना काश्यप नामना पुरोहितनो पुत्र कपिल नामे अभण होवाथी राजाए पुरोहितना मरणबाद काश्यपना पुत्रने पुरोहित पदवी नहिं आपतां बीजाने आपी तेथी कपिलनी माताए कपिलने घणो ठपको आपी श्रावस्ति नगरीमां काश्यपना मित्र इन्द्रदत्त ब्राह्मणने त्यां अभ्यास करवा मोकल्यो त्यां, कपिल एक शेठने घेर निरन्तर जमी इन्द्रदत्त पासे अभ्यास करे छे, केटलेक दिवसे शेठने घेररहेली दासीसाथे कपिले प्रीति बांधी,परन्तु निर्धनपणाने लइने ते दासी दासीमहोत्सवना दिवसोमां शोकातुर थवाथी कपिले शोकनुं कारण पूछवाथी दासीए निर्धनपणानुं कारण दर्शावी धन

प्राप्तिनो उपाय दर्शाव्यो के आ नगरमां धन नामनो शेठ सवारमां जे प्रथम जगाडे तेने बे मासा (-५ वाल अधिक) सुवर्ण आपे छे, कपिल बीजो कोइ न जइ पहोंचे ते पेहेलां धनश्रेष्ठिने त्यां जवाने उतावळथी मध्यरात्रीए उठीनेज उतावळथी जवा लाग्यो तेथी पोलीसे पकडी राजाने सोंप्यो, त्यां प्रभाते पोतानी सत्य हकीकत जाहेर करवाथी राजाए राजी थइ " त्हारे जे जोइए ते माग" एम कहेवाथी कपिले कह्युं के हुं विचार करीने मागीश एम कही राजाए तेने विचारकरवा माटे अशोक बागमां मोकल्यो, त्यां एकान्तमां बेसी विचारे छे के बे मासा सोनुं तो एक बे दिवस चाले माटे १०० सोनैया मागुं, पण एटलेथी घर गाडी वगेरे नहिं थाय माटे १००० सोनैया मागुं, पण तेटलेथी छोकरांना विवाह वगेरे मोटा खर्च नहिं थाय माटे लाख सोनैया मागुं, परन्तु तेटलेथी दीननो उद्धार इत्यादि नहिं थाय ए प्रमाणे आगळ क्रोड-अबज अने आखुं राज्य मागवानी इच्छा थतां तुर्त ज लघुकर्मीपणाना प्रभावथी विचार पलटायो के अहो ? बे मासा सोनुं मागवाने बदले मारो लोभ क्यां सुधी पहोंची गयो ? खरेखर लोभनो पार नथी इत्यादि वैराग्य भावना प्रगटतां तुर्त जातिस्मरण प्राप्त थतां स्वतः लोच करी देवीए आपेलो मुनि वेष अंगीकार करी राजानी आगळ जइ धर्मलाभ आप्यो, राजाए कह्युं के शुं विचार कर्यो? त्यारे कपिले करोडोनी मागणीनो विचार थयो हतो परंतु लोभ अति दुःखद लागवाथी में आ निर्लोभ व्रत अंगीकार कर्युं इत्यादि कही विहार करतां अनुक्रमे केवळज्ञान पामी राजगृह नगरीना मार्गमां एक अटवीनी अंदर बळभद्रादि ५०० चोरोने प्रतिबोध आपवा गया त्यां चोरोए कह्युं के अमने नाचतां आवडे छे ? केवळीए हा कही पण मृदंगादि वगाडवानुं ५००मां-

रोप कबुल करवाथी कपिल केवली 'अधुवे असासयंमि' इत्यादि उपदेशक ध्रुवपदो गानापूर्वक नाच करवा लाग्या, त्यां दरेक ध्रुवपदे थोडा थोडा प्रतिबोध पामतां अनुक्रमे ५०० चोरोने दीक्षा आपी. एप्रमाणे कपिलकेवलि जातिस्मरणथी स्वयंबुद्ध सिद्ध कहेवाय.

अवतरण— आगाथामां बुद्धबोधितसिद्ध वगेरेनां दृष्टान्त दर्शावेछे.

॥ मूळ गाथा ५९ मी; ॥

तह बुध्धबोहि गुरुबो-हिया इगसमय इगसिध्धा य
इगसमएऽवि अणेगा, सिध्धा तेऽणेग सिध्धा य ॥५

॥ संस्कृतानुवादः ॥

तथा बुद्धबोधिता गुरुबोधिता एकसमये एकसिद्धाश्च ॥
एकसमयेऽप्यनेकाः सिद्धास्तेऽनेकसिद्धाश्च ॥ ५९ ॥

॥शब्दार्थः॥

तह–तथा	इगसमए–एक समयमां
बुद्धबोहिय–बुद्धबोधितसिद्ध	अवि—पण
गुरुबोहिया–गुरुथासे बोधपामेला	अणेगा–अनेक
इगसमय–एक समयमां	सिद्धा–सिद्ध थया
एगसिद्धा–एक सिद्ध थया ते (एक सिद्ध)	ते—ते
	अणेगसिद्धा–अनेक सिद्धा

गाथार्थः—तथा (वळी) गुरुथासे बोध पामेला (मोक्ष गया होय) ते बुद्धबोधितसिद्ध, एक समयमां एक सिद्ध थया ते

---

१ श्री उत्तराध्ययनना आठमा अध्ययननी गाथाओ.

एकसिध्ध, अने एक समयमां पण अनेक सिध्ध थया ते अनेक सिध्ध कहेवाय.

विस्तरार्थः—गुरुए उपदेश आप्याथी बोध पामेला ते श्री जंबूस्वामि वगेरे अनेक जीवो बुध्धबोधित सिध्ध (-बुध्ध एटले गुरु आदिकथी बोधित एटले बोध पामेल) कहेवाय.

तथा एक समयमां एकलाजमोक्षे गया होय ते श्रीमहावीरस्वामि वगेरे एकसिध्ध कहेवाय कारणके श्रीमहावीरस्वामि जे समये मोक्षे गया ते समये तेमनी साथे कोइपण केवलि मोक्षे गया नथी. तथा एक समयमां अनेक सिद्ध थया होय तेवा श्रीऋषभदेव विगेरे अनेकसिद्ध कहेवाय, कारणके श्रीऋषभदेव जे समये मोक्षे गया छे ते समये पोताना ९९ पुत्र अने ८ भरतचक्रिना पुत्र मळी १०८ जीवो मोक्षे गया छे,

आ प्रमाणे पंदरभेदे मोक्ष पामनाराना दृष्टान्ते बताव्या आ नवतत्त्वनी यथार्थ सद्दहणा करनार जीव सम्यक्त्व पामी परम्पराए सिद्धिपद संपादन करे छे,

॥ इति श्रीमोक्षत्त्वविस्तरार्थः ॥

॥ तत्समाप्तौ च ॥

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः संपूर्णः ॥

॥ मोक्षतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

श्री नवतत्त्वभाष्यादि ग्रन्थोमां सिध्ध परमात्माओने १२ अनुयोगद्वारे वर्णवेला छे, ते आ प्रमाणे—

१ क्षेत्रद्वारं—४५ लाख योजन प्रमाण मनुष्यक्षेत्रमां ज सिध्ध थाय, तेमां पण संहरणथी संपूर्ण मनुष्यक्षेत्रमां, अने जन्मथी १५ कर्मभूमिओमां सिध्ध थाय, त्यां संहरणमुक्ति ऊर्ध्व लोकमां द्वीपोमां ने समुद्रोमां पण छे, अने असंहरण (-जन्म) मोक्ष तिर्यग्ने अधोलोकमांज होय छे.

२ कालद्वारं—भरत अने ऐरवत क्षेत्रमां उत्सर्पिणी कालना त्रीजा अने चोथा आराना जन्मेला त्रीजा चोथा आरामां मोक्षे जाय, अने अवसर्पिणी कालना त्रीजा चोथा ने पांचमा आरामां मोक्षे जाय पण तेमां पांचमा आरानो जन्मेल जीव पांचमा आरामां मोक्षे न जाय पण चोथा आरानो जन्मेल पांचमे आरे मोक्षे जाय पुनः उत्सर्पिणीना १ ला बीजा पांचमाने छट्ठा आरामां तथा अव० ना पेला-बीजा-ने छट्ठा आरामां संहरणन्याय मोक्षे जाय. अने महाविदेहमां सदाकाळ मोक्षे जाय.

३ गतिद्वारं-चार गतिमांथी मनुष्यगतिवाळा ज मोक्षेजाय.

४ लिंग—त्रणे लिंगे मोक्षे जाय. अने द्रव्यथी स्वलिंगे-अन्यलिंगे-ने गृहस्थलिंगमां पण मोक्षे जाय (परन्तु भावलिंग ते क्षायिक सम्यक्त्वादि ने तो दरेकनुं एक सरखुं ज जाणवुं.)

५ तीर्थद्वारं—तीर्थ प्रवर्त्या पेहेलां, तीर्थ प्रवर्तवां, ने तीर्थनो विच्छेद थये आंतराओमां, ए त्रणे रीते मोक्षे जाय,

६ चारित्रद्वारं—यथाख्यात चारित्रवाळा (पूर्वभाविनयनी अपेक्षाए) मोक्षे जाय, (पण वर्तमाननयनी अपेक्षाए सिध्धने चारित्र न होय,)

७ बुद्धद्वार—तीर्थंकर अने अतीर्थंकर ए बन्ने प्रकारना स्वयंबुद्ध, तथा बाह्य निमित्तमात्रथी वैराग्य पामेला प्रत्येकबुद्ध, तथा गुरु आदिकना उपदेशथी बोध पामेला ए त्रणे मोक्षे जाय,

८ ज्ञानद्वार—केवलज्ञानी मोक्षे जाय शेष चार ज्ञानी नहिं.

९ अवगाहनाद्वार—तीर्थंकर उ० थी ५०० धनुष्यकायावाळा ने जघ० थी ७ हाथकायावाळा मोक्षे जाय, अने सामान्यकेवलि उ० थी धनुष्यपृथक्त्व अधिक ५०० धनुष्य कायावाळा, अने जघ० थी वामन एवा कुर्मापुत्रादिवत् बे हाथनी कायावाळा मोक्षे जाय.

१० अन्तर—सिध्धपणे उत्पन्न थवानो विरह काळ जघ० थी १ समय अने उत्कृष्ट ६ मास (सुधी कोई मोक्षे ज न जाय.) तथा अनन्तर पणे (लागलागट) मोक्षे जाय तो जघ०थी २समय सुधी अने उ० थी ८ समय सुधी (मोक्ष चालु रहे तदनन्तर अवश्य १ समय पण अन्तर पडे.)

११ संख्याद्वारं—१ समयमां जघ० थी १ अने उत्कृ० थी १०८ जीव मोक्षे जाय.

१२ अल्पबहुत्वं—श्रीसिध्धपरमात्माओनुं अल्पबहुत्व क्षेत्रादि अनेक भेदे छे ते आ प्रमाणे—

संहरणथी[1] सिध्ध थयेला अल्प, तेथी जन्मक्षेत्रे सिध्ध थये-

१ संहरण बे प्रकारे छे, त्यां विद्याचारण-जंघाचारण अ-

ला असंख्यगुणा छे. (अहिंथी दरेक अल्पबहुत्व सिध्ध थयेला जीवो आश्रयि जाणवुं, पण सिध्ध थता जीवो आश्रयि नहिं.]

ऊर्ध्व लोकमां सिध्ध थयेला अल्प, तेथी अधोलोके असंख्य गुण, ने तेथी पण तिर्य्लोके असंख्यगुण.

समुद्रमां अल्प, द्वीपोमां असंख्यगुण,

उत्सर्पिणीमां अल्प, तेथी अवस० मां विशेषाधिक, तेथी पण उत्स० अवस० रहित काळमां (महावि० मां)-असंख्यगुण.

तिर्यंचगतिथी आवीने सिध्ध थयेला अल्प, तेथी मनुष्यगति मांथी नारक गतिमांथी–अने देवगतिमांथी आवीने सिध्ध थयेला अनुक्रमे संख्यगुण.

नपुं० लिंगे अल्प, तेथी स्त्रीलिंगे संख्यातगुण, ने तेथी पण पुरुषलिंगे सिध्ध थयेला संख्यातगुणा,

गृहस्थसिध्ध अल्प, तेथी अन्यलिंग सिध्ध संख्यातगुणा, अने तेथी स्वलिंगसिध्ध संख्यातगुणा,

अतीर्थसिद्ध अल्प, तेथी तीर्थसिध्ध असंख्यगुणा,

पांच चारित्र स्पर्शी सिध्ध अल्प, सामायिक वर्जवारचारित्र स्पर्शी सिध्ध संख्यातगुणा, तेथी परिहा० वर्जवारचारित्रस्पर्शीसिद्ध संख्यात

ने विद्याधरो जे पोतानी इच्छाए अन्यस्थाने जाय छे ते स्वकृत संहरण अने चारण या विद्याधर या कोइ देव अनुकम्पा बुद्धिवडे अथवा वैरभाव वडे उपाडीने बीजे स्थानके मूके ते परकृत संहरण, आ परकृतसंहरण सर्वनुं होतुं नथी कह्यु छे के.—

> समणि अवगयवेयं, परिहारपुलागमप्पमत्तं च ।
> चोद्दसपुव्वि आहारगं च नवि कोवि संहरइ ॥ १ ॥

अर्थः—साध्वीने, अवेदीने, परिहारविशुद्धि चारित्रीने, पुलाक लब्धिवाळाने, अप्रमत्तने, चौदपूर्वीने, अने आहारकलब्धिवाळाने कोइपण संहरतुं नथी. बीजाओनुं संहरण थाय छे,

गुणा,तेथी सामा० परिहा० यथा०त्रणचारित्र स्पर्शी :सिद्ध संख्यात गुणा, तेथी छेदो०परिहा०यथा०त्रण चारित्र स्पर्शी सिद्धसंख्यातगुणा

प्रत्येकबुद्धसिद्ध अल्प, तेथी बुद्धबोधित असं० गुणा, (गंधहस्तिटीकामां संख्यगुण कह्या छे,)-(अहिं स्वयंबुद्धनुं अल्पबहुत्व दर्शाव्युं नथी तेनुं कारण श्रीबहुश्रुत जाणे.)

मतिश्रुतज्ञाने सिद्ध थयेला अल्प, तेथी चारज्ञाने सिद्ध थयेला संख्यगुण, तेथी प्रथमना त्रण ज्ञाने सिद्ध थयेल संख्यगुणा (अहिं त्रणज्ञान मति-श्रुत-अव०, अने मति-श्रुत-मनःप० एम बे प्रकारे छे तेनुं अल्पबहुत्व कर्युं नथी पण श्रीसिद्धप्राभृतमां आ प्रमाणे छे के—द्विज्ञान पश्चात्कृतसिद्ध अल्प, तेथी चातुर्ज्ञान पश्चात्कृत असं० गुणा, तेथी त्रिज्ञानपश्चात्कृतसिद्ध संख्यगुणा, एमां मति-श्रुत-अवधि पश्चात्कृत अल्प, मतिश्रुत पश्चात्कृतसिद्ध तेथी संख्यगुण, मनः प० चतुष्कपर्यन्त पश्चात्कृतसिद्ध असं० गुणा, अहिं अल्पबहुत्वना विसंवादनु तत्त्व श्रीबहुश्रुतगम्य.)

जघन्य अवगाहनाए सिद्ध अल्प, उत्कृ० अवगा० सिद्ध असं० गुणा, तेथी मध्यम अवगाहना सिद्ध असं० गुणा,

निरन्तर आठ समय सुधी सिद्ध थयेला अल्प, ने तेथी ७ न्यून न्यून समयो सुधी निरन्तर सिद्ध थयेला अनुक्रमे संख्यातगुणा

उत्कृष्ट अन्तरे सिद्ध थयेला अल्प, तेथी जघ० अन्तरे सिद्ध थयेला संख्यातगुणा, तेथी मध्यम अन्तरे सिद्ध थयेला असंख्यगुणा (अहिं अन्तर ज० १ समय ने उ० ६ मासरूप)

१ अर्थात् मतिश्रुतज्ञान पाम्या बाद अवधि मनःपर्यव पाम्या विनाज केवळज्ञान पामीने सिद्ध थयेला.

२ अर्थात् मेने केवळज्ञान उत्पन्न थया पहेलां मतिश्रुत ज्ञान ज हतां (पण अव० मनःप० न होतां) पर्वां.

एक समये १०८ सिद्ध थयेला अल्प, तेथी पश्चानुपूर्वीए ५० सुधी सिद्ध थयेला अनन्तगुणा, त्यांथी पुनः पश्चानुपूर्वीए २५ सुधी सिद्ध थयेला असंख्यगुणा, त्यांथी पुनः पश्चानुपूर्वीए १ सुधी सिद्ध थयेला संख्यातगुणा (अनुक्रमे एकेक हीन संख्यामां) जाणवा.

मोक्षतत्त्वना भेदो गति-इंद्रिय-कायमार्गणामां क्यां क्यां लाभे ते स्वरूप.

नरकगतिमां ०--पूर्व प्रज्ञापनीय भावे (चरमशरीरनी अपेक्षाये) नरकगतिमां मोक्षतत्त्वना एक पण भेद न होय कारणके नरकगतिमांथी कोइ जीव मोक्ष पामे नहि.

तिर्यचगतिमां ०---नरकगतिवत्

देवगतिमां ०—नरकगतिवत्

मनुष्यगतिमां ९—पूर्वप्रज्ञापनीय भावे मनुष्यगतिमां मोक्षना ९ भेद होय; कारणके मनुष्यगतिमांथीज जीवो मोक्ष पामी शके छे.

एकेन्द्रियथी चतुरिं० मां ०—नरकगतिवत्

पंचेन्द्रियमां ९—मनुष्यगतिवत्

पृथ्व्यादि ५ कायमां—नरकगतिवत्

त्रसकायमां ९—मनुष्यगतिवत्

॥ समयसिद्धसंख्यायन्त्रकम् ॥

ऊर्ध्वलोके	४	उत्स० तृतीयारे	१०८
अधोलोके	२०-२२-४०	,, १-२-४-५-६ ,,	१०
तिर्यग्लोके	१०८	अव० तुर्यारे	१०८
समुद्रे	२	" पञ्चमारे	२०
अन्यजलाशये	३	" १-२-३-६	१०
प्रतिविजयं	२०	नरलिंगजातनरलिङ्गे	१०८
नन्दनवने	४	शेषाष्टभङ्गेषु	१०
पंडकवने	२	स्वलिङ्गे	१०८
प्रतिकर्मभूमि	१०८	अन्यलिङ्गे	१०
प्रत्यकर्मभूमि	१०	गृहिलिङ्गे	४
५०० धनुरवगाहे	२	पुरुषलिङ्गे	१०८
द्विहस्तावगाहे	४	स्त्री लिङ्गे	२०
मध्यमावगाहे	१०८	नपुंसकलिङ्गे	१०

॥ इति श्री मोक्षतत्त्वपरिशिष्टम् ॥

॥ श्रीनवतत्त्वविस्तरार्थः

परिशिष्टयन्त्रादिपरिवृतः परिपूर्णः ॥

॥ ओं अर्हं नमः ॥

नमः श्रीतपोगच्छाधिराजेभ्यः सूरिचक्र-
सार्वभौमेभ्यः श्रीविजयनेमिसूरिभ्यः ॥

॥ प्रक्षिप्तगाथापरिकरितं ॥

॥ श्रीनवतत्त्वप्रकरणम् ॥

१. मूलमात्रम् ॥

जीवाऽजीवा पुण्णं, पावासवसंवरो अ निज्जरणा ॥
बंधो मुक्खो अ तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥१॥

चउदस चउदस बाया–लीसा बासीय हुंति बायाला
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ॥ २ ॥

(एगविह दुविह तिविहा, चउव्विहा पंचछव्विहा जीवा ।
चेयण तस इयरेहिं, वेय गइ करण काएहिं ॥१॥) ॥ ३ ॥

एगिंदिअसहुमिअरा, संनिअरपणिंदिया य सबितिः
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जिअट्ठाणा ॥३॥

(नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥२॥) ॥५॥

(आहारसरीरइंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलासन्निसन्नीणं ॥३॥) ६

(पणिंदियत्तिबलूसा-साउदसपाण चऊ छ सग अट्ठ ।
इगदुति चउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव दस य ॥४॥) ७

धम्माऽधम्मागासा, तियतियभेया तहेव अध्धा य।
खंधा देसपएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥४॥

धम्माधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥५॥

अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा
खंधा देसपएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥६॥ १०

(सद्दंधयार उज्जोय, पभाछायातवेइय ।
वण्णगंधरसाफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ ५ ॥) ११ ॥

समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मासवरिसा य
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणीकालो ७॥१

(एगाकोडी सत्तसट्ठिलक्खा, सत्तहत्तरी सहस्सा य ।
दोयसया सोलहिया, आवलिआ इगमुहुत्तंमि ॥६॥) ॥१३

(तिन्निसहस्सा सत्तय सयाणि, तिहुत्तरं च उस्सासा ।
)मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥७) ॥१४॥

(परिणामि जीवमुत्तं, सपएसा एग खित्तकिरियाय ।
णिच्चं कारणकत्ता, सव्वगयमियरेहि अप्पवेसे ।८॥) १५ ॥
(दुण्णि य एगं एगं, पंचत्ति य एग दुण्णि चउरो य ।
पंच य एगं एगं, एएसि एय विण्णेयं ॥ ९ ॥) ॥ १६ ॥
सा उच्चगोअमणुदुग-सुरदुगपंचिंदिजाइपणदेहा ।
आइतितणुवंगा, आइमसंघयणसंठाणा ॥८॥१७॥
वन्नचउक्कागुरुलहु, परघाऊसास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइनिमिणतसदस,सुरनरतिरिआउतित्थयरं९॥१८
(तस बायर पज्जत्तं, पत्तेयथिरं सुभं च सुभगं च ।
सुसर आएज्जजसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥ १० ॥) १९ ॥
नाणंतरायदसगं, नव बीए नीअसायमिच्छत्तं ।
थावरदस नरयतिगं, कसायपणवीस तिरिअदुगं१०॥२०
इगबितिचउजाईओ, कुखगइउवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्नचउ, अपढमसंघयणसंठाणा ॥११॥२१॥
(चक्खुदिट्ठि अचक्खु, सेसिंदिअ ओहिकेवलेहिं च ।
दंसणमिह सामन्नं, तस्सावरणं तयं चउहा ॥११॥) २२॥
(सुहपडिबोहा निद्दा, निद्दानिद्दा य दुक्खपडिबोहा ।
पयला ठिओवविट्ठस्स, पयलपयला य चंकमओ ॥१२॥)२३
(दिणचिंतिअत्थकरणी, थीणद्धी अद्धचक्किअद्धबला ।
एवं जिणेहि भणियं, वित्तिसमं दंसणावरणं ॥१३॥) २४॥
[जावजीववरिसचउमास-पक्खगा निरयतिरियनर अमरा
सम्माणुसव्वविरइ-अहखायचरित्तघायकरा ॥१४॥] २५

एगिंदिअसहुमिअरा, संनिअरपणिंदिया य सवितिच
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जिअट्ठाणा ॥३॥४

(नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥२॥) ॥५॥

(आहारसरीरइंदिय, पज्जत्ती आणपाणभासमणे।
चउ पंच पंच छप्पिय, इगविगलासन्निसन्नीणं ॥३॥) ६ ॥

(पणिंदियत्तिबलूसा-साउदसपाण चऊ छ सग अट्ठ।
इगदुति चउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव दस य ॥४॥) ७ ॥

धम्माऽधम्मागासा, तियतियभेया तहेव अध्धा य।
खंधा देसपएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ॥४॥८

धम्माधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अजीवा।
चलणसहावो धम्मो, थिरसंठाणो अहम्मो य ॥५॥९

अवगाहो आगासं, पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा।
खंधा देसपएसा, परमाणू चेव नायव्वा ॥६॥ १० ॥

(सद्दंधयार उज्जोय, पभाछायातवेइय।
वन्नगंधरसाफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ ५ ॥) ११ ॥

समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मासवरिसा य।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणी सप्पिणीकालो७॥१२

(एगाकोडी सत्तसट्ठिलक्खा, सत्तहुत्तरी सहस्सा य।
दोयसया सोलहिया, आयलिआ इगमुहुत्तंमि ॥६॥) ॥१३॥

(तिन्निसहस्सा सत्तय सयाणि, तिहुत्तरं च उस्सासा।
एग(म)मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥७) ॥१४॥

काइय अहिगरणिया, पाउसिआ पारितावणी किरिआ
पाणाइवायारंभिअ, परिग्गहिआ मायवत्ती अ १३॥३७
मिच्छादंसणवत्ती,अपच्चक्खाणा य दिट्ठि पुट्ठी अ ।
पाडुच्चिअसामंतो–वणीअ नेसत्थिसाहत्थी ॥१४॥३८॥
आणवणि विआरणिआ, अणभोगा अणवकंखपच्चइआ
अन्नापओगसमुदाण–पिज्जदोसेरियावहिया ॥१५॥ ३९
समिइ गुत्ती परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पणतिगदुवीसदसबार–पंचभेएहिं सगवन्ना ॥१६॥४०॥
(इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिईसु य ।
मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती तहेव य ॥ २५ ॥) ४१
(खुहा पिवासा सीउण्हं, दंसाचेलारइत्थीओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोसवहजायणा ॥२६) ४२
(अलाभरोगतणफासा, मलसक्कारपरीसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इय बावीस परीसहा ॥२७॥) ४३॥
(खन्तीमद्दवअज्जव, मुत्ती तवसंजमे अ बोद्धव्वे ।
सच्चं सोयं आकिं–चणं च बंभं च जइधम्मो ॥२८) ४४॥
(पढममणिच्चमसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह निज्जरा नवमी ॥२९॥४५॥
(लोगसहावो बोही, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एयाओ भावणाओ, भावेयव्वा पयत्तेणं ॥ ३० ॥)४६॥
(सामाइयत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीयं ।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३१ ॥)४७ ॥

(जलरेणुपुढवीपव्वय–राईसरिसो चउविहो कोहो ।
तिणिसलयाकट्ठट्ठिय–सेलत्थंभोवमो माणो ॥१५॥) २६ ॥

(मायावलेहि गोमुत्ति, मिंढसिंग घणवंसमूलसमा ।
लोहो हलिद्दखंजण–कद्दमकिमिरागसारिच्छो ॥१६॥) २७

(जस्सुदया होइ जिए, हास रइ अरई सोग भय कुच्छा ।
सनिमित्तमन्नहा वा तं इह हासाई मोहणिअं ॥१७॥) २८॥

(पुरिसित्थीतदुभयं पइ अहिलासो जव्वसा हवइ सो उ ।
थीनरनपुंवेउदओ, फुंफुमतणनगरदाहसमो ॥ १८) ॥२९॥

(संघयणमट्ठिनिचओ, तं छद्धा वज्जरिसहनारायं ।
तह रिसहनारायं, नारायं अद्धनारायं ॥ १९ ॥) ३० ॥

(कीलिअ छेवट्ठं इह रिसहो पट्टो अ कीलिआ वज्जं ।
उभओ मक्कडबंधो, नारायं इममुरालंगे ॥२०) ॥ ३१ ॥

(समचउरंसे१ निग्गोह२, साइ३ वामण४ खुज्ज५ हुंडे अ६ ।
जीवाण छ संठाणा, सव्वत्थ सुलक्खणं पढमं २१) ॥३२॥

नाहिइ उवरि बीअं, तइअमहोपिट्ठिउअरउरवज्जं ।
सिरगीवपाणिपाए, सुलक्खणं तं चउत्थं तु ॥२२) ॥ ३३ ॥

(विवरीअं पंचमगं, सव्वत्थालक्खणं भवे छट्ठं ।
संठाणविहा भणिया, जिणिंदवरवीयरागेहिं ॥२३) ३४ ॥

(थावर सुहुम अपज्जं साहारणमथिरअसुभदुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्जजसं, थावरदसगं विवज्जत्थं ॥ २४ ॥) ३५ ॥

इंदियकसायअव्वय–जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा ।
किरियाओ पणवीसं,इमा उ ताओ अणुक्कमसो॥३॥३६

मायणवज्जणया, एएसिं ता य भत्तिबहुमाणो
णस्स य संजलणं, होइ अणासायणा विणओ ॥४४)६०
मार्इआइचरणस्स, सद्दहाणं तहेव काएणं ।
फासणा परूवण—मह पुरओ भव्वसत्ताणं ॥४५)॥६१॥
णवयकाइअविणओ, आयरिआइंण सव्वकालंपि ।
कुसलमणाईरोहो, कुसलाण उदीरणं तह य ॥४६) ६२॥
अब्भासत्थण छंदाणु—वत्तणं कयनुपडिकई ।
तह य कारिअमित्तकरणं, दुक्खत्तगवेसणा तह य ॥४७) ६३
तह देसकालजाणण, सव्वत्थेसु तहाणुकूलत्तं ।
रोगोवयारविणओ, सत्तविहो होइ विण्णेओ ॥४८) ६४॥
(आयरिय उवज्झाए, थेरतवस्सीगिलाणसेहाण ।
साहम्मिअ कुलगणसं -घवेआवच्चं हवइ दसहा ॥४९)६५॥
(आयरियउवज्झाये, तवस्सिसेहे गिलाणसाहूसु ।
समणुन्नसंघकुलगण—वेयावच्चं हवइ दसहा ॥५०॥)६६॥
(वायणा पुच्छणा चेव, तहा य परिअट्टणा ।
अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ होइ पंचहा ॥ ५१॥)६७ ॥
(झाणं चउव्विहं खलु, अट्टं रुद्दं तहेव धम्मं च ।
सुक्कं पुण पत्तेयं, चउव्विहं चेव नायव्वं ॥ ५२ ॥)६८ ॥
(पढमं अट्टज्झाणं, बीअं रुद्दं इमे भवफलाइं ।
तइअं धम्मं तुरिअं, सुक्कं दो मुक्खहेउं ॥ ५३ ॥) ६९॥
(दव्वे गणदेहोवहि, अइरित्ता सुरूभत्तपाणाणं ॥
उस्सग्गो भावे अह, कासायभवकम्म उस्सग्गो ॥५४॥)७०॥
बारसविहं तवो नि—ज्जरा य बंधो अ चउविगप्पो य ।
पयइ ठिइअणुभाग-प्पएसभेएहिं नायव्वो ॥१७॥७१॥

(तत्तो अ अक्खायं, खायं सव्वंमि जीवलोगंमि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरंठाणं ॥३२) ४८॥

(अणसणमूणोयरिया, वित्तिसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसोसंलीण—पायपञ्झोतव होइ ॥३३॥) ४९।

(पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गोवि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥३४॥)५०॥

[आलोयण १ पडिक्कमणो २–भय ३ विवेग ४ मुसग्गो ५
तवछेय७मूल८अणव–ट्ठया य ९ पारंचिए १० चेव
॥३५॥] ॥५१॥

(भत्ती१ बहुमाणो२ वन्न–जणणं३ भासणमवन्नवायस्स४ ।
आसायणपरिहाणी५, विणओ संखेवओ एसो ॥३६॥ ५२

(नाणस्स दंसणस्स य, चरणस्स य तह तिविहजोगस्स
विणओ लोगुवयारो, सत्तविहो विसयभेएणं ॥३७॥)५३।

(भत्ती तह बहुमाणो, तद्दिट्ठत्थाण सम्मभावणयं ।
विहिगहणब्भासो वि अ, एसो विणओ जिणुद्दिट्ठो ३८)५४

सुस्सूसणा अणासा–यणा य विणओ अ दंसणे दुविहो ।
दंसणगुणाहिएसु, कज्जई सुस्सूसणा विणओ ॥३९॥/५५॥

[सक्कारब्भुट्ठाणे, सम्माणासणपरिग्गहे तह य ।
आसण अणुप्पयाणं, किइकम्मं अंजलीगहो अ ॥४०॥]५६।

इन्तस्स हिगच्छणया, ठिअस्स तह पज्जुवासणा भणिआ
गच्छंताणुव्वयणं, एसो सुस्सूसणाविणओ ॥४१॥) ५७ ॥

तित्थयरधम्मआयरिय--वायगे थेरकुलगणे संघे
संभोइअ किरियाए, मइनाणाईण य तहेव ॥४२॥) ५८॥

राया दाणाइ, न कुणइ भंडारिए विकूलंमि।
येणं जीवो, कम्मं तं अंतरायंति ॥६५॥) ॥ ८२ ॥

(इति प्रकृतिबन्धः)

लि अ दंसणावरणे, वेअणिए चेव अंतराए य।
कोडाकोडी, अयराणं ठिइ य उक्कोसा ॥६७॥)॥८४॥
तरि कोडाकोडी. मोहणीए वीस नामगोएसु।
तीसं अयराइं, आवट्ठिइबंध उक्कोसा ॥ ६८ ॥) ॥८५॥
रस मुहुत्त जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नामगोएसु।
ाणंतमुहुत्तं. लहुट्ठिइं स नायव्वा ॥ ६९ ॥) ॥८६॥

(इति स्थितिबन्धः)

तिव्वो असुहसुहाणं, संकेसविसोहिओ विवज्जयओ।
दरसो गिरिमहिरय-जलरेहासरिसकसाएहिं ॥७०॥)८७॥
चउठाणाइं असुहो, सुहन्नहा विग्घदेस आवरणा।
मसंजलणिगदुति चउ-ठाणरसा सेस दुगमाइं ॥७१] ८८
निबुच्छुरसो सहजो, दुति चउभागकढि इक्कभागंतो।
गठाणाइं असुहो. असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥७२॥) ८९॥

(इति रसबन्धः)

(अतिमचउफासदुगंध—पंचवन्नरसकम्मखंधदलं।
सव्वजिअणंतगुणरस—अणुजुत्तमणंतयपएसं ॥ ७३ ॥)९० ॥
[एगपएसोगाढे, नियसव्वपएसओ गहेइ जीवो।
थोवो आउतदंसो. नामे गोए समो अहिओ ॥ ७४ ॥) ९१॥
(विग्घावरणे मोहे, सव्वोवरि वेअणीइ जेणप्पे।
तस्स फुडत्तं न हवा, ठिईविसेसेण सेसाणं ॥ ७५ ॥) ९२

(पयइठिइरसपएसा, तं चउहा मोयगस्स दिट्ठंता ।
मूलपगइट्ठ उत्तर—पगई अडवन्नसयभेयं ॥५४) ॥ ७२ ॥

(इहनाणदंसणावरण–वेय मोहाउनामगोयाणि ।
विग्घं च पण नव दु अ–ट्ठवीस चउ तिसय दुपणविहं५५)७३

(पड१पडिहार२सि३मज्ज४–हड५चित्त६कुलाल७भंडगा-
रीणं ८ ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ५६)७४

(सरउग्गयससिनिम्मल–यरस्स जीवस्स छायणं जमिह ।
नाणावरणं कम्मं, पडोवमं होइ एवं तु ॥ ५७ ॥) ७५ ॥

(दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।
तं पडिहारसमाणं, दंसणावरणं भवे जीवे ॥ ५८) ७६ ॥

(महुलित्तनिसिअकरवाल–धार जीहाइ जारिसं लिहणं ।
तारिसयं वेयणिअं, सुहदुहउप्पायसमुयाणं ॥५९॥)॥७७॥

(जह मज्जपाणमूढो, लोए पुरिसो परवसो होइ ।
तह मोहेण विमूढो, जीवो अ परवसो होइ ॥६०) ७८ ॥

(दुक्खं न देइ आऊ नवि अ सुहं देइ चउसु वि गइसु ।
दुक्खसुहाणाहारं, धरेइ देहट्ठिअं जीयं ॥६१॥) ॥ ७९ ॥

(जह चित्तयरो निउणो, अणेगरूवाइं कुणइ रूवाइं ।
सोहणमसोहणाइं, चु(चु)क्खमचु(चु)क्खेहिं वण्णेहिं६२)८०

(तह नामं पि हु कम्मं, अणेगरूवाइं कुणइ जीवस्स ।
सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोअस्स ॥६३॥) ॥८१॥

(जह कुंभारो भंडाइं, कुणइ पुज्जेअराइं लोअस्स ।
अ गोत्तं कुणइ जीअं, लोए पुज्जेअरावत्थं ॥६४)॥८२ ॥

इ बुद्धवोहियुक्को-हिया इगसमय एगसिद्धा य ।
समए वि अणेगा, सिद्धा तेणेगसिद्धा य ॥९७) ॥१२५॥

इआइ होइ पुच्छा, जिनान मग्गंमि उत्तरं तइया ।
कस्स निगोयस्स, अणंतभागो य सिद्धिगओ ॥९८)॥१२६॥

ोए असंखजोयण-माने पइजोयणमंगुलसंमखा ।
तं असंखअंसा, पइ अंनमसंखया गोला ॥९९॥)॥१२७॥
गोलो असंखनिगोओ, सोणंतजिओ जिअं पइ पएसा ।
संखे पइपएसे, कम्माणं वग्गणाणंता ॥१००॥) ॥१२८॥

पइवग्गणमणंता, अणू पइअणु अणंतपज्जाया ।
वं लोगसरूवं, भाविज्जइ तहत्ति जिणवुत्तं ॥१०१) ॥१२९॥

पुढवाईया सत्ता, सव्वे रुक्खा हवंति भूआवि ।
पाना पिनिचउरिंदी, चउहा पंचिंदिया जीवा ॥१०२॥१३०

(सत्तविराहणपावं, अणंतगुणियं च एगभूअस्स ।
भूअस्स असंखगुणं, एवं एगस्स पाणस्स ॥१०३॥) १३१॥
(वेइंदियतेइंदिय—चउरिंदिय तहेव पंचिंदी ।
टक्खं सहस्सं तह सय—गुणं च पावं मुणेयव्वं ॥१०४)१३२

(जीवो१संवर२निज्जर३मुक्खो४चत्तारि हुंति अरूवी ।
रूवी पंघासवपुन्न—पावा मिस्सो अजीवो य ॥१०५॥(१३३
(धम्माधम्मागासा, तियतिय अद्धा अजीवदसगा य ।
मत्तावधं संवर-निज्जरदुदस मुत्ति नवगा य ॥१०६)१३४॥
(अद्धासी य अरूवी, संपइ उ भणामि जे य रूवीणं ।
परमाणुदेसपएसा, खंधा चउ अजीवरूवीणं ॥१०७)॥१३५
(जीवे दस चउ दु चउ, यासी थायान हुंति चत्तारि ।
सय अट्ठासी य रूवी, दुसय छसत्त नवनवे ॥ १०८) १३६

(हेया बंधासवपुण्णपावा, जीवाजीवा य हुंति विन्नेया ।
संवरनिज्जरमुक्खो, हवंति एए उवाएया ॥१०९॥) ॥१३७॥

(अवियाणओ पयत्थे, सद्दहणं तेसु केरिसं होइ ? ।
तम्हा वित्थरनाणे, सम्मत्तमणुत्तरं होइ ॥ ११० ॥) १३८॥

(वित्थरनाणावेक्खं, अन्नाणं एत्थ होइ दट्ठव्वं ।
तेणेह सद्दहंते, आयाणमाणेवि सम्मत्तं ॥ १११ ॥) १३९ ॥

(एत्तोच्चिय निद्दिट्ठा, मासतुसप्पभिइओ गुरुदिट्ठित्ति ।
एत्तोच्चिय चारित्ती, एत्तोच्चिय सिद्धिगामित्ति ॥११२(१४०

(सम्मं मोक्खबीयं, तं पुण भूयत्थसद्दहणरूवं ।
पसमाइलिंगगम्मं, सुहायपरिणामरूवं तु ॥११३॥) ॥१४१॥

॥ श्रीचिरन्तनाचार्यविरचितं प्रक्षिप्त-
गाथापरिकरितं
श्रीनवतत्त्वप्रकरणं संपूर्णम् ॥

अद्यावधि मुद्रिता ग्रन्थाः

एते ग्रन्थास्तद्व्याभिसाधुसाध्वीनामध्ययनेच्छूनामर्पणायान्येषामपि उपदीक्रियन्ते.

१ तत्त्वार्थसूत्रं—(पञ्चाध्यायीमयः प्रथमो विभागः) अनूना-पूर्वदशपूर्वधरवाचकशेखरैः उमास्वातिपादप्रणीतैः, स-र्वतन्त्रस्वतन्त्रसिद्धसेनगणिविरचितवृत्तिसमलङ्कृतः

२ अनेकान्तजयपताका—अपूर्वोऽयं स्याद्वादग्रन्थमुद्राप्यारिसिद्ध-चिरं चतुर्दशशतप्रकरणसूत्रधारश्रीमद्धरिभद्रसूरिपा-दैर्विनिर्मिता

३ अष्टकप्रकरणं सटीकम्—श्रीमद्धरिभद्रसूरिपादप्रणीतं श्रीम-ज्जिनेश्वरसूरिप्रणीतवृत्तिविभूषितम्

४ प्रमाणपरीक्षा सटीका—नयादिभूतिवाद श्रीमद्भुवनदेव सूरि पूर्वाचार्यवर्त्तिश्रीपूर्णिमागच्छसूरिविनिर्मितम्.

५ प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः (स्याद्वादरत्नाकराभिधवृहद्वृ-त्तिविभूषितः)—वादिदेवसूरिविनिर्मितः

६ सिद्धहैमशब्दानुशासनम्—कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यस्व-मकर्दिस्वोपज्ञबृहद्वृत्तिविभूषितं. ऐ०... धातुपाठ... नामसहितम्.

७ प्रमाणमीमांसा सटीका—श्रीहेमचन्द्राचार्यप्रणीता

८ अध्यात्मकल्पद्रुमः सटीकः—श्रीमुनिसुन्दरसूरिप्रणीतः, पं० धनविजयगणिविरचितवृत्तिविभूषितः.

९ स्याद्वादमञ्जरी—अपूर्वोऽयं स्याद्वादविषयो ग्रन्थः ... सटीकः ... श्रीमल्लिषेणसूरिविनिर्मितम् .

१० न्यायालोकः- महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणीविरचितः,

११ भाषारहस्यं सटीकम्. „

१२ उपदेशरहस्यम् „

१३ बृहद्धेमप्रभाव्याकरणम्—तपोगच्छाचार्य भट्टारक आचार्यश्री विजयनेमिसूरिप्रणीतम्.

१४ लघुहेमप्रभाव्याकरणम् „

१५ नयतत्त्वसाहित्यसंग्रहः—(संस्कृत प्राकृतगुर्ज्जरभाषारूपः सानुवादः) श्रीउमास्वातिवाचकाद्यनेकविरन्तनाचार्य सन्दृब्धः,

१६ षडशीतिप्रकाशः (चतुर्थकर्मग्रन्थवृत्तिः)

१७ जैनमुक्तावलिः

१८ पञ्चकल्याणकपूजादिसङ्ग्रहः

१९ स्तोत्रमाला,

२० दण्डकविस्तरार्थः

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्

शेठ. माणेकलालभाइ मनसुखभाइ,

शाहपुर बंगलो–अमदावाद.